हिन्दी-गौरव-ग्रन्थमालाका

१५८७

९ वाँ पुष्प

जीवन और श्रम

अँगरेजीके प्रसिद्ध लेखक डा० सेमुएल स्माइल्सके 'लाइफ एण्ड लेबर' का अनुवाद।

अनुवादक

श्रीयुक्त बाबू रामचंद्र वर्मा

प्रकाशक,

'गाँधी' हिन्दी-पुस्तक-भण्डार,

प्रयाग।

द्वितीय संस्करण

मूल्य डेढ़ रुपया,

कपड़ेकी जिल्दके आठ आने और।

सं० १९८६ भाद्रपद।

विषय-सूची

जीवन और श्रम ।

पहला प्रकरण ।

आदमी और भला आदमी ।

इस संसारमें मनुष्यका जीवन, बहुतसे अंशोंमें, काम करनेके लिये ही है । साधारणतः मनुष्यको सब दशाओंमें काम ही करना पड़ता है । जो आदमी "आदमी" कहा जा सकता हो, उसे सदा काम करनेके लिये तैयार रहना चाहिए । ईमानदार और परिश्रमी आदमी अपने गुजारेके लिये काम करना आवश्यक समझता है; पर वास्तवमें सभी दशाओं और सभी अवस्थाओं में मनुष्यके लिये काम करना बहुत ही आवश्यक है ।

ऐसी दशामें जब कि और लोग काममें लगे हों, कोई आदमी निकम्मा रह कर क्यों कर अपनी प्रतिष्ठा बनाये रह सकता है ? और कैसे अपने उत्तरदायित्वसे बच सकता है ? काम सबसे अच्छा शिक्षक है; क्योंकि वह दूसरे मनुष्यों और पदार्थोंसे साक्षात्कार कराता है । जीवन-चरित्रोंके अवलोकनसे पता चलता है कि जितने बड़े आदमी हो गये हैं, वे सब अपने काममें खूब

परिश्रम करते थे और बड़े ही दृढ़ तथा कार्य्य-क्षम होते थे। इस समय संसारमें जितना ज्ञान, जितनी विद्या, जितनी उन्नति और जितनी सभ्यता दिखाई देती है वह सब मुख्यतः मनुष्यके हाथ तथा मस्तिष्कके कार्य्यका ही फल है।

परिश्रम ही प्रत्येक मूल्यवान् पदार्थका मूल्य है। बिना परिश्रमके कुछ हो ही नहीं सकता। कठिन परिश्रम और अध्यवसायसे ही लोग बड़े बने हैं। चाहे वे कितने ही बुद्धिमान् और प्रतिभाशाली क्यों न हों, पर वे परिश्रमसे नहीं बच सकते। आशा और उत्साह-पूर्वक काम करनेमें बड़ी ही प्रसन्नता होती है। एक महात्माका कथन है—"परिश्रम न करनेसे बढ़कर परिश्रम-साध्य और कोई काम नहीं है। वह मनुष्य धन्य है जो अपने जीवनको किसी महान् और श्रेष्ठ कार्य्यके लिये अर्पित कर देता है और बुद्धिमत्तापूर्वक अपने कर्त्तव्य निश्चित करता है।"

परिश्रम करके जितने समयमें आप कुछ धन संग्रह करेंगे उससे आधे समयमें ही वह धन खाली बैठे रहनेसे नष्ट हो जायगा। जीवनमें परिश्रम न करनेसे बढ़ कर हानिकारक बात और कोई नहीं हो सकती। प्रायः युवक लोग परिश्रम-साध्य कार्य्योंसे डरते और बचते हैं। पर ऐसे लोग किसी प्रकारका सुख या आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते। उनके लिये सदा कामसे छुट्टी ही रहती है, उन्हें विश्राम करनेका अवसर ही नहीं मिलता। ऐसे लोगोंके द्वारा कभी कोई काम नहीं होता। एक विद्वान्ने कहा है—"कुछ काम न करना मानों जीते जी मर जाना है। जो आदमी ईश्वर या मानव-जातिके किसी कामका नहीं है वह मृतक के समान है। संसारकी आवश्यकताओं और परिवर्त्तनोंसे उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं होता। वह केवल अपना समय नष्ट करता है और बड़े ही

निन्दनीय रूपसे संसारकी उपज खाता है। मृत्यु आने पर वह मर जाता है और अपने जीवनमें कभी कोई अच्छा काम नहीं करता। यदि उसका कोई कार्य्य होता भी है तो वह या तो निरर्थक होता है या हानिकारक। सच पूछो तो अकर्म्मण्यता संसारमें सबसे बढ़कर नाशक है।"

बड़े बड़े महात्माओंके कथनानुसार परिश्रम न करनेवाला मनुष्य बड़ा भारी अपराधी और डाकू है। जो मनुष्य परिश्रम करता है वह कभी किसी प्रकारका अपराध या अनुचित कर्म्म नहीं कर सकता। निकम्मा आदमी सदा बुरे काम ही करेगा और यदि वह कोई बुरा काम न भी करे तो भी खाली बैठे रहना ही क्या कम बुराई है? ऐसा आदमी दयाका पात्र होनेके अतिरिक्त ताड़न के योग्य भी है। कुछ काम न करने और स्वार्थी बन कर आनन्द करनेसे बढ़ कर और कोई बुरी बात नहीं है। आत्म-पोषणसे नीति और मनुष्यत्वका नाश होता है और ऐसे दोषोंकी सृष्टि होती है जिनका नाश मृत्युसे पहले नहीं होता।

विद्वानोंका मत है कि सब प्रकारके दुष्कर्म्म देखनेमें सुखदायक जान पड़ते हैं। ये दुष्कर्म्म तो अकर्म्मण्य मनुष्योंको अपनी ओर आकृष्ट करते ही हैं, इससे बढ़ कर स्वयं अकर्म्मण्य मनुष्य स्वयं ही दुष्कर्मोंकी ओर प्रवृत्त होता है। पर जो मनुष्य केवल आत्म-पोषण करता हुआ दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त रहता है, नाश सदा उसके पीछे पीछे लगा फिरता है और अन्तमें उसे घोर दुःख होता है। अकर्म्मण्य मनुष्यका न तो चित्त प्रसन्न रहता है और न शरीर स्वस्थ। अधिकांश लोग यदि समयका सदुपयोग करें तो उन्हें ऐसे असंख्य अवसर मिल सकते हैं जिनमें वे अपने सुखकी बहुत कुछ वृद्धि कर सकते हैं। जो थोड़ा बहुत समय हम यों ही नष्ट कर

देते हैं यदि उसका सदुपयोग हो तो उससे होनेवाले सुन्दर परिणामोंको देख कर हमें परम आश्चर्य्य होगा। तेजीसे बीतनेवाले समयका हमें उपयोग करना चाहिए और उससे निधि प्राप्त करना चाहिए; नहीं तो वह सदाके लिये हमारे हाथसे जाता रहेगा। युवावस्थाके दिन सोनेके समान, प्रौढ़ावस्थाके दिन चाँदीके समान और वृद्धावस्थाके दिन सीसेके समान होते हैं। जो मनुष्य बीस वर्षकी अवस्थामें कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं करता और तीस वर्षकी अवस्थामें कोई काम नहीं करता, चालीसवें वर्ष उसके पास कुछ भी नहीं रहता।

सभी अवस्थाओं और सभी दशाओंमें हमें समयका पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए और सदा सब काम ठीक समय पर करना चाहिए। जो मनुष्य ठीक समय पर काम नहीं करता वह सदा शिथिल, दुःखी और चिन्तित रहता है। एक बार एक आदमी राजा तृतीय जार्जसे जब निश्चित समयसे कुछ देर करके पहुँचा तब उन्होंने उसके समयके पाबन्द न होनेकी कुछ शिकायत की। इस पर उस आदमीने कहा कि "किसी कामके कभी न होनेकी अपेक्षा उसका देरसे होना अच्छा है।" राजा जार्जने उत्तर दिया—"नहीं यह तुम्हारी भूल है। मैं कहता हूँ कि देरसे होनेकी अपेक्षा कभी न होना अच्छा है।" संसारकी और सब बातोंमें देर हो सकती है पर नाशमें कभी देर नहीं होती।

जब तक मनुष्य न चाहे तब तक उसका जीवन कभी नष्ट नहीं हो सकता। यदि हम चाहें तो अपनी भी उन्नति कर सकते हैं और साथ साथ दूसरोंको भी उन्नत कर सकते हैं। हम अपने आपको भी श्रेष्ठ बना सकते हैं और दूसरोंको भी। पर इसके लिए हमें अपने विवेक और ज्ञानका धैर्य्य-पूर्वक उपयोग करना चाहिए।

बहुतसे लोगोंमें अनेक प्रकारकी योग्यताएँ और शक्तियाँ हैं; पर उन सबका उपयोग करनेके लिये धैर्य्य-पूर्वक श्रम करनेकी आवश्यकता होती है। राजा राममोहनराय, स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द, महादेव गोविन्द रानडे, गोपाल कृष्ण गोखले आदि अपने जीवन-कालमें उतना ही श्रम करते थे जितना साधारण मजदूर और कमानेवाले लोग करते हैं। जब तक मनुष्य धैर्य्य-पूर्वक और निरन्तर खूब परिश्रम न करे तब तक वह विज्ञान, राजनीति या साहित्य आदिमें कभी पारंगत नहीं हो सकता।

महान् पुरुषोंमें सबसे बड़ा गुण यही होता है कि वे बड़े ही धीर और परिश्रमी होते हैं। न तो वे कभी अपने कार्य्यसे विमुख होते हैं और न कभी थकते हैं। वे प्रत्येक क्षणका उचित उपयोग करते हैं। जो मनुष्य धैर्य्य और विचार-पूर्वक प्रत्येक वस्तुका निरीक्षण करता और उसके सम्बन्धकी सब बातोंका ज्ञान प्राप्त करता है वह बड़ा भारी आविष्कारक हो जाता है। वह प्रत्येक वस्तुका मूल तत्त्व जान लेता है। प्रत्येक मनुष्यको यथासाध्य ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिसमें वह किसी बातको देखकर उसका मूल तत्त्व जान ले। प्रसिद्ध विद्वान् और तत्त्ववेत्ता न्यूटन कहा करता था कि और लोगोंकी अपेक्षा मुझमें यही विशेषता है कि जब तक किसी प्रश्न की पूर्ण-रूपसे मीमांसा नहीं हो जाती तब तक मैं सदा उसे अपने ध्यान में रखता और उस पर सोचा विचारा करता हूँ।

एक विद्वानका मत है कि हमारा शरीर एक बाग़ है और हमारा इच्छा-बल उसका माली है। यदि हम उसमें बबूल बोएँगे तो कांटे होंगे और आम बोएँगे तो स्वादिष्ट फल होंगे। यदि हम अकर्म्मण्य या सुस्त होंगे तो उसकी जमीनको खराब कर देंगे और यदि परिश्रमी होंगे तो उसमें खाद देकर उसे उपजाऊ बना

देंगे। ये सब बातें हमारी इच्छा-शक्ति पर ही निर्भर हैं। और वास्तवमें इच्छा-शक्ति ऐसी ही चीज है। लेकिन उसके लिये धैर्य्य और साहसकी आवश्यकता है। जिस समय कठिनाइयाँ आ पड़ें उस समय दृढ़ता-पूर्वक अपने काममें लगे रहनेकी आवश्यकता होती है जिसे हम अध्यवसाय कहते हैं। कार्य्यकारिणी शक्ति के निरन्तर उपयोग को ही अध्यवसाय कहते हैं और यदि बराबर अध्यवसाय-पूर्वक परिश्रम किया जाय तो वही आगे चलकर प्रतिभाका रूप धारण कर लेता है। किसी मशीनके पहिएमें जितना ही अधिक बल होगा वह अपने सामनेकी रुकावट को उतनी ही सरलतासे दूर करके बराबर घूमता जायगा। यही सिद्धान्त मनुष्य के लिये भी है। अपने सामनेकी रुकावट दूर करनेमें आपको उतनी ही सफलता होगी जितना आप उसमें बल लगावेंगे। यदि किसी दूसरे मनुष्यकी अपेक्षा आपमें बल कम हो तो उसकी पूर्ति आप अधिक समय तक अपने बलका प्रयोग करके कर सकते हैं। जीवनके आरम्भमें न तो मनुष्यको स्वयं ही अपनी प्रतिभाका ज्ञान होता है और न दूसरे लोग ही उससे परिचित होते हैं। लगातार कई बार प्रयत्न करने पर तब उसे मालूम होता है कि मैं उन कामोंके योग्य हो गया हूँ जिनमें सफलता प्राप्त करके और लोग धन्य हुए हैं। जो झरना किसी पहाड़ परसे केवल एक पतली धार के रूपमें निकलता है वह केवल सदा दृढ़ता-पूर्वक आगे बढ़ते रहने के कारण ही पहले नदी और तब आगे चलकर भारी नद ही नहीं बल्कि अथाह समुद्रका एक अंग बन जाता है।

बहुत से लोग ऐसी कठिनाइयोंसे घबरा जाते हैं जो अनेक अवस्थाओंमें वास्तवमें हमें सहायता देनेवाली होती हैं। वे हमें अनुभव कराती हैं और दृढ़ता-पूर्वक काममें लगे रहनेके लिए

उत्तेजित करती हैं। घटनाओंकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। उनका परिणाम मनुष्यकी योग्यता और आचार आदि पर निर्भर रहता है। कभी कभी प्रतिभा-शिखर पर पहुँचनेके लिये दरिद्रता ही सीढ़ी बन जाती है। जिसे दुर्बल मनुष्य खाई समझते हैं बलवानोंके लिये वही खजाना हो जाता है। केवल सम्पन्नताके कारण ही बहुतसे लोग विशेष योग्य नहीं हो सकते। तात्पर्य्य यह कि सब कुछ केवल इच्छासे ही हो सकता है। जिस कामके करनेकी इच्छा हो फिर उसके लिये उपायोंकी कमी नहीं रह जाती।

जीवनमें कोई मनुष्य सदा एक ही स्थान पर नहीं रह सकता। जो मनुष्य आगे नहीं बढ़ता वह अवश्य पीछे खसकता है। इसलिये उचित यही है कि यदि मार्गमें कठिनाइयाँ हों तो हम उन्हें दूर करके आगे बढ़ें। सर फिलिप सिडनीका सिद्धान्त बहुत ही अच्छा था। वे कहा करते थे—"या तो मैं कोई रास्ता निकालूँगा और या कोई रास्ता बना लूँगा।" आराम से "बच्चे" बनते हैं "मनुष्य" बनानेवाली तो कठिनाई है। बहुतसे सम्पन्न लोग ऐसे हैं जिनकी सर्वोत्तम शक्तियोंका विकाश केवल कठिनाइयोंका सामना करनेके कारण ही हुआ है। आचार-सम्बन्धी दृढ़ताकी सबसे अच्छी परीक्षा तभी होती है जब किसी व्यक्तिकी बाह्य अवस्थामें कोई आकस्मिक परिवर्त्तन होता है और यदि यह परिवर्त्तन हृदयको कुछ दुःख पहुँचानेवाला हो तो उनके कारण होनेवाली परीक्षा और भी अधिक ध्यान देने योग्य और महत्त्वपूर्ण होगी। यदि वह मनुष्य दृढ़ हुआ तो इस परिवर्त्तनके कारण वह अपने बल पर ही खूब काम करके यथेष्ट महत्त्व और प्रसिद्धि प्राप्त कर लेगा।

कष्टकी उपमा एक मजबूत हाथसे चलाये जानेवाले भारी हलसे दी जा सकती है। वह खराब जमीनमें खूब गहरी काट करता है। लेकिन उसकी इस गहरी कटाईसे उसका भीतरी भाग खुल जाता है, जिस पर प्रकृतिके उपजाऊ प्रभाव पड़ते हैं और जिसके परिणाम-स्वरूप बहुत अच्छी फसल होती है।

भारी विरोध या अड़चन भी आदमीके लिये बड़ी भारी न्यामत है। उससे शक्ति, अध्यवसाय और आचार-बलको उत्तेजना मिलती है। इस प्रकार अड़चनें हमारी सहायक होती हैं। मनुष्य साहसी हो सकता है लेकिन बिना अध्यवसायके साहसका महत्त्व बहुत ही कम होता है। केवल आवेश-युक्त विचारोंके उठने और नष्ट हो जानेसे ही मानव-जातिकी उन्नतिमें बहुत कम सहायता मिलती है। चाहे बीचमें बारबार विफल ही क्यों न होना पड़े तो भी बड़े बड़े काम तभी होते हैं जब मनुष्य उनके लिये निरन्तर परिश्रम करता रहता है। एक वेल्श कहावतका अभिप्राय है कि "विफलताएँ ही सफलताके खम्भे हैं।" यह तो हुई कामकी बात, अब विश्रामको लीजिए। यह एक कहावतसी बन गई है कि बिना परिश्रमके विश्राम होता ही नहीं। तो भी बहुत अधिक परिश्रम करने और सदा काममें ही लगे रहनेसे यह भी सम्भव है कि मनुष्य विश्रामका सुख उठानेके योग्य ही न रह जाय। जिस मनुष्यका सारा समय केवल परिश्रम करनेमें ही बीतता है वह अपने प्राकृतिक उच्च गुणों तक नहीं पहुँच सकता, उसके प्राकृतिक सुन्दर गुणोंका कभी विकास नहीं हो सकता। बल्कि कभी कभी तो यह भी देखा जाता है कि बहुत अधिक परिश्रमके कारण लोगोंके अनेक सद्भावों और सद्गुणोंका नाश भी हो जाता है। कुछ लोग आगे चल कर यथेष्ट विश्राम करनेके विचारसे इतना

अधिक परिश्रम करते हैं कि कुछ ही समयके उपरान्त उनकी ऐसी अवस्था हो जाती है कि वे काम छोड़ कर आनन्दका अनुभव करनेके योग्य ही नहीं रह जाते। उनका मन मारा जाता है, विचार-शक्ति शिथिल हो जाती है और वे किसी और मर्जकी दवा नहीं रह जाते। वे एक दिन भी काम नहीं छोड़ सकते। उन्हें जो फुरसत मिलती है वह उनके लिये किसी कामकी नहीं रह जाती। उन्हें तुरन्त ही फिर काममें लग जाना पड़ता है—बैताल फिर पेड़ पर जा लटकता है।

बहुत अधिक काम फिर "काम" नहीं रह जाता, वह "पीसना" हो जाता है और "पिसाई" में कभी आनन्द नहीं आ सकता—उलटे आनन्द घट जाता है। काम इसलिये नहीं है कि हम उसके पीछे अपने प्राण दे दें। वह इसलिये है कि ईमानदारीसे हम उसके द्वारा अपना गुजारा करें। क्योंकि केवल आनन्द-मंगल ही तो हमें खानेको देगा नहीं, पेट पालनेके लिये तो हमें काम ही करना पड़ेगा। धनसे मनुष्यका आचरण बिगड़ जाता और हृदय कठोर हो जाता है। पर इसमें भी सन्देह नहीं कि दरिद्रता मनुष्यके उत्साह और जीवन-शक्तिका नाश कर देती है, उसके मार्गमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ उत्पन्न कर देती है और मनुष्यके लिये ईमानदार, धर्मात्मा और प्रतिष्ठित रहना कठिन कर देती है।

इसलिये कभी किसी काममें अति नहीं करनी चाहिए। मनको परिष्कृत करने, अच्छी अच्छी शक्तियोंको बढ़ाने और जीवनका वास्तविक सुख भोगनेके लिये काम बहुत ही उत्तम और आवश्यक है। इसी लिये हम देखते हैं कि इतिहास और विज्ञान आदि बहुत अच्छे अच्छे काम प्रायः रोज़गारी या कामकाजी आदमी ही करते हैं। दिन रात व्यापारके कामोंमें लगे रहनेसे मनुष्यके आनन्दका

नाश हो जाता है। लार्ड बेन्थनका मत है कि बुद्धिमान् मनुष्यको अपने मनमें किसी न किसी प्रकारकी कामना रखनी चाहिए। जिस मनुष्यका किसी विशेष पदार्थ पर अनुराग नहीं होता उसे किसी चीज़ या बातमें आनन्द नहीं आता।

प्रत्येक मनुष्यको कई तरहके कामोंको छेड़ रखना चाहिए। उनमेंसे एकको तो अपना प्रधान काम बना लेना चाहिए और उसे बराबर करते रहना चाहिए; और शेष फुटकर कामोंको फ़ुरसतके समय करना चाहिए और उन्हें बराबर बदलते रहना चाहिए। विश्राम करनेका वास्तविक उपाय यही है और इसीसे जीवनका सौन्दर्य्य रक्षित रहता है। इस तरह हम सदा प्रसन्न रहेंगे और हमें सदा यही मालूम होगा कि हम विश्राम कर रहे हैं। फ़ुरसतके समय चित्त प्रसन्न करनेके बहुतसे उपाय हैं। हमारे लिये प्रकृति अपने विलक्षण सौन्दर्य्यका अनन्त भण्डार खोल देती है। हम उसकी अनन्त विभिन्नताओंका निरीक्षण कर सकते हैं, उसके काम देख सकते हैं और उसके भेद जान सकते हैं। पशु, वनस्पति, खनिज पदार्थ आदि वैज्ञानिक अन्वेषणके लिये बहुत हैं। पुस्तक-प्रेमियोंके लिये साहित्य भी कुछ कम नहीं है। जातियोंके प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास हैं जिनमें स्वयं अपने लाभके लिये तथा जगत्की सभ्यताकी वृद्धिके लिये लोगों पर शासन करने और उन्हें शिक्षा देनेके अच्छे अच्छे प्रकार मिलते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकारके जीवन-चरित्र, काव्य और नाटक आदि हैं जिनसे बहुत अच्छा मनोरञ्जन हो सकता है।

यूरोपके बड़े बड़े विद्वानों, लेखकों और शिल्पियोंमें अनेक ऐसे मिलेंगे जो अपनी फ़ुरसतका समय बिताने और छुट्टी मनानेके लिये तरह तरहके दूसरे काम करते हों। कोई कवि चित्रकारी

करता था और कोई चित्रकार पद्य बनाता था। कोई कसरत करने लग जाता था और कोई शिकार खेलने निकल जाता था। वहीं उन्हें प्रकृति का निरीक्षण करने और विज्ञान-सम्बन्धी बहुतसी बातें जाननेका भी अवसर मिलता था। यदि फुरसत के समय हम ताश या शतरंजका ध्यान छोड़ कर शहरके बाहर की किसी पहाड़ी पर चढ़ जायँ अथवा किसी नदीमें नाव खेते हुए दूर तक निकल जायँ तो उससे केवल हमारा मनोविनोद ही नहीं होगा, बल्कि हमारा स्वास्थ्य भी सुधरेगा और मनके भाव भी शुद्ध और सुन्दर होंगे। यदि हम अपने आँगनमें ही कुछ गमले रख कर अथवा कहीं थोड़ीसी ज़मीन तैयार करके उसमें सुन्दर सुन्दर फूलोंके पेड़-पौधे लगावें तो क्या उससे हमारे चित्तको कुछ कम प्रसन्नता होगी ? विलायतमें कई ऐसे विद्वान् और लेखक हो गये हैं जो फ़ुरसतका समय बिताने के लिये भेड़ें, बकरियाँ, घोड़े, कुत्ते, सूअर और तरह तरहके दूसरे पशु-पक्षी पालते थे। प्रसिद्ध कवि शेलीको जब और कोई काम नहीं रहता था तब वह टेम्स नदीमें कागज़की नावें बना बना कर ही छोड़ा करता था। उसको इस प्रकार नावें बना कर बहानेका इतना शौक़ था कि जब उसे कागज़ नहीं मिलता था तब वह बैंक आफ़ इङ्गलैण्डके नोटोंकी नावें बनाता था ! डिकेन्स, सूदे और वर्ड्स्वर्थ गजबके चलनेवाले थे वर्ड्स्वर्थ सदा टहलते समय ही पुस्तकें पढ़ता था। यही कारण है कि उसकी कवितासे बहुत अच्छा और बहुत अधिक प्रकृति-प्रेम झलकता है। एक बार एक आदमी वर्ड्स्वर्डके मकान पर गया। और सब कुछ देखकर उसने नौकरसे पुस्तकालय दिखलानेके लिये कहा। नौकरने उसे पुस्तकालयमें ले जाकर कहा—"यही हमारे मालिकका पुस्तकालय है, पर उनका अध्ययन सदा खेतोंमें ही

होता है ।" और भी अनेक बड़े बड़े चलनेवाले हो गये हैं जो बहुत ही वृद्धावस्थामें भी नित्य दस दस मील चला करते थे और पैदल बड़ी बड़ी यात्राएँ किया करते थे। उनका स्वास्थ्य सदा बहुत ही अच्छा रहता था। इसी प्रकार कोई जीन-सवारीका शौक़ीन था और कोई कुश्ती और मुक्केबाजी देखनेका। बेलजियमके प्रधान मंत्री ग्लैडस्टन जंगलोंमें जाकर अपने हाथसे पेड़ काटा करते थे। यहां तक कि एक व्यक्ति अपनी नाक पर मोरका पर खड़ा करने की साधना करता था! जान हण्टर मधु-मक्खियोंका निरीक्षण करता था और सर जानलबक चिउँटियों, मधु मक्खियों और बर्रे आदिका। इन दोनोंके ही मनोविनोदसे वैज्ञानिक दृष्टिसे अच्छा लाभ हुआ था। हण्टरने मधु-मक्खियोंके सम्बन्धमें जिन बातोंका पता लगाया था वे आज तक निर्विवाद मानी जाती हैं और सर लबकने जो पुस्तक लिखी है उसे देखकर यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि चिउँटियों और मधु-मक्खियों के धैर्य्य और परिश्रमकी प्रशंसा की जाय अथवा उनके निरीक्षकके धैर्य और परिश्रमकी।

बहुतसे लोगोंने अपना काम करते हुए तरह तरहकी मशीनों का भी आविष्कार किया है। इन आविष्कर्त्ताओंमें पादरी कार्टराइट बड़े ही विलक्षण थे, जिन्होंने एंजिन चलनेवाले करघे और ऊन साफ़ करने और ईंटें तथा रस्से बनानेकी मशीनोंका आविष्कार किया था। खेत बोनेकी मशीनका आविष्कार पादरी बेलने अपने फुरसतके समयमें किया था। इंग्लैण्डमें उस समय मज़दूर सस्ते थे, इसलिये वहां तो यह मशीन न चली पर अमेरिकामें जहां मज़दूर बहुत महँगे थे, इसका खूब प्रचार हुआ। तब एक शताब्दीके उपरान्त इंगलैण्ड और स्काटलैण्डमें भी उसका खूब प्रचार हुआ।

इसी प्रकार कोई ग्रहोंका वेध करके उनके सम्बन्धकी नई नई बातों का पता लगाता था और कोई किसी धातुका आविष्कार करता था। पर इस सम्बन्धमें सबसे मज़ेदार बात डा० एडमकी है। डाक्टर महाशय एडिनबराके हाईस्कूलके रेक्टर थे और उन्होंने कई अच्छी अच्छी किताबें लिखी थीं। जब आपको फुरसत मिलती थी तब आप बूगे नामक अपने एक मित्रकी दूकान पर चले जाया करते थे और वहीं कभी चाकुओं और कैंचियों पर सान देते थे और कभी सानका चक्कर चलाते थे। बूगे भी ग्रीक और लैटिन भाषाका बड़ा भारी पण्डित था, इसलिये एक बार दो अँगरेज भले आदमी जो विश्वविद्यालयमें पढ़ते थे, ग्रीक भाषा का एक वाक्य समझनेके लिये उसके पास आये। वह वाक्य बूगेकी समझमें तो नहीं आया, पर वह जरा मसखरा था, इस लिये उसने कहा—"यह तो बहुत ही सहज है। हमारा चक्कर चलानेवाला मजदूर ही तुम्हें यह समझा देगा।" यह कह कर उसने डा० एडमसे कहा—"जरा इधर तो आना।" उनके आने पर उसने वह ग्रीक वाक्य उन्हें दिखलाया और उन विद्यार्थियोंको उसका अर्थ समझानेके लिये कहा। एडमने चश्मा लगा कर बहुत ही विद्वत्ता-पूर्वक उस वाक्यका पूरा पूरा अर्थ उन लोगोंको समझा दिया और साथ ही अपने बतलाये हुए अर्थके समर्थनमें बड़े बड़े विद्वानोंकी सम्मतियां भी बतला दीं। और तब वे फिर सानका चक्कर चलाने चले गये। मजदूरकी विद्वत्ता देख कर विद्यार्थियोंको परम आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने कहा कि हमने सुना था कि एडिन्-बराके साधारण व्यापारी भी बड़े विद्वान् होते हैं, पर इस वाक्यकी अभी जो व्याख्या हमने सुनी है वह हमारी आशासे कहीं अधिक है।

प्राणि-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र और भूगर्भ-शास्त्र आदिका अध्ययन बहुत ही सहजमें हो सकता है और उससे हमारे मनोविनोदके साथ साथ संसारका बहुत कुछ उपकार भी हो सकता है। यदि और कुछ न हो तो कमसे कम हमें बहुत-सी उपयोगी बातें तो अवश्य मालूम हो जायँगी और कभी न कभी वे हमारे काम भी आवेंगी। जिन लोगोंको इस बातकी चिन्ता रहती है कि हम अपना समय किस प्रकार बितावें उनसे बढ़ कर मूर्ख और अभागा संसारमें कोई नहीं है। एक महात्माका वचन है—"कसी बड़े साम्राज्यके प्रधान मन्त्रीको भी उतना सार्वजनिक काम नहीं हो सकता जितना एक बुद्धिमान् मनुष्यको अपना निजका काम हो सकता है। यदि मन्त्रीको अकेले रहनेकी कम फुरसत मिलती हो तो बुद्धिमान्को लोगोंका साथ करनेके लिये कम फुरसत होती है। मन्त्रीको तो केवल अपनी जातिके ही थोड़े बहुत काम करने पड़ते हैं पर बुद्धिमान्को परमेश्वर और प्रकृतिके समस्त कार्य्योंका विचार करना पड़ता है।"

एक और महात्माका उपदेश है—"ज्ञानार्जन और आशा, सुशीलता, धैर्य्य और सन्तोष आदि गुणोंके विकाशके लिये परिश्रम और प्रयत्नकी आवश्यकता होती है। × × × × × परिश्रमसे पहले मनुष्यकी आत्मा उदार और उन्नत होती है। परिश्रमी मनुष्य तुच्छ और छोटी बातोंसे कभी सन्तुष्ट नहीं होता, बल्कि वह श्रेष्ठ पदार्थोंकी आकांक्षा करता है और उन्हें प्राप्त करनेके लिये वीरता और साहस-पूर्वक अपनी निजकी शक्तियोंसे कठिनाइयों और अड़चनोंको दूर करता हुआ निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। × × × × × श्रेष्ठ मनुष्य कभी मक्खीकी तरह दूसरोंका इकट्ठा किया हुआ शहद खाना पसन्द न करेगा

और न गीदड़ोंकी तरह दूसरोंके किये हुए शिकार पर हाथ साफ करनेकी नीयत रखेगा, वह अपने निर्वाहके लिये स्वयं ही किसी न किसी प्रकारका प्रयत्न करेगा। परिश्रम हमारे समस्त आनन्दोंमें अपूर्व माधुर्य्य उत्पन्न कर देता है; क्योंकि जब तक मनुष्य अपने कर्त्तव्योंका पूर्ण-रूपसे पालन नहीं कर लेता तब तक वह किसी प्रकारका आनन्द अनुभव नहीं कर सकता। पर जब वह अपने सब काम कर लेता है तब अच्छी तरह आराम कर सकता और सुख उठा सकता है। तब उसे भोजनमें भी स्वाद मिलता है, सैर सपाटे आदिमें भी आनन्द मिलता है और खूब अच्छी तरह नींद भी आती है।"

परिश्रममें सबसे बड़ा गुण तो यह है कि वह मनुष्यको सदा बुराइयोंसे दूर रखता है। जो मनुष्य सदा काममें खूब लगा रहता हो उसे बुराइयोंकी ओर प्रवृत्त होनेका अवसर ही न मिलेगा। सुस्ती और अकर्म्मण्यतासे बढ़ कर और कोई दुर्गुण नहीं है। निकम्मा आदमी समाजका बोझ होता है। वह संसारके सब पदार्थोंका नाश करता है और उत्पन्न कुछ भी नहीं करता; वह समाजका भूषण तो कभी हो ही नहीं सकता, हाँ कलंक अवश्य होता है। यही सुस्ती और अकर्म्मण्यता बड़े बड़े महल गिरा देती है। निर्दोषता और सद्गुणोंका सबसे अच्छा रक्षक परिश्रम ही है। वह दोषों और अपराधोंको सदा दूर रखता है, हृदय-मन्दिरकी रक्षा करता है और दुष्कर्म्ममें प्रवृत्त होनेका अवसर ही नहीं देता।

यदि हम धनवान् हों तो केवल अपने ही परिवारके लोगोंके लिये नहीं बल्कि औरोंके लाभके लिये भी अपने धनका प्रबन्ध करनेके लिये हमें परिश्रम करनेकी आवश्यकता होगी। यदि

हम प्रतिष्ठित हों तो अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने और दूसरोंके सामने उत्तम आदर्श उपस्थित करनेके लिये भी हमें परिश्रम करना पड़ेगा। परम कुलीन मनुष्य भी परिश्रम करने से नहीं बच सकता। यदि वह यह समझता हो कि हमारा काम निकम्मे रहनेसे भी चल सकता है तो उसे अवश्य परम दुःखी भी होना पड़ेगा। क्योंकि यदि वह किसी कामका न होगा और परमेश्वर तथा संसारकी कोई सेवा न करेगा तो उसे प्रसन्नता प्राप्त करनेका भी कोई अधिकार न होगा। साधारण आदमीका ज्ञान आदि भी कम होगा और कर्त्तव्य भी थोड़ा होगा। पर भले आदमीका ज्ञान भी बहुत अधिक होगा और कर्त्तव्य भी अनेक होंगे। भले आदमीके हृदयमें उत्साह और बल होगा, उसकी विद्या और बुद्धि औरोंसे बढ़ी-चढ़ी होगी, उसका कुल श्रेष्ठ होगा, उसके संगी-साथी अच्छे अच्छे लोग होंगे, उसके पास धन, बल और अधिकार होगा, समाजमें उसका अच्छा आदर होगा, उसे यथेष्ट समय और अवकाश होगा और वह सब प्रकारसे ऐसी स्थितिमें होगा जिसमें उसके द्वारा संसारका बहुत कुछ कल्याण हो सके। और वास्तवमें वही आदमी भला आदमी कहला सकता है जो सार्वजनिक कल्याणके लिये पूर्ण परिश्रम करता है और मित्रोंके उपकारके लिये आनन्द-पूर्वक कष्ट सहता है। भले आदमीका काम इतना मोटा तो नहीं होता, पर वह कष्ट-साध्य अवश्य होता है। केवल शारीरिक श्रम ही कठिन नहीं होता, हल, फावड़ा और हथौड़ा चलानेके अतिरिक्त और भी अनेक परिश्रम-साध्य काम होते हैं। सभी कामोंमें पसीना नहीं बहता, दिमाग़से भी बिना पसीना बहाये अच्छे अच्छे काम हो सकते हैं। लोगोंको उपदेश, उत्साह या सांत्वना देनेमें जीभ भी

बहुत कुछ परिश्रम कर सकती है। सत्कार्य और परोपकारका ही काम आदमीके लिये बहुत है। और यही सब काम ऐसे हैं जिनमें भले आदमियोंको परिश्रम करनेकी आवश्यकता होती है।

छोटी जातिके लोग तरह तरहकी कई बातोंसे किसीको भला आदमी समझते हैं। किसी दीन-दुखिया बुढ़ियाको यदि कोई रुपया आठ आना दे दे तो वह उसीको बहुत भला आदमी समझती है और यदि कोई इक्केवाला किसीसे दूना किराया जट ले तो वह उसीको भला आदमी समझता है। मध्यम वर्गके लोग भी प्रायः किसीकी भलमंसीका अनुमान उसकी उस आर्थिक उदारतासे ही करते हैं जो बहुतसी दशाओंमें आवारेपनकी उदारतासे कम नहीं होती। थैकरेका मत है कि जो आदमी ईमानदार, नेक, उदार, वीर और बुद्धिमान हो और अपने इन सब गुणोंका उत्तम रीतिसे उपयोग करे वही भला आदमी है। एक और महात्माके अनुसार सच्चे वीर और सज्जन मनुष्यमें धर्म्म-भाव, उदारता, न्याय-परायणता, समझदारी, दूरदर्शिता, सुशीलता, दृढ़ता, सचाई, स्वतंत्रता, कर्म्मण्यता, आशा और वीरता ये बारह गुण होते हैं। इसमें इतना और बढ़ाया जा सकता है कि उसमें सहिष्णुता तथा दूसरोंके विचारों और सम्मतियोंका आदर करनेका भाव भी होना चाहिए।

असली भला आदमी किसी विशिष्ट वर्ग या जातिमें ही नहीं होता। एक दरिद्र कृषक भी भला आदमी हो सकता है और कोई बहुत बड़ा अमीर भी। हर एक आदमी भला आदमी और सज्जन हो सकता है। टूटी-फूटी झोपड़ीमें रहनेवाले एक दरिद्र किसानमें भी आपको भलमनसी मिल सकती है। भलमनसी केवल बड़े आदमियोंके ही पल्ले नहीं पड़ी है। छोटेसे छोटा आदमी भी बात-

चीत और विचारोंकी दृष्टिसे भला आदमी हो सकता है। वह ईमानदार, सच्चा, साहसी और आत्मावलम्बी हो सकता है। किसी नीचाशय धनवान्‌की अपेक्षा एक उच्चाशय निर्धन कहीं अच्छा होता है। नीचाशय धनवान्‌के पास सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं होता और उच्चाशय निर्धनके पास कुछ भी न होते हुए सब कुछ होता है।

सदाचारके चित्र में सद्‌व्यवहार मानों अन्तिम पालिश है। एमर्सनका कथन है—"सौन्दर्य्यसे सद्‌व्यवहार कहीं बढ़ कर है। वह चित्रों और मूर्तियोंसे कहीं अधिक आनन्ददायक होता है। उच्च कलाओंमें वह सर्व-श्रेष्ठ है।" डा० जान्सन ने कहा है—"सदा नम्र सद्‌व्यवहार करो, उसका अभाव किसी न किसीको अवश्य खटकता है।" स्वर्गीय महात्मा महादेव गोविन्द रानडेका व्यवहार सदा सबके साथ सद् और नम्रतापूर्ण होता था। एक दिन आप हाईकोर्टसे पैदल घर जा रहे थे। रास्तेमें एक बुढ़ियाने आपसे कहा—"जरा मेरा बोझ उठा कर मेरे सिर पर रखा दो।" आपने तुरन्त उसका बोझ उठा कर उसके सिर पर रख दिया। एक बार रास्तमें एक आदमीके धक्केसे रानडे महाशयकी पगड़ी कीचड़में गिर गई। उसने बहुत क्षमा प्रार्थना की, पर आपने उत्तर दिया कि इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, यह तो अचानक एक घटना हो गई है। अमेरिकन संयुक्त राज्योंके राष्ट्रपति मि० क्विन्सी सदा सबके साथ यहाँ तक कि हब्शियोंके साथ भी, सद्‌व्यवहार करते थे। एक बार आप आमनिबस (किराये पर चलनेवाली एक प्रकारकी बहुत बड़ी गाड़ी) में सवार होकर कहीं जा रहे थे। रास्तेमें एक हब्शी स्त्री भी उसी गाड़ी पर सवार हुई। पर भीड़ बहुत थी, इसलिये उस स्त्री को कहीं बैठनेका स्थान नहीं मिला।

राष्ट्रपति किन्सीने तुरन्त उठ कर अपने स्थान पर उस स्त्रीको बैठा दिया और आप बराबर खड़े रहे। इस प्रकार मानों आपने असद्व्यवहार करनेवाले गाड़ीमें बैठे हुए और लोगोंकी बिना कुछ कहे सुने यथेष्ट भर्त्सना की।

हमारी प्रकृतिके खुरदुरे किनारों पर सद्व्यवहार एक प्रकार की गोठका काम देता है और उनके द्वारा दूसरोंको कष्ट नहीं पहुँचने देता। वह बड़ा ही भला आदमी था जिसने कहा था कि किसीको गाली देना और खोटा सिक्का देना दोनों बराबर है। जब तक मनुष्यका व्यवहार नम्र और सुजनता पूर्ण न हो तब तक, चाहे वह कितने ही उच्च और प्रतिष्ठित कुलका क्यों न हो, वह कभी भला आदमी नहीं कहा जा सकता। उच्च कुलमें उत्पन्न मनुष्य भी नीच डरपोक और अकर्म्मण्य हो सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि किसी मनुष्यको अपने उच्च कुल और श्रेष्ठ पूर्वजोंके उत्तम और महत्त्व-पूर्ण कार्य्योंका स्मरण करके स्वयं भी श्रेष्ठ कार्य्य करनेके लिए उत्तेजना मिल सकती है, पर कभी कभी उच्च कुलके लोगोंके आचरण भी बड़े ही नीच होते हैं। श्रेष्ठ कार्योंसे मनुष्य अपने उच्च कुलका भूषण होता है और निकृष्ट कार्य्योंसे कलंक।

श्रेष्ठ मनुष्य सदा श्रेष्ठ कुलमें ही उत्पन्न नहीं होते। बहुतसे महान् पुरुष कनिष्ट वर्गमें ही उत्पन्न हुए हैं। प्लेटो किसी उच्च वंश का नहीं था, पर दर्शनने उसे उच्च बना दिया। वाल्मीकिजी चाण्डाल थे, पर अपने सत्कार्योंसे ऋषि बन गये। कृष्णके जन्मके समय उनके पिता वसुदेव बहुत ही साधारण स्थितिके मनुष्य थे और अपनी स्त्री सहित अपने साले कंसके यहाँ कैद थे। कालिदास चरवाहे थे, कबीरदास जुलाहे थे और नामदेव दरजी थे। चाणक्य, चैतन्य, सूरदास, तुलसीदास, नरहरि, बीरबल

और टोडरमलने बड़े ही दरिद्र कुलमें जन्म लिया था। शिवाजी, नेपोलियन और माधवराव सिन्धिया आरम्भमें साधारण सैनिक ही थे। शेक्सपियरका बाप ऊन बेचता था और कारलाइलका बाप राजगीर था। आधुनिक महापुरुषोंमें से जस्टिस रानडे, बहेरामजी मलाबारी, सेठ जावजी दादाजी चौधरी, दादा भाई नौरोजी, बदरुद्दीन तैय्यबजी, काशिनाथ त्र्यंबक तैलंग आदिका जन्म बहुत ही साधारण स्थितिके माता-पिताके यहाँ हुआ था। तथापि इन लोगोंने अपने परिश्रम और सदाचार आदिके कारण इतना यश प्राप्तकिया था जितना किसी अच्छे राजा महाराजाको भी नसीब नहींहो सकता।

नम्र और सुशील मनुष्य सदा प्रसन्न रहेगा। प्रसन्नतासे मनुष्यकी जितनी शोभा बढ़ती है उतनी हीरों और मोतियोंके जड़ाऊ गहनोंसे भी नहीं बढ़ सकती। प्रसन्नतामें कुछ खर्च नहीं होता तो भी वह अमूल्य है। वह मानव-प्रकृतिका सर्वोत्तम अंश ढूँढ़ती है। वह लोगोंके दोष और त्रुटियाँ नहीं देखती, बल्कि स्वभावतः अच्छी अच्छी बातोंका ध्यान रखती है। उसके द्वारा मधुर बचनों और दया-पूर्ण विचारोंका प्रसार होता है, जिससे समाजमें आनन्दकी वृद्धि होती है। प्रसन्नता मनका सौन्दर्य्य है और शारीरिक सौन्दर्य्यकी तरह उसके सामने प्रायः और सब बातें दब जाती हैं।

कहा है—"जिसका हृदय प्रसन्न रहता है उसका मुख भी प्रसन्नतापूर्ण दिखाई देता है।" यह भी कहा है—"प्रसन्न हृदय औषधिके समान उपकार करता है।" बिना आनन्दके मानव-जीवनका काम ही नहीं चल सकता। बहुतसी दशाओंमें आनन्द से ही सफलताकी प्रप्ति होती है। बड़े बड़े कामोंमें जो कठिनाइयाँ

होती हैं उनका सामना करनेके लिए मनमें एक ऐसे गुणकी आव-श्यकता होती है जिससे वह विचलित या निरुत्साह न हो जाय। आनन्द-वृत्तिसे मनमें यह गुण आ जाता है। शान्त आत्मा, शुद्ध हृदय और उत्तम स्वभावका आनन्द एक प्रधान लक्षण है। वह मनुष्यकी उदारता, गुण-ग्राहकता और निरभिमानताका भी परि-चायक है। बड़े बड़े कार्य्योंसे भी उतना कल्याण नहीं होता जितना प्रसन्नता-पूर्वक कही हुई छोटी छोटी बातोंसे होता है। भारी प्रपातकी अपेक्षा छोटेसे झरनेका बहाव अधिक उपयोगी होता है। झरनेके धीरे धीरे बहनेमें अपूर्व सौन्दर्य्य होता है, पर प्रपातके कारण सदा बिनाश ही होता है। यही दशा हमारे जीवन की दैनिक बातोंका है।

संसारकी सारी समस्याओंकी मीमांसा सहानुभूतिसे ही होती है-बिना उसके कोई बात समझमें ही नहीं आती। बिना सहानु-भूतिके मनुष्य सहनशील नहीं हो सकता। प्रत्येक मनुष्यकी आन्त-रिक योग्यता उतनी ही होती है जितना उसमें सहानुभूतिका बल होता है। जिस मनुष्यमें सहानुभूतिकी कमी हो वह कभी पूर्ण सदाचारी नहीं हो सकता। बहुतसे लोग दिन रात अपने ही आनन्द-मंगल और अपनी ही चिन्तामें लगे रहते हैं और कभी इस बातका ध्यान नहीं करते कि कौन व्यक्ति उनकी दया या सहायता का पात्र है। सहानुभूतिके अभावके कारण ही संसारमें बहुतसे स्वार्थान्ध मनुष्य दिखलाई देते हैं। "मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" और "प्रेम एव परो धर्म्मः" आदि वाक्योंमें ऐसे सिद्धान्त भरे हुए हैं जिनके अनुसार कार्य्य करनेसे यह संसार ही स्वर्ग बन सकता है।

हर एक भले आदमीका आचरण नीति और धर्मके तत्त्वोंके अनुकूल और बहुत ही उच्च श्रेणीका होगा। वह कभी ऐसा ऋण

नहीं लेगा जिसका चुकाना उसकी सामर्थ्यसे बाहर हो। जो मनुष्य उसकी अपेक्षा निर्धन होकर भी शान शौकतसे रहनेके लिये औरोंसे ऋण लेगा, उसकी वह निन्दा करेगा। जो केवल लोगोंकों दिखलानेके लिये खूब बढ़िया कपड़े पहने और खूब खर्च करे वह कभी भला आदमी नहीं कहा जा सकता, वह भले आदमीका केवल स्वांग है। और लोग भी कभी ऐसे आदमियोंको भला आदमी नहीं समझते और उनकी असलियत तुरन्त ताड़ जाते हैं। पर एक भला आदमी दूसरे भले आदमीको तुरन्त ही पहचान लेता है। वे स्वभावतः एक दूसरेकी ओर आकर्षित होते हैं और उसके गुणोंका आदर तथा प्रशंसा करते हैं। भले आदमी और भले आदमीके स्वांगमें यह अन्तर है कि भला आदमी तो अपने कुत्ते पर भी दया करेगा, पर स्वांग अपनी स्त्री पर भी दया नहीं करेगा। भला आदमी उदार-हृदय होगा। सम्भव है कि धन-दानके सम्बन्धमें वह उदार न हो; क्योंकि जो दान पात्रापात्रका विचार किये बिना ही दिया जाता है वह प्रायः बहुत हानिकारक होता है। पर इसमें सन्देह नहीं कि उसके विचार अवश्य उदार होंगे और वह प्रायः पात्रों पर ही दया दिखलावेगा।

प्रत्येक मनुष्यका सच्चा महत्त्व इसी बातमें है कि उसे अपने जीवनके सच्चे उद्देश्यका पूरा पूरा ज्ञान हो। जिस मनुष्यको पूर्ण आत्म-ज्ञान होगा अथवा जो अपने विवेककी आज्ञाका पालन करेगा वह अपना उद्देश्य और कर्त्तव्य भी जान सकेगा। अनुभव हमें बतलाता है कि हम स्वयं जो कुछ बनना चाहते हैं वही बन जाते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपना महत्त्व या मूल्य स्वयं ही निश्चित करता है; क्योंकि हम अपनी इच्छाके अनुसार ही महान् या नीच होते हैं। यदि हम ईमानदार, सच्चे और दयालु होना चाहते हैं तो

धीरे धीरे हम वैसे ही हो जाते हैं। आरम्भमें इस प्रयत्नमें हमें जो कठिनाइयाँ होती हैं वे आगे चल कर धीरे धीरे कम होती हैं। हमारी कर्म्मण्यता, सुजनता और उदारता आदि धीरे धीरे व्यवहारमें आनेके कारण बढ़ती जाती हैं। पहले जिस बातके लिये हमें प्रयत्न करना पढ़ता था वही अब हमारे लिये सहज और स्वाभाविक हो जाती है। और इस प्रकार मनुष्य अपने आपको उदार, न्याय परायण, परदुःख-कातर, नम्र, सहनशील और सज्जन बना लेता है।

सच्चे भले आदमीकी पहचान यह है कि उसे अपनी प्रतिष्ठाका ध्यान होगा और उसमें सहानुभूति, सुजनता, सहनशीलता और उदारता होगी। केवल संसारको दिखलानेके लिये ही नहीं बल्कि सब दशाओंमें वह सदा सच बोलेगा और उचित कार्य्य करेगा। इसीलिये वह कभी किसी ऐसे कामके लिये बचन नहीं देगा जो उससे न हो सकता हो। जो भला आदमी होगा वह झूठी बातोंसे अपने आपको कभी न गिरावेगा; बल्कि यदि सत्य बोलनेके कारण उसे कोई विपत्ति भी सहनी पड़ेगी तो उसे वह प्रसन्नतासे सह लेगा।

वास्तविक भला आदमी कभी अपने बलका अनुचित प्रयोग न करेगा और कभी अपने अधीनों पर अत्याचार न करेगा। मनुष्य अपने बराबरवालोंके साथ, अपनी स्त्री अपने बच्चों और अपने नौकरोंके साथ, अफसर अपने अधीनस्थ कर्म्मचारिय के साथ, शिक्षक अपने शिष्योंके साथ, मालिक अपने नौकरोंके साथ और अमीर आदमी गरीबोंके साथ व्यवहार करनेमें यदि अपनी शक्तिका अनुचित प्रयोग न करे तो समझना चाहिए कि वह सचमुच भला आदमी है। ऐसा आदमी सदा अपने आपको वशमें

रखेगा। बिना अपने आप पर विजय प्राप्त किये मनुष्य भला आदमी हो ही नहीं सकता। इसके लिये स्वार्थ-सम्बन्धी कामनाओंको दबाने, और निकृष्ट श्रेणीकी इच्छाओंको रोकनेकी आवश्यकता होती है। इसी लिये भले आदमीके गुणोंमें संयम भी सम्मिलित है। संयमसे मनुष्यका मस्तिष्क स्वच्छ रहता है, आचरण शुद्ध रहते हैं और शरीर नीरोग रहता है। सम्पन्न मनुष्यके लिये परम आवश्यक गुण संयम है और दरिद्रके लिये धर्म्म, सन्तोष या सहनशीलता।

जो मनुष्य धीर और सहनशील हो, जो दूसरोंका आदर करे, जो दीन-दुखियोंके प्रति सहानुभूति दिखलावे और जो लोगोंके साथ वैसा ही व्यवहार करे जैसा वह स्वयं अपने साथ कराना चाहता है, वही सच्चा भला आदमी है। सदा दूसरोंका आदर करो, उनके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार और मधुर बातें करो। एक महात्माका कथन है—"सुजनता ईश्वरीय गुण है। ईश्वर अपनी महान् सुजनताके कारण ही भले और बुरे सबको प्रकाश और वर्षासे लाभ पहुँचाता है।" भला आदमी सदा न्याय-परायण और दृढ़ होता है। जो काम जिस प्रकार करने योग्य होता है, उसे वह उसी प्रकार करता है। वह क्षमा भी करता है और ताड़न भी, पर वह कभी किसी अनुचित कृत्यका बदला नहीं लेता। वह इस विषयमें महात्मा सुकरातका अनुकरण करता है। इस महात्मासे एक बार एक आदमीने कहा—"यदि मैं तुमसे बदला न ले सकूँ तो मैं मरजाऊँ।" इस पर उस महात्माने उत्तर दिया—"यदि मैं तुम्हें अपना मित्र न बना सकूँ तो मैं मर जाऊँ।"

भला आदमी कभी भयभीत नहीं होता। वह भारीसे भारी-जोखिम सहकर भी साहस-पूर्वक अपने पड़ोसी या साथीकी सहा

यता करता है। वीरोंका अभी अन्त नहीं हुआ है। अभी बहुतसे ऐसे लोग हैं जो डूबते हुए पुरुषों या स्त्रियोंको बचानेके लिए अपने प्राणों तककी परवा न करेंगे अथवा जो असहायोंको बचाने के लिये जलती हुई आगमें कूद पड़ेंगे। आजकलके समाजके इतिहासमें इस प्रकारके अनेक उदाहरण मिलेंगे। रोगियों और दीन दुखियोंकी सहायता और सेवाके लिये सेवाश्रम, अनाथालय और चिकित्सालय आदि खुलवानेवाले अब भी बहुतसे लोग हैं। युद्ध तथा शान्तिकालमें दूसरोंकी सहायताके लिये अपने प्राण तक दे देनेवाले अब भी बहुतसे लोग हैं। पहली फ्रेंच राज्यक्रान्तिके समय मारशल डी माडशीने बहुतसे पादरियों आदिकी रक्षा की थी। इस अपराधमें जब उसे फांसी दी जाने लगी तब भीड़मेंसे किसीने कहा—"साहस करो। माडशी! साहस करो!" इस पर उसने घूम कर कहा—"साठ वर्षकी अवस्थामें मैं अपने राजाके लिए किलेकी टूटी हुई दीवार पर चढ़ गया था, आज चौरासी वर्षकी अवस्थामें ईश्वरके वास्ते टिकठी पर चढ़नेके लिए मुझमें साहस का अभाव न होगा।"

छोटी छोटी बातोंमें साहस बड़ा ही उपयोगी होता है। हर एक आदमी बहादुर नहीं हो सकता, पर वह "आदमी" अवश्य हो सकता है। साहससे ही मनुष्य जीवनकी कठिनाइयोंका सामना कर सकता और उन पर विजय पा सकता है। साहस हमें अच्छे कामोंमें लगे रहने और बुरे काम से बचनेके योग्य बनाता है। वह हमें अपना ऋण चुकाने और दूसरोंके भरोसे पर न रहनेके योग्य बनाताहै। वह हमें स्वतंत्रता-पूर्वक बोलने तथा ऐसे अवसर पर चुपरहनेके योग्य बनाता है जब कि हमारे बोलनेसे औरोंकी क्षति होतीहो। वह हमसे अपनी अज्ञानता और भूलें स्वीकार कराता है।

वह हमारे दोष निकालता और यथासाध्य हमारा आचरण सुधारता है। आरम्भमें चाहे ये सब काम कठिन जान पड़ते हों, पर तो भी नैतिक साहससे ये काम हो अवश्य जाते हैं। गुलामीके लिये केवल कायर मनुष्यका ही जीवन है। साहसी मनुष्य कुछ सीखनेके लिये जीता और जीवन निर्वाह करना सीखता है। जब वह उचित और श्रेष्ठ कार्य करता है तब लोगोंमें उसका आदर होता है। और यदि लोग उसका आदर न भी करें तब भी उसे उसकी चिन्ता नहीं होती। क्योंकि जब मनुष्य सच्चे हृदयसे अपने कर्त्तव्योंका पालन करता है तब वह कभी लोगोंकी निन्दा या स्तुतिकी परवा नहीं करता।

स्त्रीको पुरुषकी अर्द्धांगिनी कहते हैं। प्रत्येक सत्पुरुषके घरमें वह जीवनका परम आनन्द है। स्त्रियां बहुधा प्रसन्न-चित्त, कोमल स्वभाव की और उदार होती हैं। अँगरेजीमें स्त्रीके लिये "लेडी" शब्द का व्यवहार होता है, जिसके मूल ऐँग्लो-सैक्सन शब्दका शब्दार्थ "अन्नपूर्णा" होता है। हमारे यहां भी स्त्रियों को घरकी "लक्ष्मी" और "अन्नपूर्णा" कहते हैं। गृहस्थीका सारा सुख और सारा सुप्रबन्ध स्त्रियों पर ही निर्भर करता है। उनमें एक प्रेम-भाव ऐसा प्रबल होता है जिसकी सहायतासे सदा सब कठिनाइयों पर विजय प्राप्त हो सकती है। गाथेका कथन है—"परिश्रमसे जो काम सारी उमरमें भी कठिनतासे हो सकता है वह प्रेमके द्वारा एक क्षणमें हो जाता है।" सन्त औगरीका वचन है—"प्रेम स्वयं ही ज्ञान है; समस्त ज्ञानोंकी उसीसे उत्पत्ति होती है।" हृदयमें प्रेमसेही सुजनताकी उत्पत्ति होती है और तब वह सुजनता हमारे बाहरी व्यवहारोंमें दिखाई देती है।

स्त्रियोंका सौन्दर्य बहुत ही कम आकर्षक होता है। उनकी

कोमलता, सत्यता, निष्ठा, व्यवहारकी सात्विकता, दूसरोंका आदर, उत्तरदायित्वका ज्ञान और अच्छी आदतें ही सबसे अधिक आकर्षक होती हैं। प्रत्येक स्त्रीमें आकृतिका सौन्दर्य न तो आवश्यक होता है और न स्थायी। समय पाकर वह सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। लेकिन प्रेम और कोमलता आदि स्थायी हैं और उन्हींसे गृहस्थी तथा समाजका बन्धन शिथिल नहीं होने पाता। स्त्रियोंका कर्त्तव्य पुरुषोंके कर्त्तव्यसे भी भारी होता है। पुरुषोंको तो केवल धन कमाना पड़ता है, पर स्त्रियोंको गृहस्थीका बाकी सारा प्रबन्ध करना पड़ता है। पिताकी अपेक्षा माताके कर्त्तव्य अधिक होते हैं; क्योंकि बालकोंके चरित्र आदिका गठन उन्हीं पर अवलम्बित होता है। धन्य है वह पुरुष जिसके घरमें ऐसी सुयोग्य लक्ष्मी हो और धन्य हैं वे बालक जो ऐसी सुयोग्य माताके गर्भसे उत्पन्न हों।

यद्यपि आचरणकी शुद्धता स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये समान रूपसे परम आवश्यक है तथापि सृष्टिकी आदिसे लेकर अब तक अपने आचरणको स्त्रियोंने जितना अधिक शुद्ध रखा है, उतना, दुःख है कि पुरुषोंने नहीं रखा। स्त्रियोंमें एक दूसरी विशेषता यह है कि उन्हें सदा घरमें ही रहना पड़ता है और सांसारिक झंझटोंसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। और थके-माँदे, दुखी तथा चिन्तित पुरुष शान्ति, सुख तथा सान्त्वना पानेके लिये उनके पास जाते हैं। समाजकी उन्नति और अवनति भी स्त्रियों पर ही निर्भर है। बालकोंका सुधार जितने सहजमें स्त्रियाँ कर सकती हैं उतने सहजमें पुरुष कदापि नहीं कर सकते; और उन्हीं बालकों पर समाजकी उन्नति और अवनति निर्भर करती है।

दूसरा प्रकरण ।

बड़े आदमी बड़े कर्म्मण्य होते हैं ।

वर्त्तमान सभ्यता बहुतसे अंशोंमें प्राचीनकालके परिश्रम का ही फल है । नीति, ज्ञान, कला और विज्ञानकी सभी बड़ी बड़ी बातोंकी पूर्ति हमारे पूर्वज काम करनेवालोंने ही की है । प्राचीनकालके लोगोंने जो कुछ भण्डार संग्रह कर रखा है, प्रत्येक पीढ़ी उसमें कुछ न कुछ वृद्धि करती है; और इस प्रकार ज्ञान और विज्ञानका भण्डार आगेकी पीढ़ीको मिलता है । परिश्रम करनेवालोंमें सबसे ऊंचा स्थान मानसिक परिश्रम करनेवालों अथवा मस्तिष्कसे काम करनेवालोंका है । वे ही लोग समाजके धनी और महाजन हैं । समाजका काम धन और कुलीनतासे नहीं चलता, बल्कि मस्तिष्क और कार्यसे चलता है । सदासे समाजमें कार्य्यकारिणी शक्तिका ही सबसे अधिक आदर होता है । बड़े बड़े काम करनेवालोंको चाहे कितने ही कष्ट और अपवाद क्यों न सहने पड़े हों, पर तो भी अब तक उनकी आत्माएँ हम पर शासन करती हैं । दर्शनमें, कपिल, गौतम और कणाद अभी तक जीवित हैं । कवितामें वाल्मीकि, व्यास और कालिदास अभी तक असर हैं । पर उनके समयके राजाओं और महाराजाओंका कोई नाम भी नहीं जानता ।

प्राचीन कालके महापुरुषोंने बहुत ही परिश्रम-पूर्वक हमारे लिये ज्ञान आदिका बहुत बड़ा भण्डार तैयार किया है। बहुतसे लोगोंमें तो कार्य्य करने की प्रवृत्ति किसी दैवी शक्तिके समान प्रबल थी। उनकी समझमें कार्य्य-क्षेत्र इतना विस्तृत और जीवन इतना संकुचित था कि वे एक क्षणको भी व्यर्थ नहीं जाने देते थे। यदि उनके अस्तित्वके लिये नहीं तो कमसे कम उनके प्रसन्न रहनेके लिये कार्य्य अवश्य आवश्यक था। काम उनके रोएँ रोएँमें पैवस्त हो गया था। जस्टिस रानडे कभी अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने देते थे। वे सदा कुछ न कुछ अध्ययन किया करते थे और किसी न किसी विषयका मनन किया करते थे। यहाँ तक कि अस्वस्थताकी दशा में भी वे कभी काम नहीं छोड़ते थे। मृत्युसे केवल दो दिन पहले तक रुग्णावस्थामें जब घरके लोगोंने देखा कि आप सदा कुछ न कुछ परिश्रम किया करते हैं तक डाक्टरने आपको काम बन्द कर देनेकी सम्मति दी। उस समय आपका महाबलेश्वर जानेका विचार था। जब लोगोंने आपकी अधिक पढ़ाईके कारण चिन्ता प्रकट की थी तब आपने कहा था—"जिस पढ़नेमें मन लगता है, समाधान होता है और छोटी मोटी वेदनाएँ भूल जाती हैं, उसे छोड़नेसे क्या विश्रांति मिलेगी? बिना कोई काम किये यदि निरर्थक जीवन बितानेका समय आ जाय तो तत्काल ही अन्त हो जाना उससे कहीं अच्छा है।" जिस दिन रातको आपकी मृत्यु हुई थी उस दिन आपका शरीर कुछ स्वस्थ जान पड़ता था। दिन भरका नियमित कार्य्य करके सन्ध्या-समय आप गाड़ी पर हवा खाने गये थे। सन्ध्याको लौटने पर आपको मालूम हुआ कि दुर्भिक्ष-कमीशनके मेम्बर जयपुरके दीवान रायबहादुर कान्तिचन्द्र

मुकुर्जीका कमीशनके नागपुर पहुँचने पर अचानक देहान्त हो गया। उस समय आपने कहा था—"काम करते हुए मरना भी कैसा आनन्ददायक है।"

यद्यपि महान् पुरुष सदा घोर परिश्रम ही करते रहते हैं और कभी कोई क्षण व्यर्थ नहीं जाने देते तो भी अपने कामसे उनका कभी सन्तोष नहीं होता। वे जो कुछ करते हैं उसे वे बहुत ही साधारण और तुच्छ समझते हैं और उसके सम्बन्धमें उनके हृदयमें बहुत ही उच्च आदर्श अथवा आकांक्षा होती है। सच्चा प्रतिभाशाली मनुष्य अपने कार्य्यसे कभी सन्तुष्ट नहीं होता। अपने विचारोंको पूर्ण रूपसे कार्य्यमें परिणत करनेमें वह अपने आपको असमर्थ पाता है। एक बार एक मूर्त्तिकारने एक मूर्त्ति बनाई थी। उसे देख कर एक राह-चलतेने उसकी बहुत प्रशंसा की। इस पर उस मूर्त्तिकारने कहा—"अगर कहीं तुम वह मूर्त्ति देख पाते जो (अपने मस्तक पर उँगली रख कर) यहाँ है तब तुम समझते कि मूर्त्ति कैसी होती है।" अर्थात् वह मूर्त्तिकार वास्तवमें जैसी मूर्त्ति बनाना चाहता था उसके मुकाबलेमें उसकी बनाई हुई मूर्त्ति कुछ भी नहीं थी। यद्यदि प्रसिद्ध कवि वरजिल को अपना "एनडे" नामक काव्य तैयार करनेमें ग्यारह वर्ष लग गये थे तथापि उसकी समाप्ति पर वह उससे इतना असन्तुष्ट था कि वह उसे जला देना चाहता था। प्रसिद्ध लेखक वालटेयरने कहा था कि मेरा एक भी ग्रन्थ मेरी रुचि और इच्छाके अनुकूल नहीं हुआ।

ग्रन्थकारोंके सम्बन्धमें तो एक प्रसिद्ध ग्रन्थकारने यहाँ तक कहा है कि यदि केवल ऐसे ही ग्रन्थ प्रकाशित किये जायँ जिनसे उनके लेखक पूर्णरूपसे सन्तुष्ट हों तो बहुत अधिक ग्रन्थ अप्रका-

शित ही रह जायँ। बात यह है कि मनमें जो उच्च कोटिके और आदर्श विचार उत्पन्न होते हैं बहुधा वे लिखनेमें छूट जाते हैं। कलमकी अपेक्षा मन कहीं अधिक दौड़ता है और प्रायः बहुत दूर की बातें सोचा करता है। जब तक कलमसे उन विचारोंको लिखना आरम्भ किया जाय तब तक उनका सौन्दर्य्य पहुँचके बाहर हो जाता है। यदि वे विचार किसी प्रकार लिखे भी जा सकें तो भी उनका बहुत कुछ सौन्दर्य्य लिखनेमें ही नष्ट हो जाता है! इसमें सन्देह नहीं कि यह बात बहुतसे अंशोंमें सभी बड़े बड़े कला-कुशलोंके सम्बन्धमें ठीक घटती है कि विचार सदा शब्दोंसे बहुत बड़े होते हैं और कृति चाहे कितनी ही सुन्दर क्यों न हों पर तोभी प्रतिभा सदा उससे बढ़ कर ही होती है। और इसीलिये बहुतसे लेखकोंको अपने लेखों आदिमें अनेक बार बहुत कुछ परिवर्त्तन करना पड़ता है।

बहुतसे बड़े बड़े काम करनेवाले ऐसे भी हो गये हैं जिन्होंने अपना पुराना पेशा छोड़ कर अपनी रुचिके अनुकूल कोई नया काम आरम्भ किया हो और उसमें अच्छी सफलता प्राप्त की हो। माता-पिता अपने बालककी रुचिका बिना ध्यान किये ही उसे काममें लगा देते हैं और जब वह सयाना होता है तब उस कामसे असन्तुष्ट होकर उसे छोड़ देता और अपने मनके मुताबिक किसी नये काममें लग जाता है। यहां असन्तोष उसका सहायक होता है। इस असन्तोषके सम्बन्धमें एक कहानी है। एक बार एक राजाके घर एक लड़का हुआ। उसे उपहार देनेके लिये बारह परियां बारह तरहके गुण लेकर आईं। किसीने उसे बुद्धि दी, किसीने बल और किसीने रूप दिया। बारहवीं परीके पास असन्तोष था, इसलिये राजाने उसका उपहार नहीं लिया। बड़े होने

पर बालकमें और सब गुण तो थे, पर असन्तोष नहीं था। वह अपनी वर्त्तमान अवस्थामें ही सदा सन्तुष्ट रहता था, इसलिये कोई बड़ा काम न कर सका और उसका सारा जीवन यों ही बीत गया। तब कहीं जाकर राजाको असन्तोषका महत्त्व मालूम हुआ।

पाश्चात्य देशोंमें ऐसे बहुतसे लोग हो गये हैं जिन्होंने बहुत दिनों तक एक काम करके कोई सफलता नहीं प्राप्त की और तब दूसरे काममें लग कर अच्छा यश और नाम कमाया। पर उनमें से अधिकांश लोग ऐसे ही हैं जो और और कामोंको छोड़ कर कला, साहित्य या विज्ञानके क्षेत्रमें आये। और इसमें दूसरी विलक्षणता यह है कि उनमें अधिक सफलता ऐसे ही लोगोंको हुई जो पहले सेना-विभागमें रह चुके थे। सैनिक बहुधा धीर, वीर और साहसी होते हैं और इसीलिए वे साहित्य या विज्ञान आदि के कार्य्योंमें पड़नेवाली कठिनाइयोंको सहजमें ही पार कर लेते हैं और निरन्तर परिश्रम करते रहते हैं।

विज्ञान या साहित्य-सम्बन्धी कार्य्य करनेवाले लोग बहुधा अपने आपको भूल जाते हैं। उन्हें केवल अपने अन्वेषण और मननमें ही सबसे अधिक आनन्द मिलता है। ऐसे लोगोंको कठिनाइयां भी बहुत सहनी पड़ती हैं और निरन्तर बहुत अधिक परिश्रम भी करना पड़ता है। पाश्चात्य देशोंमें अनेक ऐसे कवि और लेखक आदि हो गये हैं, जो केवल कुछ ही घण्टे विश्राम करते थे और महीनों तक अपनी कोठड़ीमें बन्द रह कर ही लगातार काम किया करते थे। हंगरीका पेटर नामक गणितज्ञ गरमीके दिनोंमें केवल चार घण्टे सोता था। दूसरी बात यह है कि ऐसे लोग अपने लाभ, मान या किसी और प्रकारके स्वार्थके लिये कभी कोई काम नहीं करते, उनका मुख्य उद्देश्य केवल विद्या और कला

आदिकी उन्नति करना ही होता है। प्रसिद्ध लेखक स्पिनोजाका एक ग्रन्थ, राजा चौदहवाँ लूई अपने आपको समर्पित कराना चाहता था और उसके बदलेमें वह उसे पेन्शन देना चाहता था। पर स्पिनोजाने पेन्शन लेनेसे इन्कार कर दिया और वह ग्रन्थ उसे नहीं अर्पित किया।

ज्योतिषियोंको अपने काममें कितना परिश्रम करना पड़ता है, इसका अनुमान विचारवान् पाठक स्वयं ही कर सकते हैं। ग्रहोंके सम्बन्धकी बातोंका पता लगानेके लिये रातरात भर आकाशकी ओर ताकते हुए ही उन्हें अपना जीवन बिता देना पड़ता है। भास्कराचार्य्य और वराहमिहिर आदिको ज्योतिष-सम्बन्धी अपने सिद्धान्त स्थिर करनेमें जो कठिनाइयाँ हुई होंगी, उनका अनुमान सहजमें नहीं हो सकता। ब्रेहे नामक ज्योतिषी अपनी वेधशालासे इक्कीस बरसोंमें शायद ही कभी बाहर निकला हो। गेलीलियोंकी सारी उमर आकाश ताकते ही बीती थी। फ्लेमस्टीड नामक एक ग़रीब पादरीने बीमार रह कर और दूसरे बहुतसे काम करके भी तिहत्तर वर्षकी अवस्था तक निरन्तर परिश्रम करके आकाशीय स्थिर तारोंके सम्बन्धमें भ्रम-पूर्ण सिद्धान्तोंकी त्रुटियाँ दूर की थीं। युरोपके सर्व-श्रेष्ठ ज्योतिषी ब्रेडलेने बहत्तर वर्षकी अवस्था तक निरन्तर तारों आदिका वेध किया था। प्रसिद्ध ज्योतिषी विलियम हरशलेने चौरासी वर्षकी अवस्था तक और उसकी बहिनने अट्ठानवे वर्षकी अवस्था तक ग्रहोंका वेध किया था। इन सब उदाहरणोंसे ज्योतिषियोंके परिश्रमका तो पता लगता ही है; साथ ही और दो बातोंका भी पता लगता है। एक तो यह कि लोगोंका यह विश्वास भ्रम-पूर्ण है कि ग्रहोंका वेध करनेसे आँखें कमज़ोर हो जाती हैं और

दूसरी बात यह सिद्ध होती है कि ज्योतिषियोंकी आयु प्राय: अधिक होती है।

अलेकजेण्डर वान हम्बल्ट भी बड़ा परिश्रमी हो गया है। उसने अनेक प्रकारके और बहुत अधिक काम किये हैं। दिन भर तो वह अपने और और कामोंमें लगा रहता था और रातको विज्ञान सम्बन्धी विषयोंका अध्ययन तथा मनन करता था। अपनी मृत्युसे तीस वर्ष पहलेसे वह नित्य प्रातःकाल चार बजे उठा करता था और रातके आठ बजे तक बराबर काम करता था। उसका यह क्रम नब्बे वर्षकी अवस्था तक रहा। उसे बहुत अधिक विषयोंका बहुत अच्छा ज्ञान था। प्रत्येक बुद्धिमानके लिये उसने तीन बातोंकी आवश्यकता बतलाई है। एक तो चित्तकी शान्तिकी, दूसरे किसी प्रकारके वैज्ञानिक श्रमके अनुराग की और तीसरे उस आनन्दको शुद्ध अनुभव-शक्तिकी—जो प्रकृति सदा प्रदान करनेके लिये तैयार रहती है। उसने युवावस्थामें ही भिन्न भिन्न वैज्ञानिक विषयों पर अनेक अच्छे लेख लिखे थे। एक ग्रन्थ वनस्पतियोंके सम्बन्धमें, एक शरीर-शास्त्र पर और एक भूगर्भकी गैसोंके सम्बन्धमें लिखा था, उसे खनिज शास्त्रका भी पहलेसे ही बहुत अच्छा ज्ञान था। बोनप्लेण्डके साथ वह दक्षिण अमेरिका गया और वहाँ पाँच वर्ष तक उन दोनोंने ऐसे ऐसे प्रदेशोंमें भ्रमण किये, जहाँ तब तक वैज्ञानिक निरीक्षणके लिये कभी कोई युरोपियन गया ही न था। वहाँ से लौट कर बारह वर्ष तक वह पेरिसमें रहा और वहाँ उसने उन विषयों पर कई अच्छे अच्छे और बहुत बड़े ग्रन्थ लिखे, जिनका ज्ञान उसने दक्षिण अमेरिकामें प्राप्त किया था। इसके उपरान्त उसने युरोपके अन्यान्य देशोंमें भ्रमण किया और वहाँ अपने अनेक ग्रन्थ प्रकाशित कराये।

उसका बड़ा भाई विलियम वान हम्बल्ट उससे भी बढ़ कर परिश्रमी और विद्वान् था। चालीस वर्ष तक वह युरोपका सबसे बड़ा दार्शनिक अ.र भाषाशास्त्र-वेत्ता माना जाता था। वह कहा करता था—

" मनुष्यके लिये काम उतना ही आवश्यक है, जितना खाना और सोना। जो लोग कुछ भी काम नहीं करते, वे भी यही समझते हैं कि हम कुछ न कुछ कर रहे हैं। संसारमें एक भी आदमी ऐसा नहीं है, जो अपने आपको निकम्मा समझता हो।" वास्तवमें यह बात बहुत ही ठीक है। कोई अपनी जीविकाके लिये, कोई आनन्दके लिये, कोई धनके लिये, कोई प्रसिद्धिके लिये, और कोई केवल इसलिये कि वह बिना काम किये रह ही नहीं सकता, सदा कुछ न कुछ काम करता रहता है। मनुष्यके अस्तित्वके लिये काम बहुत ही आवश्यक है।

जान डाल्टनने अनेक वैज्ञानिक आविष्कार किये थे। इसके लिये जब उसे एक अवसर पर बधाई दी जाने लगी, तब उसने कहा कि " इस समय मेरी तरह और जो लोग काम कर रहे हैं, उन्हें देखते हुए मैं अपने सम्बन्धमें केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि औरोंकी अपेक्षा मुझे इसी लिये अधिक सफलता हुई है कि मैं निरन्तर परिश्रम करता रहा हूँ। मुझमें औरोंकी अपेक्षा विशेष प्रतिभा नहीं है। मेरी समझमें परिश्रम और अध्यवसायसे ही मनुष्य दूसरोंसे आगे निकल जाता है।" वास्तवमें वह स्वयं बड़ा ही परिश्रमी था। इकहत्तर वर्षकी अवस्थामें लकवेकी बीमारीसे कुछ ही अच्छे होने पर वह फिर अपने काममें लग गया था और यही काममें लगा रहना ही उसकी सारी सफलताका मूल है। अधिकांश महान् पुरुषोंने अपनी

प्रतिभाके बलसे नहीं, बल्कि दृढ़ निश्चय और अनन्त कार्य्य-कारिणी शक्तिके कारण ही महत्ता प्राप्त की है।

सुप्रसिद्ध महात्मा कार्टिन लूथरमें काम करनेकी बहुत अधिक शक्ति थी। वह भाषाशास्त्र-वेत्ता, तार्किक, उपदेशक और राजनीतिज्ञ था। युरोपमें उसके जीवन-कालमें कोई ऐसा बड़ा काम नहीं हुआ, जिसका बहुत बड़ा अंश उसके द्वारा न हुआ हो। युवावस्थामें ही उसने इतने अधिक ग्रन्थ और लेख आदि लिखे थे, जितने अ.र लोगोंने सारे जीवनमें भी न लिखे होंगे। तीन वर्ष में उसके चार-सौ छियालीस ग्रन्थ प्रकाशित हुए थे। उसका पहला प्रकाशित ग्रन्थ "दृढ़ निश्चय" पर था। संगीत पर उसका नया अनुराग था और वह कहा करता था कि इसकी सहायतासे मनुष्य बहुतसे दोषोंसे बचा रहता है। खाली तो वह कभी रह ही नहीं सकता था। आधुनिक जर्म्मनीकी बहुत कुछ उन्नति और अभ्युदय उसीके परिश्रमका फल है।

काल्विन भी दिन रात परिश्रम किया करता था। उसने एक बार अपने एक मित्रको लिखा था—"मेरी किताबका प्रारम्भिक अंश लेनेके लिये एक आदमी खड़ा था, इसलिये मुझे करीब बीस पेज दोहराने थे। इसके अतिरिक्त मुझे व्याख्यान देना था, उपदेश देना था, चार पत्र लिखने थे और दस बारह प्रार्थियोंको व्यवस्था देनी थी।" वह क्षणभर भी खाली नहीं रहता था। वह इतना अधिक परिश्रम करता था कि उसका दिमाग खराब हो गया था, तो भी वह बड़े ही संयमसे रहता था, इसलिये वह पचपन वर्ष तक जीता रहा। अपनी अन्तिम बीमारीके समय जब कि वह कठिनतासे सांस ले सकता था, उसने लैटिनसे फ्रेंचमें एक ग्रन्थका अनुवाद किया था, एक अनुवाद दोहराया था और

एक ग्रन्थकी टीका लिखी थी। उसके मित्र उसे अधिक परिश्रम करनेसे रोकते थे, पर वह सदा यही उत्तर दिया करता था कि मैंने अभी किया ही क्या है? ईश्वरने मुझे जिस कामके लिये बनाया है, मुझे वह काम करने दो।

प्रसिद्ध विद्वान् जान नाक्सने भी बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ सह कर बहुत कुछ काम किया था। पादरी और शासक उसे सदा तंग करते रहते थे, और उनके डरसे वह इधर उधर भागता फिरता था। पर तो भी कभी उसने अपना काम नहीं छोड़ा। गुलाम बन कर उसे दो वर्ष-तक एक फ्रान्सीसी नाव पर मल्लाही करनी पड़ी थी और बराबर कोड़े खाने पड़े थे। यद्यपि उस समय उसका स्वास्थ्य बहुत ही बिगड़ गया था, तो भी दासत्वसे मुक्त होते ही वह फिर अपने मानसिक परिश्रममें लग गया। वह लोगोंमें जागृति उत्पन्न करनेके लिये चारों ओर घूमने लगा। यद्यपि सरकारने उसे बागी ठहराया था, पर तो भी लोग उसका आदर और साथ ही रक्षण करते थे। अपने परिश्रम, अध्यवसाय, योग्यता और साहस आदिके कारण वह सदा उत्तमता-पूर्वक अपने कर्त्तव्योंका पालन करता रहा। पादरियोंके निन्दनीय कृत्योंका विरोध उसने कभी नहीं छोड़ा। उसके मरने पर लार्ड मार्टनने कहा था—"यह कभी किसी आदमीसे डरना जानता ही न था।"

ईसाई धर्म्मके वेस्लियन मेथोडिस्ट सम्प्रदायका संस्थापक जान वेस्ली भी बड़ा ही परिश्रमी था। पचास वर्ष तक वह नित्य चार बजे सबेरे उठता था और पाँच ही बजे, जहाँ उसे कोई आदमी दिखाई पड़ता, वहीं वह उपदेश आरम्भ कर देता था। उपदेश और धर्म्म-प्रचार आदि के लिये उसे प्रतिवर्ष चार पाँच हज़ार मीलोंका भ्रमण करना पड़ता था।

इसी बीचमें वह बहुत कुछ लिखता पढ़ता भी था और अपनी किताबें भी छपवाता और बेचता था। पुस्तकोंकी अपेक्षा कार्य्यको वह बहुत अच्छा समझता था। एक बार उसने अपने एक शिष्यसे कहा था—"किताबोंके फेरमें ही न रह जाना, छटाँक भर प्रेम, सेर भर ज्ञानसे कहीं अच्छा होता है।" अपने जीवनमें ही उसने अपने सम्प्रदायकी बहुत कुछ उन्नति करली थी। वह इतना परिश्रमी था कि छियासी वर्षकी अवस्थामें भी वह दिन में दो दो और तीन तीन बार नित्य उपदेश दिया करता था। वह बड़ा ही संयमी था और कभी किसी प्रकारका नशा नहीं करता था। मानसिक श्रम करनेवालेके लिये इस गुणकी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है कि इच्छा होते ही उसे तुरन्त नींद आजाय। वेस्लीमें यह गुण था। वह कभी किसी रातको न जागता था। अमेरिकाके सुप्रसिद्ध आविष्कारक एडिसनमें भी यह गुण है कि वे जब चाहते हैं, तब सो जाते हैं। यदि कभी कहीं उन्हें पन्द्रह मिनटका भी समय मिलता है, तो वे तुरत सो जाते हैं।

यह तो हुई उच्च विषयोंके ग्रन्थोंकी बात। अब ग्रन्थोंके मान की बात लीजिए। रिचर्ड बैक्सटरने और और काम करनेके अतिरिक्त भिन्न भिन्न विषयों पर एक-सौ पैंतालीस ग्रन्थ लिखे थे। प्राइन नामक एक ग्रन्थकारके सम्बन्धमें कहा जाता है कि उसने अपने जीवनमें औसत आठ-सौ चौपेजी पेज लिखे और छपवाये थे। पर ऐसे लेखकोंके लिखे हुए अधिकांश ग्रन्थ अब नहीं मिलते, उस समय भी उनका आदर बहुत ही कम होता था। डा० कैम्बेलने भी बहुतसे ग्रन्थ लिखे थे। एक बार एक आदमीने उनसे उनके लिखे हुए समस्त ग्रन्थ माँगे। दूसरे ही दिन उसके घर गाड़ी भर किताबें पहुँचीं और उनके दामका बिल सिर्फ़ सत्तर पाउण्ड

का था। पादरी स्निडबर्ग कहा करते थे कि "मैंने जो कुछ लिखा है, वह दस छकड़ों पर भी कठिनतासे लादा जा सकता है!" हॅन्स सेश नामक जर्मन मोची गजबका लिक्खाड़ था। बहुतसे जूते बनानेके सिवा उसने अपने जीवनमें प्रायः दो-सौ नाटक और प्रहसन तथा प्रायः सात-सौ किस्से लिखे थे। मोसर नामक एक दूसरे जर्मन लेखकने चार-सौ अस्सी ग्रन्थ लिखे थे। क्रूंज नामक एक और जर्मनने अकेले एक विश्वकोश तैयार किया था; जो बहत्तर चौपेजी जिल्दोंमें समाप्त हुआ था। भारतवर्षमें भी अनेक बड़े बड़े लेखक हो गये हैं। बाल्मीकि और व्यासको जाने दीजिए, चन्दवरदायी और सूरदासने भी कुछ कम नहीं लिखा है। देवके लिखे हुए लगभग डेढ़-सौ ग्रन्थ हैं; जो अभी तक अप्रकाशित पड़े हैं। आधुनिक गद्य लेखकोंमें स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट, स्वर्गीय भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र और पं० भीमसेन शर्म्मा भी उल्लेखनीय हैं। भट्टजीके हिन्दीप्रदीपकी फाइलोंका बड़ा भारी ढेर लग जाता है, जिनमेंके अधिकांश लेख स्वयं भट्टजीके लिखे हुए ही हैं। भारतेन्दुजीके ग्रन्थोंकी संख्या लगभग डेढ़-सौकी है। पं० भीमसेनका आर्य्यसमाजी और सनातनधर्म्मी साहित्य मिल कर भी कुछ कम नहीं होता। उर्दूके लेखकोंमें पं० रत्ननाथ सरशार और कवि दागने बहुत अधिक लिखा है। फारसी भाषामें फिरदोसीका शाहनामा बहुत बड़ा ग्रन्थ है और उसका सबसे बड़ा गुण यह है कि शुद्ध फारसीके अतिरिक्त अरबीका एक भी शब्द उसमें नहीं आने पाया है। बंगलामें रवीन्द्र बाबूके लिखे हुए ग्रन्थोंका मूल्य सत्तर रुपये है। बंकिम बाबूने भी बहुत अधिक ग्रन्थ लिखे हैं। गुजराती भाषामें नारायण हेमचन्द्रने प्रायः साढ़े तीन-सौ ग्रन्थ लिखे हैं। मराठीमें

श्रीयुत हरिनारायण आपटेके लिखे हुए ग्रन्थोंकी संख्या भी बहुत अधिक है।

गिबनको अपने "रोमन साम्राज्यका उत्थान और पतन" नामक ग्रन्थके लिखनेमें पन्द्रह वर्ष लगे थे। कविराजा मुरारिदान को "जसवन्त जसोभूषण" लिखनेमें भी पन्द्रह ही वर्ष लगे थे। सर-जान सिंक्लेयर भी बहुत भारी लेखक थे। इक्यासी वर्षकी अवस्था तक वे बराबर काम करते रहे। अपने जीवनमें उन्होंने अट्ठारह खण्डोंमें दस बहुत बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे थे और एक-सौ साठ खण्डोंमें दूसरे चार बहुत बड़े ग्रन्थ अपने रक्षणमें छपवाये थे और भिन्न भिन्न विषयों पर तीन-सौ सड़सठ छोटी मोटी पुस्तकें लिखी थीं। इन सबसे बढ़ कर लिट्रे नामक एक फ्रान्सीसी लेखक था। उसने बासठ वर्षकी अवस्थामें भाषाका एक कोश बनाना आरम्भ किया था। वह शब्द-कोश क्या था, मानों प्रत्येक शब्दका पूरा पूरा इतिहास था। व्युत्पत्ति, उच्चारण आदि सब कुछ उसमें दिया हुआ था और अच्छे अच्छे लेखकोंके भिन्न भिन्न प्रकारके प्रयोगोंके उदाहरण भी उसमें दिये गये थे। बासठ वर्षकी अवस्थामें कोशका कार्य्य प्रारम्भ करके चौदह वर्षमें उसने तीन तीन हजार पेजके चार खण्ड तैयार किये थे। इतने थोड़े समयमें इतना काम कदाचित् ही किसी अकले आदमीने किया हो। उसे और और काम भी रहते थे, इसलिए कोशका काम वह तीसरे पहर तीन बजेसे छः बजे तक और फिर भोजनके उपरान्त सन्ध्या सात बजे से रात तीन बजे तक किया करता था। उसके सोनेका समय तीन बजेसे आठ बजे तक था।

सूदे भी सदा लिखता पढ़ता ही रहता था। उसके मनमें अनेक उत्तमोत्तम विचार उठते थे; पर अपने जीवनमें वह उनकी

पूर्त्ति न कर सका तो भी उसने प्रायः सौ ग्रन्थ और एक-सौ तीस अच्छे लेख लिखे थे। शिलरने अपने जीवनके अन्तिम पन्द्रह वर्षोंमें ही अपने सर्वोत्तम ग्रन्थ लिखे थे। इन पन्द्रह वर्षोंमें एक दिन भी ऐसा नहीं बीता था, जिसमें उसे एक न एक शारीरिक कष्ट न हुआ हो।

बहुतसे लोग केवल स्वार्थके लिये ही मानसिक परिश्रम करते हैं। वे ज्ञान-विज्ञान आदिमें कोई वृद्धि नहीं करते; केवल अपना चित्त प्रसन्न करते हैं। मेजो फैण्टीने संसारकी बहुतसी भाषाएँ सीखी थीं; पर कभी एक अक्षर भी न लिखा। मेगलिया वेशी भी सचमुच पुस्तकोंका कीड़ा ही था। वह फ्लोरेन्ससे केवल दो ही बार बाहर गया था। अपना बाकी सारा समय उसने अपने घर पर पुस्तकालयमें ही बिताया। वहीं वह खाता था, वहीं सोता था और वहीं रहता था। उसने पढ़ा तो बहुत अधिक, पर उसकी पढ़ाईसे किसीको कोई लाभ नहीं हुआ। कलकत्तेके हरिनाथ दे भी ऐसे ही पाठकोंमेंसे थे। वे प्रायः दो दरजन भाषाओंके एम० ए० हुए; पर उनकी पढ़ाईका परिणाम कुछ भी न हुआ।

इसके विरुद्ध स्पेनके कैलडरन और लोप डी वेगा, लिखनेमें सहस्रबाहु थे। कैलडरनने प्रायः चार-सौ और डी वेगाने दो हजार से अधिक नाटक आदि लिखे थे। डी वेगा उतने ही सहजमें लिखता था, जितने सहजमें बड़े बड़े बातूनी बातें करते हैं। लिखनेके लिये उसे कभी कुछ पढ़ना या देखना नहीं पड़ता था। उससे बिना कुछ लिखे रहा ही न जाता था। कोई ऐसा सप्ताह या महीना नहीं बीतता था, जिसमें उसका कोई नाटक या प्रहसन आदि न तैयार होता हो। अपने एक अन्तिम ग्रन्थमें उसने लिखा है कि मेरे प्रायः सौ नाटक तो ऐसे हैं

जो केवल एक ही एक दिनमें लिखे गये हैं। पाचास वर्ष तक वह बराबर लिखता रहा था। दो करोड़से अधिक पद्योंकी उसने रचना की थी और इक्कीस चौपेजी जिल्दोंमें उसकी फुटकर रचनाएँ इससे भिन्न हैं।

अँगरेजीके आधुनिक लेखकोंमें यदि कोई डी वेगाकी बराबरी-का है, तो वह सर वाल्टर स्काट है। वह प्रतिवर्ष अपने वेवरली उपन्यासोंकी बीस जिल्दें तैयार किया करता था। स्काट जब बहुत बीमार हो गया था, तब उसने दो लेखकोंको बोल कर ग्रन्थ लिखाने के लिये अपने पास रखा था। जितनी जल्दी जल्दी वह रचना करता था, उतनी जल्दी लिखा नहीं जा सकता था। वह विस्तर पर पड़ा पड़ा कराहता था और बराबर उपन्यास लिखाता जाता था। The Bride of Lammermobre (लैमर मूर की दुलहिन) नामक उपन्यासका अधिकांश इसी प्रकार लिखा गया था। पर इस सम्बन्धमें सबसे विलक्षण बात यह है कि नीरोग होने पर जब वह उपन्यास तैयार होकर स्काटको देखनेके लिये मिला, तब उसमेंकी एक भी घटना या संवादकी उसे स्मृति नहीं थी– उसमेंका सब कुछ उसे बिलकुल नया ही जान पड़ता था। यद्यपि उसके कथानककी भावना उसके हृदय में वाल्यावस्थासे ही थी, तो भी वह सारा ग्रन्थ उसने मानों निद्रित दशामें लिखाया था। उन दिनों वह शारीरिक वेदना कम करनेके लिये अफीम अवश्य ही बहुत अधिक खाया करता था।

जब उसका ऋण बहुत बढ़ गया था, तब उसने उसे चुकानेके लिये नेपोलियनकी जीवनी लिखी थी। वह समय उसके लिये बड़े ही कष्ट, चिन्ता और दुर्दशाका था। उसके नौ खण्ड प्रायः एक वर्षमें लिखे गये थे। बीच बीचमें जब जीवनी लिखनेसे उसका

जी ऊब जाता था, तब वह एक उपन्यास भी लिखा करता था। उसने चौहत्तर खण्डोंमें उपन्यास, इक्कीस खण्डोंमें काव्य, तीस खण्डोंमें इतिहास और जीवन-चरित्र तथा मासिक पत्रोंके लिये बहुतसे लेख लिखे थे। इनमेंसे एक-सौ चार खण्ड सन् १८१५ और १८३१ के मध्यमें लिखे गये थे। सोचकर लिखना तो दूर रहा, उन्हें इतने थोड़े समयमें खाली लिखना या नकल करना भी सहज काम नहीं था। साथ ही ध्यानमें रखने योग्य एक बात यह भी है कि वह केवल लेखक ही नहीं था; बल्कि अपनी काउन्टी का शेरिफ था, सेशन अदालतका क्लार्क था, एक प्रेस और ग्रन्थ-प्रकाशक कार्य्यालयका हिस्सेदार था और सारे संसारके लोगों से उससे पत्र-व्यवहार होता था। वह बड़ा ही वीर, परिश्रमी और सज्जन था।

बहुत अधिक लिखना किसी कामका नहीं होता। थोड़ा, पर अच्छा लिखा हुआ ही अधिक उपयोगी होता है और इसीलिये अच्छी लिखाईमें समय भी बहुत अधिक लगता है। बटलरने अपना Analcgy नामक छोटा पर उपयोगी ग्रन्थ बीस वर्षोंमें लिखा था। एक एक शब्द और एक एक वाक्यको उसने बीसियों बार दोहराया था, इसलिये उसमें एक शब्द भी ऐसा नहीं आया जो अनावश्यक हो और जिसका उचितसे कुछ भी अधिक अर्थ निकलता हो। उसमें खूब ही गठे हुए विचार भरे हैं। मांटेस्क्यूने एक किताब पचीस वर्षोंमें लिखी थी, पर आप उसे पढ़ना चाहें तो उसमें एक एक घण्टा भी न लगेगा। हरवेने रक्त-संचालन पर छब्बीस वर्षोंमें एक पुस्तक लिखी थी। लोकमान्य तिलकको गीता-रहस्य लिखनेसे पहले उसके लिये प्रायः तीस वर्षों तक परिश्रम करना पड़ा था। अरिओस्टोंने दस वर्षोंमें एक किताब लिखी थी,

जिसके पहले संस्करणकी केवल सौ प्रतियाँ छपी थीं और जो एक पुस्तक-विक्रेताके हाथ रुपये रुपये बेची गई थीं।

जिस प्रकार डी वेगा और स्काट लिखते और फेंकते चले जाते थे, उसी प्रकार वरजिल, पेट्रार्क, टस्सो, पैस्कल और बफन आदि अनेक ऐसे लेखक और कवि भी हो गये हैं, जो अपनी रचनाओंको सदा दोहराते और तेहराते ही रहते थे और कभी उन्हें उनसे सन्तोष नहीं होता था। पुस्तकोंका अधिक समय तक आदर और प्रचार केवल उनमें एकत्र किये हुए विचारोंके कारण ही होता है। केवल लेखन-शैलीके कारण ही बहुत दिनों तक कभी कोई पुस्तक नहीं ठहर सकती। इसी लिये शैली पर अधिक ध्यान देनेवाले लेखकोंकी रचनाओंका स्वयं उन्हींके समयमें विशेष आदर नहीं हुआ, पर जिन लोगोंने केवल विचारों और भावों पर ध्यान रखा, उनको पुस्तकोंका आदर बहुत दिनों तक होता रहा है।

साथ ही यह बात भी है कि जिस प्रकार जल्दी-जल्दी और सहज में लिखे हुए ग्रन्थ निरुपयोगी प्रमाणित होते और शीघ्र नष्ट होजाते हैं, उसी प्रकार वे ग्रन्थ भी निरुपयोगी ही प्रमाणित होते और शीघ्र नष्ट हो जाते हैं जो बहुत ही मगज-पच्ची करके लिखे जाते हैं। डी वेगाके दो हजार नाटकोंमेंसे आज कल केवल, दो ही तीन नाटक खेले जाते हैं और पाँच, सात या दस पढ़े जाते हैं। वही दशा इटालियन कवि लियोनियाके काव्योंकी भी है, जो एक एक पदको दस दस बार बनाया करता था। पीरो मफेई कभी एक दिनमें पन्द्रह लाइनसे अधिक नहीं लिखता था और क्लॉड बॉगलसको एक ग्रन्थके अनुवादमें तीस वर्ष लग गये थे। राजर्सने एक काव्य चौदह वर्षमें लिखा था। पर आज उनके ग्रन्थोंको कौन पूछता है? होरेश एक टाँगसे खड़े खड़े दो-सौ पद्य बनाया

करता था। पर आज उन पद्योंका कोई नाम भी नहीं जानता। नेपालकी तराईमें एक कवि थे, जो दिन भरमें चार पाँच-सौ श्लोक बना जाते थे, पर उन श्लोकोंमें तत्त्व कुछ भी नहीं होता था।

जिन लेखकोंमें कुछ लोकोत्तर शक्ति होती है, वे साधारण लेखकोंकी अपेक्षा निस्सन्देह अधिक फुरतीसे लिखते हैं। जिन रचनाओंसे प्रतिभाका पता लगता हो, वे बहुधा जल्दीकी ही होती हैं। ऐसी रचनाओंमें शैलीका सौन्दर्य भी विशेष नहीं होता क्योंकि जब तक लेखक या कवि शैली सुधारने बैठेगा, तब तक विचार स.रभ नष्ट हो जायगा। पर तो भी प्रतिभाशाली लेखकों और गद्यको केवल पद्यमें ढालनेवालोंमें बड़ा अन्तर होता है। पद्यमें बकते हुए चले जाना और बात है और कविता करना और बात है। जिस मनुष्यमें प्रतिभा होगी, उसके मनमें अच्छे अच्छे विचार बराबर उठते रहगे और यदि उसी समय वह उन विचारोंको लिख न ले, तो फिर वे सदाके लिये नष्ट हो जायँगे। गाथेके मनमें जब कभी कोई अच्छा विचार उठता था, तब वह तुरत उसे कागज पर लिख लेता था। एक दिन वह एक बहुत बड़े बादशाहसे बातें कर रहा था। इतनेमें उसके मनमें एक विचार उठा। वह तुरत बादशाहके सामनेसे उठ गया और एक अलग कमरेमें जाकर उस विचारको लिख कर लौट आया। प्रसिद्ध कवि पोपके मनमें जब कभी रातको सोते सोते कोई विचार उठता, तब वह तुरत उठ कर बत्ती जलाता और उसे लिख लेता था।

इरास्मसने एक काव्य केवल सात दिनोंमें लिखा था। पर अपने सारे जीवनमें उसने जो कुछ पढ़ा या सीखा था, उस सबका निचोड़ उसमें आ गया था। कारलाइलने कहा है—"बहुत दिन तक परिश्रम पूर्वक विचारसंग्रह करके और तब थोड़ेसे समयमें

उन्हें लिख डालना ही उचित मार्ग है। जब भट्टी बहुत देर तक तप चुकती है, तब एक दमसे शुद्ध सोना निकल पड़ता है।" चैपमैनने यद्यपि पन्द्रह सप्ताहोंमें होमरके बारह ग्रन्थोंका अनुवाद कर डाला था, पर वह अनुवाद अच्छा नहीं हुआ। निश्चिन्त होकर और कुछ धैर्य्य-पूर्वक जो रचना की जाती है, उसीमें विशेष सौन्दर्य्य आता है। बहुत शीघ्रता करनेसे तो वह सौन्दर्य्य नष्ट ही हो जाता है। सूरदास वृन्दावनके एक मन्दिरमें रहते थे और वहीं वे नित्य दस-बीस नये भजन बनाकर ठाकुरजीके सामने गाया करते थे। यही कारण है कि उनके पद सभी अवसरों और सभी उत्सवों पर गानेके योग्य तथा सभी घटनाओं और लीलाओंके सम्बन्धके हैं। यद्यपि सूरदासके पदोंमें भावोंके लालित्यकी कमी नहीं है, तथापि अनेक पदोंमें शीघ्रता और रचनाकी अधिकताके कारण भरतीके शब्द भी आ गये हैं। यदि उन्होंने अपने पदोंकी रचना उतनी ही शान्तिसे की होती, जितनी शान्तिसे तुलसीदासने की है, तो उनकी उत्तमता और भी बढ़ जाती।

जब कभी मानसिक उद्वेगकी प्रबलता होती है, उस समय प्रायः शारीरिक कष्ट और मानसिक वेदनाएँ भूल जाती हैं और रचना बहुत ही उत्तम होती है। बहुतसे लोगोंने बड़े ही कष्ट और चिन्ताके समय अच्छी अच्छी रचनाएँकी हैं। अनेक रचनाएँ ऐसी हैं, जिनके रचयिता, उन रचनाओंके समय कारागारमें थे, अथवा अनेक प्रकारकी शारीरिक वेदनाओंसे पीड़ित थे, अथवा ऋण-ग्रस्त थे, अथवा राजाओं और शासकोंके परम कोप-भाजन बने हुए थे, अथवा देशसे निकाले जाकर बड़ी कठिनतासे एकान्तमें अपना जीवन बिताते थे और उनकी तत्कालीन रचनाएँ शेष रचनाओं की अपेक्षा अधिक उत्तम हैं। इससे सिद्ध होता है मानों उनके

सामने शारीरिक कष्टों और मानसिक चिन्ताओंकी कोई गिनती नहीं थी। लेकिन ऐसे कठिन अवसरों पर उत्तम रचनाएँ करनेमें परिश्रम आदिकी उतनी आवश्यकता नहीं होती, जितनी प्रतिभाकी आवश्यकता होती है। "प्रतिभा" की ठीक ठीक व्याख्या करना बहुत ही कठिन है। विचार-शक्ति पर बहुत अधिक जोर देनेसे मनुष्यमें कुछ न कुछ प्रतिभा आ जाती है; पर तो भी वास्तविक प्रतिभा और ही होती है। उससे मृत पदार्थोंमें जीवन आ जाता है। प्रसिद्ध विद्वान् हेजलिटके मतसे प्रतिभाका मुख्य काम अभूतपूर्व विचारों और भावोंकी सृष्टि करना है। रस्किन उसे "प्रत्येक पदार्थके मूल तथा गूढ़ भागों तक पहुँचनेकी शक्ति" बतलाता है। मिल कहता है कि वह एक ऐसी अलौकिक शक्ति है, जिसकी सहायतासे साधारणकी अपेक्षा अधिक गूढ़ सत्यका ज्ञान होता है। कालरिज उसे "विचारोंको बढ़ानेकी शक्ति" बतलाता है। जान फास्टरका मत है कि वह अपने आन्तरिक प्रकाशको प्रदीप्त करनेकी शक्ति है। फ्लोरेन्सका कथन है कि वह मनुष्यकी बुद्धिका सर्वोत्कृष्ट विकाश है। मोलियरकी प्रतिभाके सम्बन्धमें यह कहा गया था कि उसने अपनी साधारण समझको इतना तीव्र बना लिया था कि अन्तमें वह प्रकाशमान् हो गई।

लेकिन वास्तवमें प्रतिभा इससे भी कुछ बढ़कर है। वह बुद्धि से कुछ बढ़कर है; बल्कि दैवी बुद्धि है; और वह किसी किसी मनुष्यका गुण है। बहुतसे लोग ऐसे हो गये हैं, जो जन्मसे ही स्वभावतः बड़े भारी योद्धा, गायक, कला-कुशल अथवा कवि थे। उनमें एक स्वाभाविक शक्ति थी, जिसका उपयोग किसी विशिष्ट कार्य्यमें होता था। उसके लिये किसीसे शिक्षा लेनेकी आवश्यकता नहीं। कई प्रतिभाशाली मनुष्य कोई नया मार्ग,

कोई नया भाव ढूँढ़ निकालते हैं और साधारण मनुष्य उनका अनुकरण करते हैं। धैर्य्य और परिश्रमकी सहायतासे मार्ग ढूँढ़ा जाता है, पर प्रतिभा मार्ग निकाल लेती है। बुद्धि तो केवल साधन मात्र है; प्रतिभा सबका मूल मंत्र है और इसीलिये प्राचीनकालके लोग उसे एक दैवी और अलौकिक गुण मानते थे। इसीलिये प्रतिभाशाली मनुष्य बड़ा भारी महात्मा माना जाता था।

एक महात्माका मत है कि संसारके सभी पदार्थ उस आत्माके अधीन रहते हैं, जो परम उन्नत दशामें पहुँच जाती है। निरन्तर ध्यान रखने और प्रयत्न करनेसे मानसिक शक्ति बहुत बढ़ जाती है। जिस प्रकार आतशी शीशे पर पड़नेवाली बहुतसी किरणें एक ही स्थान पर एकत्र होकर अग्नि उत्पन्न कर देती हैं, उसी प्रकार बहुत अधिक विचार और परिश्रम मनमें एक विशेष शक्ति उत्पन्न कर देता है। मनुष्य अपने विचारोंको एकाग्र करके उनपर जितना ही जोर पहुँचाता है, उसकी बुद्धि उतनी ही तीव्र हो जाती है। वहींसे प्रतिभाकी उत्पत्ति होती है। इसी स्थान पर पहुँच कर आरकी मेडीस हम्माममेंसे नंगा ही निकल कर गलियोंमें यह चिल्लाता हुआ फिरने लगा था—"मैंने पता लगा लिया। मैंने पता लगा लिया।" और लोग समझते थे कि वह पागल हो गया है। न्यूटनने निरन्तर विचार करनेसे ही पृथिवीकी आकर्षण शक्तिका पता लगाया था।

जिन मनुष्योंको आरम्भसे ही किसी विशिष्ट कार्य्यकी शिक्षा दी जाती है, वे एक ऐसे जालमें फँस जाते हैं जिसमेंसे उनका निकलना बहुत ही कठिन होता है। उनका मन और उनकी आदतें उसी विशिष्ट कार्य्यके अनुकूल बन जाती हैं और उनका भविष्य मानों निश्चित हो जाता है। पर तो भी बलवती प्रतिभाकी प्रवृत्ति किसी

प्रकार रोके नहीं रुकती। वह सब प्रकारकी परिस्थितियों, कठिनाइयों और कष्टोंको भेद कर निकल जाती है और अपने उचित मार्ग पर मनुष्यको लगा देती है। यही कारण है कि अनेक ऐसे महापुरुष हो गये हैं, जो आरम्भसे बहुत ही साधारण कामोंमें लगे हुए थे और प्रतिभाके जाग्रत होते ही कोई नया अविष्कार करके—कोई नई बात पैदा करके महापुरुषोंमें गिने जाने योग्य हो गये। उसीने बाल्मीकिको ठगसे महर्षि बना दिया, कालिदासको लकड़हारेसे महाकवि बना दिया, तुलसीदासको परमकामीसे परम-भगवद्भक्त और श्रेष्ठ कवि बना दिया गुरु नानकको व्यापारीसे तथा कबीरको जुलाहेसे एक एक नये मतका संस्थापक बना दिया।

एक बड़े विद्वान्‌का मत है कि जो मनुष्य जितना बड़ा बनना चाहता है, उससे अधिक बड़ा वह कभी नहीं बनता। पर वास्तवमें जो मनुष्य बहुत बड़ा प्रतिभाशाली होता है, उसे आरम्भमें अपनी प्रतिभा अथवा शक्तिका कोई ज्ञान ही नहीं होता। पर निरन्तर काममें लगे रहने और प्रायः उसके सफल होने पर मनुष्यमें अधिक उच्चाकांक्षा होती है और तभी उसकी प्रतिभा भी जाग्रत होती है। उस दशामें मनुष्य अपने आपको भूल जाता है, उसमें आत्म-विस्मृति आ जाती है।

यही कारण है कि बड़े बड़े प्रतिभाशाली और महात्मा लोग प्रसिद्धि और यशके विचारोंसे कोसों दूर भागते हैं। वे कभी नामके भूखे नहीं होते, वे सदा काम करना चाहते हैं और वे ही काम कर भी डालते हैं।

प्रतिभामें यद्यपि स्वयं भी बहुत कुछ शक्ति है, तथापि परिश्रमसे उसके द्वारा कार्य्यसिद्धिमें बहुत अधिक सहायता मिलती है।

स्वयं निरन्तर परिश्रम करनेकी शक्ति भी प्रतिभासे कुछ कम नहीं है। इसीलिए कहा जाता है कि भिन्न भिन्न मनुष्योंमें जो अन्तर होता है, वह उनकी स्वाभाविक मूल शक्तिके कारण नहीं, बल्कि परिश्रम और अध्यवसाय के कारण होता है। तो भी मनुष्यमें कुछ नवीनता उत्पन्न करनेकी शक्ति और प्रवृत्ति होनी चाहिए, नहीं तो कोरे परिश्रमका फल बहुत ही कम होगा। प्रतिभाशाली मनुष्य केवल परिश्रमी और अध्यवसायी ही नहीं होते, बल्कि अपने विचारों और कार्य्योंमें पूर्णरूपसे लीन हो जाते हैं। जब तक मनुष्य किसी विषयमें पूर्ण-रूपसे लीन न हो जाय, तब तक वह कभी कोई नया आविष्कार नहीं कर सकता—उसके लिए कोई नई बात नहीं पैदा हो सकती। ऐसे मनुष्योंको लोग बहुधा छोटी दृष्टिसे देखते हैं और जीवन-कालमें उनका विशेष आदर भी नहीं होता। पर इन सब बातोंकी परवा न करके वे बराबर अपने काममें लगे रहते हैं और अन्तमें संसार उन्हें महात्मा समझने लगता है।

कुछ लोग ऐसे भी हो गये हैं जिन्हें स्वयं अपनी प्रतिभाका ज्ञान होता है। संसार उन्हें प्रतिभाशाली पीछे मानता है और वे पहले ही अपनी प्रतिभाका पता पा लेते हैं। जान हएटरने एक बार एक आदमीसे कहा था—“मेरे मर जानेके बाद तुम्हें फिर दूसरा जान हएटर न मिलेगा।” डान्टे पहलेसे ही अपने आपको सर्व-श्रेष्ठ कवि समझता था। केप्लरको विश्वास था कि मैं अपने देशका रत्न हूँ और मेरे आविष्कार आगे चल कर यथार्थ प्रमाणित होंगे। अपने एक ग्रन्थमें उसने लिखा है—“जब कि परमेश्वरने छः हजार बरसमें मेरे समान एक भी निरीक्षक इस संसारमें नहीं भेजा है, तब यदि मेरी किताबके पाठक सौ बरस बाद पैदा हों, तो

क्या चिन्ता है।" गार्थ और वर्ड्स्वर्थको भी इसी तरह अपने प्रतिभाशाली होनेका ज्ञान था। वे लोग समझते थे कि चाहे हमारे समकालीन लोग हमारी कृतियोंका आदर न भी करें, तो भी आगेकी पीढ़ियां उनका आदर अवश्य करेंगी और यदि उनका यह विश्वास न होता तो, कभी किसी प्रकारकी रचना करनेकी उनकी प्रवृत्ति ही न होती।

महापुरुषोंका तो साधारण लोगों पर प्रभाव पड़ता ही है, पर महापुरुषों पर भी साधारण लोगोंका प्रभाव पड़ता है। वे जिस कालमें उत्पन्न होते हैं, उस कालकी परिस्थिति, शिक्षा और शासन-प्रणाली तथा धर्म्म आदिका उन पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि कुछ विशिष्ट कालोंमें एक साथ ही बहुतसे महापुरुष उत्पन्न हो जाते हैं। हमारे यहाँ प्राचीन वैदिक-कालमें वशिष्ठ, विश्वामित्र और जमदग्नि; उपनिषद्-कालमें याज्ञवल्क्य, जनक और गार्गी; महाभारत-कालमें व्यास, श्रीकृष्ण, भीष्म, और युधिष्ठिर; बौद्ध-कालमें बुद्ध, रुद्रक और महावीर आदि सब एक एक विशिष्ट समयमें और एक साथ हुए थे। इसी तरह शंकर, कुमारिल भट्ट और मण्डनमिश्र, कालिदास और दिङ्नाग, नागार्जुन और कृष्णयज्वा भी एक ही समयमें हुए थे। अकबरके राजत्व-कालमें फैजी, अब्बुल फजल, तुलसी, सूर, बनारसी दास, बीरबल, टोडरमल, केशवदास आदि और आधुनिक कालमें महादेव गोविन्द रानड़े, स्वामी दयानन्द, सर सैयद अहमद, डा० भाण्डारकर, प्रो० तैलंग, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, विशुद्धानन्द, राजा राममोहन राय, सत्यव्रत सामश्रमी, राजेन्द्रलाल मित्र, म० बापूदेव शास्त्री, लोकमान्य तिलक, दादाभाई नौरोजी, आदिका अवतरण प्रायः एक ही कालमें हुआ था। प्राचीन रोम, यूनान

और स्पेन आदि देशोंमें भी इसी तरह एक ही कालमें एक साथ अनेक बड़े बड़े विद्वान् और महापुरुष हो गये हैं और आधुनिक इंगलैण्ड, फ्रान्स, इटली और जर्मनी आदिमें ऐसे महात्माओंकी कमी नहीं है जो एक ही कालमें हुए हैं।

तीसरा प्रकरण

युवक महापुरुष

संसार बहुतसे अंशोंमें युवक ही है। समाजमें अधिकतर बालक और बालिकाएँ, युवक और युवतियाँ ही हैं। यही कारण है कि हम लोग शिक्षाको इतना अधिक महत्त्व देते हैं। कार्य्यकारिणी और विचार-शक्तिके विकसित और उन्नत होनेका समय युवावस्था ही है। युवावस्थामें जिन गुणोंका बीजारोपण हो जाता है, उन्हींके परिणाम-स्वरूप आगे चलकर मनुष्य अच्छी अच्छी बातें कहता और अच्छे अच्छे कार्य्य करता है और वही गुण उसके अभ्यास बन जाते हैं। यदि युवावस्थामें ही मन और हृदयका अच्छी तरह संस्कार न हो तो, आगे चलकर मनुष्यका जीवन बहुत ही निराशा-जनक हो जाता है। सूदे कहता है—"तुम चाहे जितने दिन जीओ, पर तुम्हारे आरम्भके बीस वर्ष सबसे बड़े और लम्बे होंगे। ये बीस वर्ष बीतते समय बहुत ही बड़े जान पड़ते हैं। बीत जानेके बाद भी ये वर्ष वैसे ही बड़े जान पड़ते हैं। हमें जितनी अधिक स्मृति इन आरम्भके बीस वर्षोंकी होती है उतनी और किसी समयकी नहीं होती।"

प्रत्येक मनुष्यको परमात्माने जिस दशामें उत्पन्न किया है, उस दशाके अनुसार उसमें एक सर्वांग-पूर्ण मनुष्यका आदर्श ठीक उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार किसी संगमरमरके टुकड़ेमें कोई मूर्त्ति होती है। जिस तरह संगमरमरके टुकड़ेमेंसे मूर्त्ति

निकालना मूर्त्तिकारका काम है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यको उन्नत करके आदर्श बनाना शिक्षाका काम है।

जीवनके आरम्भ और अन्तके साथ ही साथ शिक्षाका भी आरम्भ और अन्त है। इस विषयमें वह मूर्त्तिकारके कामसे भिन्न है। मानव-विकासका कहीं अन्त नहीं है। मनुष्यकी आकृति आदि ज्योंकी त्यों बनी रह सकती है, पर उसके मनमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। विचार, इच्छा और रुचि बराबर बदलती रहती है। जीवन और शिक्षाका या तो यह उद्देश्य है ही या होना चाहिए कि जहाँ तक हो सके, मनुष्य सदा श्रेष्ठ बनता जाय। जिन परिस्थितियोंसे हमारी ज्ञानशक्तिकी वृद्धि होती है, उनके सम्बन्धमें हम बहुत ही कम बातें जानते हैं और उनसे भी कम उन परिस्थितियोंके सम्बन्धमें जानते हैं, जिनका प्रभाव हमारे हृदय पर पड़ता है। फिर भी आचारके लक्षण आरम्भमें ही दिखाई देने लगते हैं। बालकके किसी साधारण कार्य्य, रुचि या उत्कण्ठाको देखनेसे ही उसके भविष्य-का बहुत कुछ पता लगाया जा सकता है। आचरणको परम शुद्ध और श्रेष्ठ बनानेके लिए जिन शुद्ध रुचियों, अच्छी आदतों और सामाजिक गुणों की आवश्यकता होती है, यह आवश्यक नहीं है कि उन गुणोंके साथ ही साथ मनुष्य में ज्ञान अथवा ज्ञानके प्रति अनुराग भी हो।

पर तो भी इस सम्बन्धमें कोई निश्चित नियम नहीं है। एक अच्छे पादरीने कहा है—"छोटे हृदय और बड़े मस्तिष्क कई तरहकी शिक्षासे बनते हैं। इसके साथ ही, ज्ञानकी वृद्धि करना प्रत्येक मनुष्यका निजका भी कर्त्तव्य है और समाजके प्रति भी। किसी स्थायी लाभकी आशा करनेसे पहले हमें अधिक समय तक

बहुत ही विचार और धैर्य्य-पूर्वक कार्य्य करना चाहिए। ज्ञान-शक्तिसे काम लेकर उत्तम परिणाम निकालनेके लिए इस बातकी आवश्यकता है कि मस्तिष्कको हृदयके बहुत ही समीप रखा जाय—जो कुछ किया जाय, वह बहुत ही विवेक-पूर्वक किया जाय।"

भिन्न भिन्न मनुष्योंमें विचार और ज्ञान-शक्तिकी पुष्टि और पूर्णविकास भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें होता है और यह अवस्था-भेद बहुत ही ध्यान रखने योग्य है। बहुतसे लोग ऐसे होते हैं, जिनकी ज्ञान-शक्ति आरम्भमें बहुत ही पूर्णताको प्राप्त हो जाती है और उसके उपरान्त शीघ्र सो भी जाती है। यही कारण है कि बहुतसे बालक आरम्भमें तो बड़े ही चपल और बुद्धिमान् होते हैं, पर बड़े होने पर उनकी सारी चपलता और बुद्धिमत्ता जाती रहती है और कभी कोई उनका नाम भी नहीं जानता। ज्ञान-शक्तिका पहले ही विकसित होना एक प्रकारका रोग है, जिसमें कोमल और अपक्व मस्तिष्कके ज्ञान-तन्तु क्षुब्ध हो जाते और आवश्यकतासे अधिक काम करने लगते हैं। जर्म्मनीमें हेनेकेन नामक एक बालक हो गया है, जिसने दो वर्षकी अवस्थामें ही बाइबिलका बहुत बड़ा अंश याद कर लिया था; तीसरे वर्ष वह लैटिन और फ्रेंच बोलने लगा था; उसने चौथे वर्षमें ईसाई धर्म्म और उसके इतिहासके सम्बन्धमें बहुतसी बातें जान ली थीं और पाँचवें ही वर्ष वह बीमार होकर मर गया। यद्यपि इतने ही तेज और बुद्धिमान् नहीं तो भी, बहुत कुछ ऐसे तेज और बुद्धिमान् बालक प्रायः प्रत्येक समाजमें दिखाई देते हैं, जो बहुत ही छोटी अवस्थामें मर जाते हैं और जिनके माता-पिता कहा करते हैं—"क्या कहें, बालक बड़ा ही होनहार, बुद्धिमान और भाग्यवान्

था पर जीने न पाया।" बहुधा लोगोंका विश्वास-सा हो गया है कि बहुत चपल बालक अधिक दिनों तक नहीं जीते, इसी लिए बालकोंको बहुत अधिक चपलता करने पर रोका और टोका जाता है।

माता-पिता तथा शिक्षक कभी कभी यह बात भूल जाते हैं कि बालकका काम केवल बढ़ता है; यह कि बिना शरीर और स्वास्थ्यको भारी हानि पहुँचाए प्रारम्भिक अवस्थामें मस्तिष्क कभी अधिक काम नहीं कर सकता; यह कि शरीरके सब अंगोंको पहले दृढ़ और ठीक होना चाहिए और यह कि मस्तिष्कका पुष्टीकरण शरीरके और सब अंगोंके पुष्ट हो जानेके उपरान्त होना चाहिए। वस्तुतः प्रारम्भिक अवस्थामें विचार-शक्तिकी अपेक्षा पाचन-शक्तिकी अधिक आवश्यकता होती है; मनके संस्कारके लिए व्यायामकी आवश्यकता होती है और लियाकतसे बढ़कर अदब कायदा है। बहुतसे बाल-पुष्प बहुत जल्दी खिलते और बहुत जल्दी मुरझा जाते हैं—थोड़े ही दिनोंमें उनके छोटेसे जीवनका अन्त हो जाता है। उनके ज्ञान-तन्तुओं पर इतना अधिक जोर पड़ता है, जितना उनका शारीरिक संगठन सह नहीं सकता और इसीलिए जीवन के आरम्भमें ही उनका अन्त हो जाता है। आज-कल बहुत ही छोटा अवस्थाके बालकों और बालिकाओंको बैठा कर पढ़ाया लिखाया और सिखाया जाता है। उनके मस्तिष्कसे तो अधिक काम लिया जाता है और शरीरसे कम। इसीलिए लोगोंमें सिर-दर्द और दूसरी अनेक मानसिक तथा शारीरिक दुर्बलताएं होती हैं।

बालकोंको अपने हाथों और पैरोंका ही ठीक ठीक उपयोग करनेसे वंचित नहीं रखा जाता, बल्कि आँखोंका उचित उपयोग

करनेसे भी वंचित रखा जाता है। इस प्रकार निकम्मे हाथों और कमजोर आँखोंवाले बालक बढ़ा कर मनुष्य बनाये जाते हैं। शिक्षाका यह मतलब नहीं है कि बहुतसी बातें एकदमसे दिमागमें ठूस दी जायँ, बल्कि शिक्षाका उद्देश्य ज्ञान-शक्तिको पुष्ट और आचरणको शुद्ध करना है। बालकों और बालिकाओंको अपनी शक्तियोंका ठीक ठीक उपयोग करना सिखला कर ही हम उन्हें सबसे अच्छी शिक्षा दे सकते हैं और इसीमें शारीरिक व्यायाम भी सम्मिलित है। यदि इस सिद्धान्तका पूरा पूरा ध्यान रखा जाय तो, बालकोंके मस्तिष्कके कामकी अधिकताकी बहुत ही थोड़ी शिकायतें रह जायँ।

कुछ बालक ऐसे भी होते हैं जिनके शरीर पर मस्तिष्कके क्षोभका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता और जो बाल्यावस्थासे ही चपल होने पर भी अधिक समय तक जीते हैं। बड़े बड़े गवैयोंमें ऐसे बहुतसे लोग हो गये हैं, जो बाल्यावस्थामें ही खूब गाते थे। लेकिन गानेमें मस्तिष्क पर अधिक जोर नहीं पड़ता। यह कला स्वाभाविक होती है और इसके द्वारा होनेवाला क्षोभ आनन्द-दायक होता है। विलायतमें एक डाक्टर था, जिसके लड़केको गानेका बहुत शौक था। बाप लड़केको वकील बनाना चाहता था, इसलिए उसने ऐसा प्रतिबन्ध कर दिया, जिसमें लड़केको कहीं बाजेके दर्शन भी न हों। पर तो भी बालक नहीं माना और उसने कहींसे एक ऐसा बाजा पा लिया, जिसमें जरा भी शब्द नहीं होता था और जब घरके सब लोग सो जाते थे, तब वह उसे बजाया करता था। एक ड्यूकको इस बातका पता लगा; तब उसने डाक्टरसे कह कर बालकको संगीत सीखनेमें लगाया। यह बालक आगे चल कर प्रसिद्ध गायक और नाटककार हैरा-

टेल हुआ, जिसने अनेक सर्वोत्कृष्ट नाटक बनाये। बाल्यावस्था-की चपलता उसके लिए बाधक नहीं हुई; क्योंकि उसने अच्छी-अच्छी रचनाएँ वृद्धावस्थामें ही—चौवनसे छिहत्तर वर्षकी अवस्था के बीचमें—की थीं। इसी प्रकार हेन नामक एक और संगीतज्ञ हो गया है, बाल्यावस्थासे ही जिसकी प्रवृत्ति संगीतकी ओर थी और जिसने प्रौढ़ावस्थामें कई अच्छे-अच्छे नाटक और गान बनाये थे। जानसिबैस्टियन बैच नामका एक और गवैया हो गया है, जिसके बड़े भाईने गानेकी एक किताब उससे छिपाकर अलमारीमें बन्द कर दी थी। बैचने किसी तरह वह किताब ढूंढ़ निकाली। रातको वह चुपचाप अपने कमरेमें गरमीकी रातके और कभी कभी चन्द्रमाके प्रकाशमें बैठ कर उसकी नकल करने लगा। एक दिन बड़े भाईको यह बात मालूम हो गई। वह उससे वह पुस्तक तथा उसकी नकल फिर छीन ले गया। पर फिर भी बैचने संगीत प्रेम नहीं छोड़ा। परिणाम यह हुआ कि अठारह वर्षकी अवस्थामें ही वह एक दरबारका गवैया हो गया। आरगन बाजा बजानेमें उसके मुकाबलेमें हैण्डेलके सिवा और कोई नहीं थी।

इन सबसे बड़ा मोजर्ट नामका एक गवैया था, जिसने चार वर्षकी अवस्थामें एक गीत और बारह वर्षकी अवस्थामें एक गीति-रूपक बनाया था। बारह वर्षकी अवस्थामें एक विशेष प्रकारका बाजा बजानेमें उसके जोड़का और कोई नहीं था। उसके बापने भिन्न भिन्न देशोंमें उसे प्रदर्शनार्थ घुमाया और इस प्रकार बहुत कुछ धन कमाया था। संगीत के सिवा उसे संसारके और किसी विषयका कोई ज्ञान नहीं था। उसने अपने जीवन-कालमें अनेक उत्तम गीति-रूपक बनाये थे। आज-कल भारत-

वर्षमें भी एक ऐसा ही बंगाली बालक है, जिसका नाम मास्टर मदन है और जो तीन ही वर्षकी अवस्थासे गीत गाता है। उसके पिता भी उसे लेकर शहर शहर घूमते और रुपये पैदा करते हैं। उसे अनेक राजाओंके यहाँसे पदक भी मिले हैं। इस समय उसकी अवस्था तेरह चौदह वर्षकी है, इसी प्रकार भारतके गायक वर्ग—कथक, ढाढ़ी, कलावन्त आदि—में भी अनेक ऐसे छोटे छोटे गवैये बालक पाये जाते हैं, जो मदनसे छोटी अवस्थाके होने पर भी उससे कहीं अच्छा गाते हैं और जिनका गाना सुन कर बड़े बड़े गवैये दाँतों उँगली दबाते हैं। पर दुःख है कि सर्व-साधारण और विशेष शिक्षित लोग ऐसे बालकोंसे परिचित नहीं हैं।

इसी प्रकार जर्मनी, इटली और फ्रान्समें भी अनेक ऐसे गवैये हो गये हैं, जो बाल्यावस्थासे ही संगीत-प्रेमी थे और जिन्होंने बहुत ही छोटी अवस्थामें अनेक उत्तमोत्तम गीति-रूपक बनाये थे और अच्छी तरह बोलना या लिखना सीखनेसे पहले ही जो गाने बजाने और गीत बनाने लग गये थे। पर इंगलैण्डमें ऐसे गवैये बहुत ही कम हुए हैं। इनमेंसे जर्मनीके डेनिअल शूबार्ट नामक एक गवैयेका हाल बहुत ही विलक्षण और मनोरंजक है। कार-लाइलने अपने "शिलरका जीवन चरित्र" में इसका जिक्र किया है। वह गवैया, कवि और उपदेशक था। पारी पारीसे वह कुछ न कुछ हो जाता था, पर उसका वह गुण अधिक समय तक नहीं ठहरता था। पहला गुण नष्ट हो जाता था और उसके स्थान पर दूसरा गुण आ जाता था। उसमें अनेक विलक्षण शक्तियाँ थीं। वह बहुत अच्छा गवैया था, अच्छा उपदेशक था और अच्छा पत्र-सम्पादक था। एक बार वह कैद हुआ था और एक बार उसे देश-निकालेका दण्ड भी मिला था। बावन वर्षकी अवस्थामें वह

बड़ी ही दरिद्रता और दुरवस्थामें मरा। फ्रांज शूबर्ट नामक एक और गवैया था, जो बाल्यावस्थासे ही तीन तरहके बाजे बजाता था। उसने भी कई गीति-रूपक लिखे थे। पर अन्तमें वह भी इकतीस वर्षकी अवस्थामें बड़ी ही दरिद्रावस्थामें मरा था।

इस सम्बन्धमें एक यह विलक्षण बात ध्यानमें रखने योग्य है कि जिस प्रकार छोटे बालकोंमें संगीत-प्रेम देखा जाता है, उस प्रकार छोटी बालिकाओंमें संगीत-प्रेम नहीं देखा जाता। कुछ ऐसी बालिकाएँ देखी गई हैं, जिनमें बाल्यावस्थामें ही कुछ विलक्षणता और विशेषता थी, पर बड़े होने पर उनमें कुछ भी न रह गया। लेकिन पाश्चात्य देशोंमें संगीतकी शिक्षा बहुत ही कम बालकोंको दी जाती है और अधिकतर बालिकाओंको ही सगीत सिखलाया जाता है। बालकोंने जिन कठिनाइयोंको पार करके संगीत सीखा है, उन कठिनाइयोंको पार करके संगीत सीखती हुई बालिकाएँ नहीं देखी गई हैं। पर इस देशमें साधारणतः न तो बालिकाओं-को ही संगीत सिखलाया जाता है, न बालकोंको ही। बल्कि बहुतसे अंशोंमें तो शिक्षित समाज संगीतमात्रको ही बुरा समझता है। इस देशमें या तो केवल गवैयोंके बालकोंको गाना बजाना सिखलाया जाता है और या वेश्या बनाई जानेवाली बालिकाओंको। महाराष्ट्र तथा बंगाल प्रदेशमें संगीतका अपेक्षा-कृत कुछ अधिक आदर देखा जाता है। उनमें अब कुछ पुरुष गायक होने लगे हैं। पर बंगालियोंका गीत उतना मधुर नहीं होता। देशके शेष प्रान्तोंमें बालकों और पुरुषोंमें संगीतका बहुत ही कम प्रचार है। गाँव-देहातमें रहनेवाले युवक और साधारण जन-समाजकी स्त्रियाँ बिना शिक्षा पाये ही, भिन्न भिन्न अवसरों पर जो कुछ गा लेती हैं, वही यथेष्ट समझा जाता है।

पाश्चात्य देशोंमें अनेक ऐसे प्रसिद्ध चितेरे और मूर्त्तिकार हो गये हैं, जिनकी रुचिका पता बाल्यावस्थामें ही लग गया था। इनमें सबसे अच्छा उदाहरण फ्लोरेन्सके माइकेल एन्जोलोका है जो चितेरा भी था और मूर्त्तिकार भी। बहुत ही छोटी अवस्थामें वह किसी देहातमें एक संगतराशकी औरतके पास दूध पिलानेके लिए भेजा गया था। ज्यों ही वह कुछ हाथ-पैर हिलानेके योग्य हुआ, त्यों ही वह दीवारों पर तरह तरहके चित्र बनाने लगा। फ्लोरेन्स लौट कर यही काम कमरेके फर्श पर करने लगा। स्कूलमें वह पढ़ता कुछ भी नहीं था, खाली चित्र बनाता और चित्रोंकी पुस्तकें देखा करता था। उसका जन्म एक उच्च कुलमें हुआ था। पर उस समय कुलीन लोग चित्रकार या मूर्त्तिकार होना बड़ी ही अप्रतिष्ठाकी बात समझते थे। इसलिए पिताने अपने पुत्रको इस निन्दनीय उद्यमसे रोकनेके अनेक प्रयत्न किये, पर फल कुछ भी न हुआ। तब वह एक चित्रकारकी दूकान पर बैठाया गया। कुछ ही दिनोंमें वहाँ वह केवल अपने सहपाठियोंसे ही नहीं, बल्कि अपने शिक्षकसे भी कहीं बढ़-चढ़ कर चित्रकार बन गया। इसके उपरान्त कुछ अच्छी अच्छी मूर्त्तियाँ देख कर उसके मनमें मूर्त्तिकार बननेका चाव उत्पन्न हुआ। अट्ठारह ही वर्षकी अवस्थामें उसने कई ऐसी अच्छी अच्छी मूर्त्तियाँ बनाई थीं, जिनकी प्रशंसा आज तक सभी बड़े बड़े मूर्त्तिकार करते हैं। उनतीस वर्षकी अवस्थामें उसने एक चित्र बनाया था, जिसमें युद्धकी एक घटना चित्रित थी। उसमें एक मुर्दने जो कि नहलाया जा रहा था, जीकर शत्रुओंको परास्त किया था। कहा जाता है कि इसके उपरान्त इससे अच्छा दूसरा चित्र उससे बन ही न सका।

रोमके एक गिरजेमें उक्त माइकेल एन्जेलोके अच्छे अच्छे चित्र देख कर प्रसिद्ध चित्रकार राइफलके मनमें चित्र-कलाके प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ था। उसके पिताने उसे इस काममें यथा-साध्य उत्तेजना दी थी। सत्रह वर्षकी अवस्थामें वह बहुत अच्छा चित्रकार हो गया था। सैंतीस वर्षकी अवस्थामें उसका देहान्त हो गया। उसकी रथीके साथ उसका एक चित्र निकाला गया था, जो अपूर्ण होने पर भी संसारमें सबसे अच्छा चित्र समझा जाता है।

लियोनार कोडाविन्सी भी बाल्यावस्थामें इतना अच्छा चित्र-कार था कि एक बार उसके गुरुने उसका बनाया हुआ एक चित्र देख कर सदाके लिए चित्र बनाना ही छोड़ दिया! वह केवल चित्र-कलाका ही पूर्ण पण्डित नहीं था, बल्कि गणित, वास्तु-विद्या और संगीत-शास्त्रका भी वह बहुत अच्छा ज्ञाता था। गेटसिनोने दस ही वर्षकी अवस्थामें एक परम सुन्दर चित्र बनाया था। टिनटेरोटोकी चित्र-कला देख कर उसके मालिकने ईर्ष्या-वश उसे नौकरीसे छुड़ा दिया था और इसी कारण वह आगे चल कर इतना अच्छा चित्रकार हो गया कि इटलीके सर्व-श्रेष्ठ चित्रकारोंमें उसकी गणना होने लगी। केनोवाने चार ही वर्षकी अवस्थामें मक्खनका एक बहुत बढ़िया शेर बनाया था और चौदह वर्षकी अवस्थामें वह संगमरमरकी मूर्त्तियाँ बनाने लगा था। थोर वाल्सडन तेरह वर्षकी अवस्थासे ही काठकी अच्छी अच्छी मूर्तियाँ बनाने लगा था और पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें उसने चांदीका एक पदक प्राप्त किया था। इसी प्रकार और दर्जनों ऐसे चित्र-कार और मूर्त्तिकार हो गये हैं, जिन्होंने बाल्यावस्थामें बहुत ही सुन्दर चित्र और मूर्त्तियाँ बना कर अच्छी ख्याति प्राप्त की थी।

गवैयों और चितेरोंकी तरह बहुतसे कवियोंने भी बाल्यावस्था में ही अपने उत्कृष्ट कवि होनेका परिचय दिया है। इटलीका प्रसिद्ध कवि डान्टे नौ ही वर्षकी अवस्थामें आठ वर्षकी एक बालिका पर मोहित होकर सुन्दर काव्य करने लगा था। टेस्सो भी बहुत छोटी अवस्थासे कविता करने लगा था। दस वर्षकी अवस्थामें जब वह अपनी माता और बहिनको छोड़ कर अपने पिताके पास जाने लगा, तब उसने एक बहुत सुन्दर कविता की थी। उसने अपने इस प्रस्थानकी तुलना एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनासे की थी। इटलीका एलफिटी भी बाल्यावस्थामें बड़ा ही विलक्षण था। आठ वर्षकी अवस्थामें एक बार आत्म-हत्याके विचारसे उसने कुछ जड़ी-बूटियाँ खाली थीं; उनसे वह मरा तो नहीं, पर बीमार अवश्य हो गया। दूसरे दिन वह पासके एक गिरजेमें भेजा गया। तभीसे उसके विचार सुधरने लगे। सोलह वर्षकी अवस्थामें एक बार समुद्रका दृश्य देख कर उसने अनुभव किया कि मैं भी कवि हूँ। उसके मनमें विचार तो बहुत अच्छे अच्छे उठते थे, पर अशिक्षित होनेके कारण वह उन्हें छन्दो-बद्ध न कर सकता था। इसलिए उसने पढ़ना आरम्भ किया। उन्नीस वर्षकी अवस्थामें वह एक स्त्रीके प्रेममें फँसा। पर उस स्त्रीका उसके प्रति अनुराग नहीं था। उस समय भी उसने अपने प्राणोंका अन्त कर देना विचारा था, पर उस समय उसके नौकरने उसे बचाया। दोबारा वह फिर प्रेममें फँसा, पर इस बार भी उसे विफलता ही हुई। तबसे वह एकान्तमें रह कर काव्य करने लगा। छब्बीस वर्षकी अवस्थासे उसने दुःखान्त नाटक लिखने आरम्भ किये और सात वर्षमें पन्द्रह उत्तमोत्तम दुःखान्त नाटक लिख डाले।

प्रसिद्ध जर्मन कवि शिलर जब बालक था, तब एक दिन बादल गरजनेके समय वह यह जाननेके लिए एक पेड़ पर चढ़ गया कि यह सुन्दर चमकनेवाली बिजली कहाँसे आती है। बालककी विलक्षण प्रवृत्तिका यह बहुत अच्छा प्रमाण था। क्लोपस्टोककी कविता पढ़कर उसके मनमें भी काव्यके प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ और चौदह वर्षकी अवस्थामें ही उसने एक सुन्दर महाकाव्य लिख डाला। गाथे आठ ही वर्षकी अवस्थामें जर्मन, फ्रेंच, इटालियन, लेटिन और ग्रीक भाषाएँ लिख-पढ़ लेता था। धर्म्म पर भी तभीसे उसका विशेष अनुराग था और उसने "निसर्ग-देव" के पूजनकी एक नई पद्धति निकाली थी। संगीत, चित्र-कला और पदार्थ-विज्ञानकी ओर भी उसकी बहुत कुछ प्रवृत्ति थी।

हिन्दीके आधुनिक कवियोंमें स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और बाबू राधा कृष्णदासका नाम भी उल्लेख योग्य है। बहुत ही छोटी अवस्थामें बाबू हरिश्चन्द्रका बनाया हुआ यह दोहा बहुत ही प्रसिद्ध है।—

लै ब्यौंड़ा ठाढ़े भए, श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुरको सैनको, हनन लगे भगवान॥

आगे चल कर भारतेन्दुजीने हिन्दीमें कैसी कैसी सुन्दर कविताएँ की और वे कितने प्रतिभाशाली हुए, इसके यहाँ बतलाने की आवश्यकता नहीं। बाबू राधाकृष्णदास जब दस वर्षके थे, तब एक बार भारतेन्दुजीके साथ अपने बागमें गये थे। वहाँ लल्लू नामका एक लड़का जो इधर उधर कूदता फिरता था, छत परसे नीचे गिर पड़ा और रोने लगा। उसे रोते देखकर तुरन्त बालक राधाकृष्णदासने यह दोहा कहा।—

लल्लूसे मल्लू भए, मल्लू चढ़े अटारि।
अटा कूदि नीचे गिरे, रोवत हाथ पसारि॥

पन्द्रह सोलह वर्षकी अवस्थामें ही उन्होंने "दुःखिनी बाला" और "निस्सहाय हिन्दू" आदि कई नाटक लिखे थे, जिनका हिन्दी-जगत्‌में बहुत अच्छा आदर हुआ था।

कविता करने की मनुष्यमें एक विशेष प्रकारकी स्वाभाविक शक्ति होती है, और उसके लिए एक खास तरहकी तबीयतकी जरूरत होती है। इस शक्तिका परिचय बहुतही आरम्भमें अधिक से अधिक बीस वर्ष की अवस्थासे पहले ही मिल जाता है। यदि किसीमें बीस वर्ष की अवस्था तक कवि होनेके लक्षण न दिखाई दें, तो बहुधा यही समझना चाहिए कि अब यह कवि नहीं होगा। मनुष्यके सर्व-श्रेष्ठ सभी गुणोंका कुछ न कुछ विकास उस समय तक हो जाता है और उस समय तक जिस गुणका विकास न हो, प्रायः वह गुण फिर उस मनुष्यमें कभी नहीं आता। पर तो भी कभी कभी उसमें अपवाद भी देखनेमें आता ही है। अधिकांश पौधे वसन्त और ग्रीष्मकी युवावस्थामें ही फूलते हैं; हेमन्त और शिशिरकी वृद्धावस्था में फूलनेवाले पौधे अपेक्षाकृत कम ही होते हैं।

आयरिश कवि मूरने कहा है कि सर्वोत्कृष्ट सुखान्त और दुःखान्त नाटक युवकोंके ही लिखे हुये हैं। लोप डी वेगा और कैलडरनने बारह और तेरह वर्षकी अवस्थामें ही काव्य तथा नाटक लिखना आरम्भ कर दिया था। स्पेनके सभी अच्छे अच्छे नाटककारोंने भी तीस वर्षकी अवस्थासे पहले ही अपने सब अच्छे नाटक लिख डाले थे। पर दक्षिण युरोपकी अपेक्षा उत्तर युरोपके कवि, कुछ अधिक अवस्थामें काव्य करते

हुए देखे जाते हैं। सम्भव है कि इसका कारण यह हो कि दक्षिण युरोपमें गरमी अधिक पड़ती हैं और उत्तर युरोपमें सरदी अधिक होती है। इंगलैण्डके चासर, शेक्सपियर और स्पेन्सर बाल्यावस्थाकी कौन कहे, युवावस्थामें भी अपनी कवित्व शक्तिका विशेष परिचय नहीं दे सकते थे। यद्यपि आज कल कुछ लोगोंका यहाँ तक कथन है कि जो नाटक शेक्सपियरके लिखे हुए माने जाते हैं, वे वास्तवमें शेक्सपियर के नहीं हैं, बल्कि किसी दूसरेके हैं। तथापि यदि यह भी मान लिया जाय कि वे सब नाटक उसीके लिखे हुए हैं, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि उसने अपनी पहली कविता अट्ठाईस वर्षकी अवस्थामें की थी। तबसे बावन वर्षकी अवस्था तक वह नाटक लिखता रहा। मिल्टन और स्पेन्सरने छब्बीस वर्षकी अवस्था से कविता बनाना आरम्भ किया था। पोप और चैटरटन सोलह वर्षकी अवस्थामें कविता करने लगे थे। एक विद्वान् का मत है कि सोलह वर्षकी अवस्थामें और किसीने वैसी अच्छी कविता नहीं की। पर उसमें दुराचारी होनेके अतिरिक्त और भी अनेक दोष थे, इस लिए युवावस्थामें ही उसने आत्म-घात कर लिया था। बर्न्स बहुत ही बोदा होने पर भी सोलह वर्षकी अवस्थामें पद्य बनाने लग गया था। थामस मूरने तेरह वर्ष की अवस्थामें पद्यमें एक बालिकाको प्रेम-पत्र लिखा था। कर्क और ब्रूस इक्कीस वर्षकी अवस्थामें मरनेसे पहले ही कई अच्छी कविताएँ कर गये थे। शेलीने पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें एक गीति-रूपक लिखा था। प्रसिद्ध कवि बाइरन आठ वर्षकी अवस्थासे ही प्रेम-पाशमें फँस गया था। उसने एक भालू और कई कुत्ते पाले थे। बारह वर्ष की अवस्था से ही वह कविता करने लग गया था और बीस

वर्ष की अवस्था तक उसके कई अच्छे अच्छे काव्य-ग्रन्थ प्रकाशित हो गये थे। मेकालेने कहा है कि "पचीस वर्षकी अवस्थामें बाइरनने साहित्य-क्षेत्रमें इतनी कीर्ति सम्पादित कर ली थी कि स्काट, वर्ड्स्वर्थ और सूदे उसके सामने कोई चीज नहीं थे। इतिहास में कदाचित् ही कोई ऐसा उदाहरण मिलेगा, जिसमें किसीने इतनी कम अवस्थामें इतना महत्त्व प्राप्त किया हो।"

ऐसे कवि कम होते हैं, जिनके काव्य अवस्थाकी वृद्धिके साथ साथ उत्कृष्ट श्रेणीके होते जाते हों। तो भी गाथे और मिलटन आदि कई कवि ऐसे हो गये हैं, जिन्होंने प्रौढ़ावस्थामें ही अच्छे अच्छे काव्य किये हैं। दूसरी बात यह है कि युवावस्थामें अच्छा काव्य करनेवाले कवि अधिक दिनों तक जीवित भी नहीं रहे। यदि वे जीते रहते तो, सम्भव था कि आगे चल कर और भी अधिक उत्तम कविता करते, पर तो भी इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्यके भावी महत्त्व-पूर्ण गुणोंके लक्षण अधिकसे अधिक सत्रहसे तेईस वर्षकी अवस्थाके अन्दर ही दिखाई पड़ने लग जाते हैं। यदि मनुष्यमें कवित्व-शक्तिका अंकुर होगा, तो उसके चिह्न आरम्भमें ही दिखाई पड़ने लगेंगे, चाहे उसका पूर्ण विकास बहुत देरमें ही क्यों न हो।

स्काटकी प्रतिभाका विकास धीरे-धीरे और कुछ देरमें हुआ था। स्कूलमें वह बिलकुल ही बोदा और निकम्मा समझा जाता था। पर तो भी उसकी प्रतिभाके कुछ चिह्न उस समय भी दिखाई देने लगे थे। बाल्यावस्थामें ही जब वह अपने घर पर कहानी कहने बैठता था, तब लोग बड़ी उत्सुकतासे उसे घेर लेते थे और प्रायः उसके बहुत ही समीप बैठनेका यत्न करते थे। तीस

वर्षकी अवस्था तक पहुँचनेसे पहले उसने साहित्य-सम्बन्धी कोई उल्लेख योग्य काम नहीं किया था। प्रायः यही दशा महात्मा रानाड़ेकी भी थी। वे बाल्यावस्थामें इतने बोदे थे जिससे घरके लोगों को चिन्ता होती थी कि बड़े होने पर इन्हें कहीं दस रुपये महीने की नौकरी भी मिलेगी या नहीं। बीस वर्षकी अवस्था तक सिवा पढ़नेके आपने और कुछ भी न जाना। पर बीस वर्षमें बी० ए० और आनर्स परीक्षाएँ पास करते ही आप इन्दु-प्रकाशके सम्पादक हो गये और तबसे आपकी प्रतिभाका विशेष-रूपसे विकास आरम्भ हुआ। तबसे आप दिन पर दिन उन्नति ही करते गये।

विज्ञान और साहित्य-क्षेत्रमें भी बहुतसे ऐसे विद्वान् और पण्डित हो गये हैं, जिन्होंने अपनी आन्तरिक शक्तिका बहुत ही बाल्यावस्थामें परिचय दे दिया था। उनमेंसे अनेक ऐसे भी हो गये हैं, जिन्होंने अनेक कठिनाइयाँ सहकर भी साहित्य या विज्ञानके प्रति अपना सहज प्रेम नहीं छोड़ा। प्रसिद्ध ज्योतिषी गेलीलिओका पिता चाहता था कि वह गणितके फेरमें न पड़े, बल्कि चिकित्सा-शास्त्र सीखे। पर फिर भी गेलीलिओने ज्योतिष-सम्बन्धी तथा दूसरे अनेक महत्त्व-पूर्ण आविष्कार किये ही। लगभग सत्तर वर्षकी अवस्थामें उसने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि पृथिवी घूमती है और इस सम्बन्धमें एक ग्रन्थ भी प्रकाशित किया। उस समय पादरियोंकी ओरसे उसे धमकियाँ मिलने लगीं। सत्तर वर्षकी अवस्थामें बिलकुल अन्धे हो जाने पर भी वह घड़ियोंमें लंगर लगानेकी चिन्तामें लगा रहा और अन्तमें यह काम अपने लड़केको सौंप कर वह चल बसा। गेलीलिओने अनेक उत्तमोत्तम आविष्कार किये थे; पर उस समयके लोगोंने

उसका आदर नहीं किया। यहाँ तक कि धर्म्माधिकारियोंने उसका स्मृति-चिह्न भी न बनने दिया। उसका स्मृति-चिह्न एक शताब्दी बाद बना !

टाइचो ब्रेहेको उसका पिता सैनिक बनाना चाहता था, पर उसे भी ज्योतिषसे ही प्रेम था। चौदह वर्षकी अवस्थामें ही ग्रहण देखकर ज्योतिषके प्रति उसका अनुराग और भी बढ़ गया और वह यथासाध्य धन व्यय करके ज्योतिषका अध्ययन तथा रात रात भर नक्षत्रोंका वेध करने लग गया। इस कामसे उसके कानून पढ़नेमें विघ्न पड़ने लगा, जिससे उसके शिक्षकने उसे ज्योतिष पढ़नेसे मना किया। पर वह अपने शिक्षककी चोरीसे, रातको उसके सो जाने पर नक्षत्रोंका वेध किया करता था। उसने नक्षत्रोंके सम्बन्धमें तत्कालीन सिद्धान्तोंमें कई भूलें निकालीं और बहुत ही भद्दे, निकम्मे और रद्दी औजारोंकी सहायतासे उन भूलोंको ठीक किया। सत्रह वर्षकी अवस्थामें ही गणित करके उसने पहलेसे जान लिया था कि (अगस्त सन् १५६३ में) शनिकी छायामें बृहस्पति आवेगा। बड़े होने पर उसने ज्योतिष-सम्बन्धी अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखे थे।

उसका साथी प्रसिद्ध ज्योतिषी केप्लर, रोगी और दुर्बल होने पर भी बराबर उसकी सहायता किया करता था। बीस वर्षकी अवस्थामें ही वह एम० ए० और बाईस वर्षकी अवस्थामें ज्योतिष-शास्त्रका अध्यापक हो गया था। पचीस वर्षकी अवस्था में उसने ज्योतिष-सम्बन्धी एक ऐसा अच्छा ग्रन्थ लिखा था कि जिसका लिखना उसकी योग्यता और सामर्थ्यसे बाहर समझा जाता था। इसके बाद आगे चल कर उसने ब्रेहेको सहायता दी थी और ज्योतिष-सम्बन्धी अनेक उत्तम ग्रन्थ लिखे थे।

सर आइजिक बट बाल्यावस्थामें बहुत ही दुर्बल और रोगी रहता था। उसमें प्रतिभा होनेके कोई चिह्न नहीं पाये जाते थे। पर कुछ ही बड़े होने पर वह छोटी छोटी धूप-घड़ियाँ, जल-घड़ियाँ और इसी तरहकी दूसरी चीजें बनाने लग गया था। एक दिन उसके एक चाचाने उसे अकेलेमें बैठकर गणित-सम्बन्धी एक समस्याकी मीमांसा करते देखा, तबसे उसे गणित सिखलानेका प्रबन्ध किया गया। बीस बाईस वर्षकी अवस्थासे वह विज्ञान-सम्बन्धी विलक्षण आविष्कार करने लगा। चवालीस वर्षकी अवस्थामें उसने एक बहुत अच्छा ग्रन्थ लिखा। इसके बाद वह कुछ दिनों तक पागल हो गया था। पागलपनसे अच्छे होने के बाद वह पचासी वर्षकी अवस्था तक जीता रहा; पर फिर उसने कोई अच्छा ग्रन्थ नहीं लिखा।

जेम्स बरनर्डली नामका एक बहुत बड़ा दार्शनिक हो गया है, जिसके कुलके सभी लोग दार्शनिक होते आये हैं। उसका पिता उसे पादरी और धर्म्मोपदेशक बनाना चाहता था। पर संयोग-वश उसके हाथोंमें ज्यामितिकी कुछ पुस्तकें पड़ गईं और उसके उपरान्त वह ज्योतिष-शास्त्रके अध्ययनमें लग गया। छब्बीस वर्षकी अवस्थामें उसने धूमकेतुओं पर एक बहुत उपयोगी पुस्तक लिखी थी। ब्लेस पैस्कल जब बारह वर्षका था, तब वह एक दिन जमीन पर कोयलेसे ज्यामितिकी आकृतियाँ-सी बना रहा था। तबसे उसे ज्यामितिकी शिक्षा दी जाने लगी। सोलह वर्षकी अवस्थामें उसने ज्यामितिके एक गहन अंग पर एक बहुत ही उत्तम पुस्तक लिखी थी, जिससे उसकी आश्चर्य्य-जनक योग्यता प्रकट होती थी। उन्नीस वर्षकी अवस्थामें उसने गिनती गिनने की मशीन निकाली थी। इसके उपरान्त वह विज्ञानकी

ओर प्रवृत्त हुआ और उसने कई अच्छी अच्छी बातोंका पता लगाया। पर पचीस वर्षकी अवस्थामें ही उसके विज्ञान-प्रेमका अन्त हो गया और वह धर्म्मकी ओर प्रवृत्त हुआ। डेस्कार्टेसने उन्नीस ही वर्षकी अवस्थामें दर्शन और गणित-सम्बन्धी अन्वेषणोंकी नई प्रणाली निकालनेका प्रयत्न आरम्भ किया था। हैलरने दस वर्षकी अवस्थामें एक व्याकरण बनाया था। क्लेमराल्टने तेरह वर्षकी अवस्थामें गणितके एक गहन अंग पर ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया था। लैगर उन्नीस ही वर्षकी अवस्थामें एक वैज्ञानिक कालेजमें गणितका प्रोफेसर नियुक्त हुआ था। कालिन मेक्कारिनने पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें एम० ए० की डिग्री प्राप्त की थी। लैलैण्ड दस वर्षकी अवस्थामें घरके लोगोंको धार्म्मिक उपदेश दिया करता था और सोलह वर्षकी अवस्थामें उसने अपने लिए एक दूरबीन बनाई थी। सर क्रिस्टोफररेनने तेरह वर्षकी अवस्थामें एक वैज्ञानिक यंत्र तथा एक और दूसरे यंत्रका आविष्कार किया था। बाईस वर्षकी अवस्थामें वह शरीर-शास्त्रका तथा पचीस वर्षकी अवस्थामें ज्योतिषका प्रोफेसर था। उसने सब मिला कर तिरपन बड़े बड़े आविष्कार किये थे। वस्तु-विद्याका भी वह बहुत अच्छा ज्ञाता था और इसीमें उसने अपना बाकी जीवन बिताया था। उसने बहुतसे प्रसिद्ध गिरजे, जिनमें सुप्रसिद्ध सेण्टपालका गिरजा भी सम्मिलित है और जो आग लगनेसे जल गये थे, बनाये थे। सर विलियम रोवन हैमिलटनने तेरह वर्षकी अवस्थामें ही तेरह भाषाओंका बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

प्रसिद्ध फ्रान्सीसी भूगोल-वेत्ता डी० एनविल बारह वर्षकी अवस्थासे ही बहुत प्राचीन कालके देशोंके मान-चित्र बनाने लग

गया था। उसने अपने जीवनमें प्राचीन कालके देशोंके एक-सौ चार तथा आधुनिक कालके देशोंके एक-सौ छः नकशे तैयार किये थे। वह कहा करता था कि "मुझे ईंटोंका बना हुआ भूगोल मिला था, पर मैंने उसे सोनेका बना दिया।" लिनेअस उन्नीस वर्षकी अवस्था तक बड़ा ही बोदा था। पर उसका निवास-स्थान एक झीलके किनारे था, जिसके चारों ओर सुन्दर पहाड़ियाँ जंगल और हरियाली थी। प्राकृतिक सौन्दर्य्यने उसकी प्रतिभाको जागृत कर दिया। तबसे वह वनस्पति-शास्त्रके अध्ययनमें लगा और इसीके लिए उसने अनेक कठिनाइयाँ सहकर लैपलैण्डमें चार हजार मीलकी प्रायः पैदल ही यात्राकी और सौ नये पौधोंका पता लगाया। तबसे वह अपने समयका सर्वश्रेष्ठ वनस्पति-शास्त्रज्ञ समझा जाने लगा। जान रे जो आधुनिक जन्तु-शास्त्रका प्रथम आचार्य्य माना जाता है, एक लोहारका लड़का था। उसे बाल्यावस्थासे ही जन्तुओं और वनस्पतियोंसे बड़ा प्रेम था और बड़े होने पर इन्हींके सम्बन्धकी बातें जाननेके लिए उसने दूर दूरकी यात्राएँकी थीं।

चिकित्सा-शास्त्रमें भी बहुतसे लोग बहुत ही बाल्यवस्थासे अनुरक्त हुए थे। प्रसिद्ध फ्रान्सीसी चिकित्सक पारी बाल्यावस्था में एक अस्त्र-चिकित्साके समय सहायता देनेके लिए बुलाया गया था। तभीसे वह चिकित्सा-शास्त्र सीखने लगा था। सर एसली कूपरने पहले पहल एक बार देखा कि एक गाड़ीके नीचे दब जानेके कारण एक युवकके शरीरसे बहुत रक्त बह रहा है। उसने रक्त बन्द करनेके लिए कुतूहल-वश अपना रूमाल कटे हुए स्थान पर बाँध दिया। इससे खून बहना पहले कुछ कम हुआ और थोड़ी देरमें बिलकुल बन्द हो गया। तबसे वह चिकित्साके

काममें प्रवृत्त हुआ। एम० पेटिट सात ही वर्षकी अवस्थासे लिटे के चिकित्सा-सम्बन्धी व्याख्यान सुना करता था। नौ-दस वर्षकी अवस्थामें ही वह शरीर-शास्त्रका इतना बड़ा पण्डित हो गया कि एक चिकित्सालयमें वह इसी विषय पर व्याख्यान देने लगा। नौ-दस वर्षका बालक कुरसी पर बैठ कर शरीरके भिन्न भिन्न अंगों पर व्याख्यान देता था और केवल बड़े बड़े विद्यार्थी ही नहीं, बल्कि अच्छे अच्छे चिकित्सक भी बड़े चावसे उसका व्याख्यान सुना करते थे। थोड़े ही दिनोंमें वह फ्रान्समें सर्व-श्रेष्ठ अस्त्र-चिकित्सक हो गया। बल्यूमेन बैच दस ही वर्षकी अवस्था में मनुष्यकी एक नकली ठठरी लेकर एक बन्द कोठरीमें उस पर मनन करने लगा था; क्योंकि उस समय उसके नगरमें केवल एक ही चिकित्सकके पास एक असली ठठरी थी। तेईस वर्षकी अवस्थामें उसने 'On the National Varieties of Mankind' नामक एक सर्वोत्तम ग्रन्थ लिखा था। विचेटने केवल बाईस वर्षकी आयुमें ही शरीर-शास्त्र पर ऐसी किताब बनाई थी, जैसी और किसी एक व्यक्तिने नहीं बनाई थी। ज्ञान-तन्तुओं और उनमें होनेवाले क्षोभके सम्बन्धमें उसीने पहले पहल बहुतसे सिद्धान्त स्थिर किये थे और खालके सम्बन्धकी बहुतसी बातोंका पता लगाया था। बोरहैव ग्यारह वर्षकी अवस्थामें ही ग्रीक और लैटिन भाषासे बढ़िया अनुवाद कर लेता था और इक्कीस वर्षकी अवस्थामें उसने डाक्टर आफ फिलासफीकी पदवी प्राप्तकी थी। डा० जेनरने बीस ही वर्षकी अवस्थामें महाभीषण रोग चेचकको दूर करनेके उपाय—टीकेका आविष्कार कर लिया था।

साहित्य-क्षेत्रमें भी इसी प्रकारके अनेक उदाहरण मिलेंगे। मेलांक्थनने बीस वर्षकी अवस्थामें और फेनेलेनने पन्द्रह वर्षकी

अवस्थामें बड़े बड़े पण्डितों और विद्वानोंके सामने व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया था। कजिनने सोलह वर्षकी अवस्थामें एक बहुत बड़ा इनाम पाया था। डा० विलियम वटन पाँच ही वर्ष की अवस्थामें लैटिन, ग्रीक और हिब्रूसे अनुवाद कर लेता था। दस वर्षकी अवस्थामें उसने तीन और प्राचीन कठिन भाषाएँ जान ली थीं, जिनमें अरबी भी सम्मिलित थी। सुप्रसिद्ध विद्वान् सर विलियम जोन्सकी बाल्यावस्थाकी ही योग्यता देखकर लोग दंग रह जाते थे। डा० अलेक्जेण्डर मरे एक गड़ेरिएका लड़का था और बचपनमें जब भेड़ें चराने जाता था, तब कुछ न कुछ भारी मूर्खता या भूल कर बैठता था। इसका कारण यह था कि वहाँ भी वह पढ़नेमें ही मग्न रहता था। पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें उसने आपसे आप फ्रेंच और लैटिन भाषाएँ सीखी थीं। कुछ ही वर्षोंमें उसने युरोपकी सारी भाषाएँ सीख लीं और तब एशियाकी भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करना प्रारम्भ किया। तीस वर्षकी अवस्थामें वह सभी भाषाओंका बहुत बड़ा पण्डित माना जाने लगा। पर बहुत अधिक परिश्रम करनेके कारण वह सैंतीस ही वर्षकी अवस्थामें मर गया।

इंगलैण्डका प्रधान मंत्री पिट बाल्यावस्थामें ही बड़ा चतुर था। लेडी हालैण्डने एक बार उसे देख कर कहा था कि मैंने ऐसा चतुर बालक कभी नहीं देखा। बाल्यावस्थामें ही वह अपने घरमें एक कुरसी पर बैठ कर छोटा मोटा व्याख्यान देता और लोगोंको मुग्ध कर लेता था। बीस वर्षकी अवस्था तक उसने अँगरेजी-साहित्यका बहुत बड़ा अंश देख डाला था। इक्कीस वर्षकी अवस्थामें पार्लीयामेण्टमें प्रवेश किया और बाईस वर्षकी अवस्थामें बर्कके एक सुधारके समर्थनमें वक्तृता देकर उसने सारे

हाउसको आश्चर्य-चकित कर दिया। चौबीस वर्षकी अवस्थामें वह ब्रिटिश साम्राज्यका प्रधान मंत्री नियुक्त हो गया। मेकालेने कहा था कि इंगलैण्डमें ऐसा आदमी कई शताब्दियोंमें नहीं हुआ।

नेपालके महामात्य राणा जंगबहादुर बाल्यावस्थासे ही बड़े ढीठ, साहसी और मनचले थे। आठ ही वर्षकी अवस्थामें उन्होंने एक विषधर साँपका मुँह अपनी मुट्ठीमें कस कर पकड़ लिया था और उसी दशामें वे उसे अपने पिताको दिखलाने ले गये थे। दस वर्षकी अवस्थामें वे सहसा बागमती नदीमें बाढ़के समय कूद पड़े थे। एक बार युवावस्थामें वे दो डूबती हुई स्त्रियोंको बचानेके लिए मनोहरा नदीमें कूद पड़े थे। सोलह वर्षकी अवस्थामें उन्होंने नेपालकी सेनामें एक साधारण सैनिककी हैसियतसे प्रवेश किया था और अपनी योग्यता तथा कार्य-कुशलतासे बढ़ते बढ़ते उनतीस वर्षकी अवस्थामें वे नेपालके महामात्य हो गये थे। उस समय नेपालमें एक प्रकारका घोर विप्लवसा मचा हुआ था। चारों ओर अशान्ति फैली हुई थी। नेपालमें उस समय बड़ा ही अन्धेर था और उसी अन्धेरको दूर करनेके लिए जंगबहादुरको बहुतसी चालें चलनी पड़ी थीं। जंगबहादुरके शासन और प्रबन्धसे नेपाली प्रजा इतनी प्रसन्न और सन्तुष्ट थी कि जब वे महाराज राजेन्द्र विक्रमको कैद करके काठमाण्डव ले जाने लगे थे, तब प्रजाने महाराजका पक्ष न लेकर उलटे "जंगबहादुरकी जय" की घोषणा की थी। तीन चार ही वर्षके अन्दर उन्होंने सारे देशमें शान्ति स्थापित कर दी थी। सारी प्रजा उन्हींका दम भरने लगी थी। सन् १८५० में जब वे लण्डन गये थे, तब वहाँ उनका बहुत अच्छा आदर-सत्कार हुआ था। स्वयं

महारानी विक्टोरियाने उनसे मिलकर उनकी वीरता और योग्यता की बहुत प्रशंसाकी थी। लण्डनमें महारानीने उन्हें कई दिन अपने यहाँ निमंत्रित किया और उनका अच्छा स्वागत किया था। उनमें नैतिक साहसकी भी कमी नहीं थी। जब महारानी विक्टोरियाने उनसे अपने साथ भोजन करनेके लिये कहा, तब उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मैं हिन्दू हूँ और अपने धर्म्मके नियमानुसार मैं अपने किसी स्वजातीय कुलीन तकके हाथका भोजन नहीं कर सकता। फ्रान्समें भी उनका वैसा ही आदर हुआ था और वहाँके राष्ट्रपति भी उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए थे। वे कर्त्तव्य-परायण और गुणी पुरुषों का सदा आदर करते थे और उनके विचार बहुत ही उदार थे। वे बहुत ही निर्भीक न्यायपरायण और दृढ़-प्रतिज्ञ भी थे। यदि यह कहा जाय कि उनकी गणना संसारके बड़े बड़े कर्म्मवीर पुरुषोंमें की जा सकती है, तो कुछ अनुचित न होगा।

ट्रावन्कोर और बड़ौदेके भूतपूर्व दीवान स्वर्गीय सर टी० माधवराव भी, जिन्होंने अपना सारा जीवन भारतीय रियासतोंकी शासन-पद्धति सुधारनेमें बिताया था, आरम्भसे ही बड़े बुद्धिमान् और कुशल थे। उनकी गणना भारतके बड़े बड़े राजनीतिज्ञों और राज्य-संचालकोंमें की जाती है। बाल्यावस्थामें ही माधवरावने गणित और विज्ञानमें बड़ी दक्षता प्राप्त की थी। पहले कुछ दिनों तक वे मद्रासके सरकारी स्कूलमें गणित और विज्ञानके अध्यापक थे और उसके बाद वे वहीं एकाउण्टेंट जनरलके दफ्तरमें नौकर हो गये। इसके बाद वे ट्रावन्कोरमें राजकुमारोंके शिक्षक नियुक्त हुए। इसके उपरान्त वे अपनी योग्यताके कारण बढ़ते हुए धीरे धीरे दीवान-पेशकार हो गये। उस समय

ट्रावन्कोरकी बड़ी ही बुरी दशा थी। चारों ओर घोर कुप्रबन्ध और अन्धाधुन्धी थी। लार्ड डैलहौसीकी धमकी थी कि यदि शीघ्र ही ट्रावन्कोरका ठीक ठीक प्रबन्ध न हुआ, तो वह राज्य अँगरेज-सरकार अपने राज्यमें मिला लेगी। जिन अधिकारियोंको राजधानीसे बाहर रहकर अपने अपने विभागका प्रबन्ध करना चाहिए था, वे भी राजधानीमें ही रहकर दीवानके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा करते थे। इसलिए माधवरावने महाराजसे प्रस्ताव किया कि राज्य बहुतसे जिलेमें बाँट दिया जाय और उनके अधिकारी अपने अपने जिलेमें ही रहें। महाराजको यह बात पसन्द आई। माधवरावके अधिकारमें जो जिले आये, उनका उन्होंने बहुत अच्छा प्रबन्ध किया। तबसे महाराज उनका बहुत आदर करने लगे।

सन् १८५७ में दीवान कृष्णरावके मरने पर तीस वर्षकी अवस्थामें माधवराव ट्रावन्कोरके दीवान हुए। उस समय चारों ओर राज्यमें बेईमानी अत्याचार और अव्यवस्थाके अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही न देता था। यदि दूसरा कोई होता तो, उस समयकी दुरवस्था देखकर घबरा जाता। पर माधवराव तनिक भी विचलित न हुए और उन्होंने राज्यको बड़ी ही योग्यतासे सँभाला। उन्होंने अनेक ऐसे सुधार किये, जिनसे राज्यकी आमदनी बहुत बढ़ गई। शिक्षा, न्याय, शासन आदि सभी विभागोंका उन्होंने समुचित प्रबन्ध किया और अच्छे अच्छे कानून जारी करके राज्यकी काया-पलट कर दी। उनकी योग्यतासे प्रसन्न होकर सरकारने उन्हें "सर" की उपाधि दी थी। महाराज इनसे इतने प्रसन्न थे कि इनके नौकरी छोड़ने पर भी वे इन्हें बहुत दिनों तक हजार रुपये मासिक वृत्ति दिया करते थे।

इसके उपरान्त वे इन्दौर के दीवन हुए। यद्यपि महाराज तुकोजीराव होलकर बहुतसे अधिकार अपने ही हाथ में रखते थे, तथापि वहाँ भी इन्होंने बहुतसे सुधार किये थे। जिस समय महाराज मल्हारराव बड़ौदेकी गद्दी से उतारे गये थे, उस समय यहाँ भी बहुत अधिक दुराचार, अत्याचार और कुप्रबन्ध फैला हुआ था। वर्तमान महाराज सयाजीराव ना-बालिग थे, इसलिए राज्यका प्रबन्ध करनेके लिए माधवराव बुलाये गये। कुछ ही दिनों में धीरे धीरे उन्होंने बड़ौदेका भी इतनी उत्तमतासे प्रबन्ध किया कि बड़े बड़े राज्य संचालकोंको आश्चर्य होने लगा। सब विभागों का ठीक ठीक प्रबन्ध होने लगा और राज्यकी आमदनी बहुत बढ़ गई। तात्पर्य्य यह कि उनके अखण्ड परिश्रम और नीति-बलसे बड़ौदेमें खूब सुव्यवस्था हुई और राज्य बहुत ही समृद्ध हो गया। बड़ौदे के वर्तमान महाराज सयाजीरावकी शिक्षाके लिए, जो उस समय ना-बालिग थे, माधवरावने 'Major and Minor Hints' नामक एक बहुत ही उपयोगी पुस्तक बनाई थी, जिसमें उन्होंने अपने उस अनुभवका सार भर रखा था, जो उन्हें अपने नीति, बल तथा व्यवस्था-कौशलसे भारतके दो बड़े बड़े राज्योंको चौपट होनेसे बचानेमें प्राप्त हुआ था। यह पुस्तक राजकुमारों, राजाओं और राज्य-संचालकोंके बड़े ही कामकी है।

हैदराबाद (दक्षिण) के मीर तूराब अलीखाँ सर सालारजंग, जिनके दादा और परदादा वहाँके प्रधान मंत्री रह चुके थे, अपने चाचाके मरने पर चौबीस वर्षकी अवस्थामें प्रधान मंत्री हुए थे। जिस समय आपने मंत्रीका पद ग्रहण किया था, उस समय खजाना बिलकुल खाली था और देशमें अरब डाकुओंका उपद्रव बहुत बढ़ा-चढ़ा था। पर आपने थोड़े ही दिनोंमें बहुत ही

योग्यता-पूर्वक देशमें शान्ति स्थापित की, सब विभागोंका उत्तम प्रबन्ध किया और रियासतको मालामाल कर दिया। गदरके समय अँगरेज सरकारकी भी इन्होंने अच्छी सहायता की थी। परन्तु तो भी न जाने क्यों, निजामका उन पर विश्वास नहीं था। दो बार इनके प्राण लेनेका भी प्रयत्न किया गया था। इनके लड़के मीर लैकअलीखाँ भी बहुत योग्य थे और बाईस ही वर्षकी अवस्थामें हैदराबादके प्रधान मंत्री हुए थे। यद्यपि ये भी बहुत ही शासन-कुशल थे, तथापि निजामसे कुछ अनबन हो जानेके कारण इन्हें इस्तीफा देना पड़ा था।

राजा सर दिनकरराव जो पहले ग्वालियरमें एक दफ़्तरमें मामूली कर्म्मचारी थे, अपनी योग्यताके ही कारण बढ़ते बढ़ते ३२ वर्षकी अवस्थामें वहाँके प्रधान मंत्री हो गये थे। इन्होंने भी राज्यमें अनेक बड़े बड़े सुधार किये थे और कई नये नियम आदि बनाये थे। सर शेषाद्रि ऐय्यर पहले तेरह बरस तक मैसूर राज्य में बहुत ही छोटे छोटे पदों पर काम करते थे। पर बढ़ते बढ़ते छत्तीस वर्षकी अवस्थामें ये वहाँके प्रधान मंत्री हो गये थे। इन्होंने सत्रह वर्ष तक मंत्रीका काम किया था। इनके मंत्री होनेके समय राज्य पर तीस लाखका ऋण था। पर जब इन्होंने वह पद छोड़ा तब खजानेमें १७६००००० (पौने दो करोड़) रुपये थे। पहले राज्यमें अनेक प्रकारके कुप्रबन्ध और झमेले थे। पर इन्होंने सारी व्यवस्था ठीक करके मानों वहाँ रामराज्य कर दिया था। इनकी योग्यतासे प्रसन्न होकर नौकरी छोड़ते समय मैसूर दरबारने इन्हें चार लाख रुपये नगद दिये थे। स्वर्गीय मि० रमेशचन्द्र दत्तका नाम भी इस सम्बन्धमें उल्लेखनीय है; क्योंकि आरम्भसे ही शासन-विभागमें रहकर बहुत दिनों तक

बहुत ही योग्यता-पूर्वक इन्होंने कमिश्नरी तक की थी और अनेक जिलोंका शासन तथा प्रबन्ध बड़ी ही उत्तमता-पूर्वक किया था। इनकी प्रबन्ध-कुशलता देखकर अच्छे शासक और राजनीतिज्ञ दंग रह जाते थे।

प्राय: यही देखा जाता है कि स्कूलों, कालेजों और विश्व-विद्यालयोंमें जो लोग अच्छी योग्यता दिखलाते और सदा प्रथम होते हैं, सांसारिक जीवनमें वे लोग उतनी अधिक योग्यता नहीं दिखलाते। बहुत अधिक पढ़े लिखे लोग उतनी उन्नति करते हुए नहीं देखे जाते, जितनी अधिक उन्नति साधारण पढ़े-लिखे लोग करते हैं। व्यापार, विज्ञान और आविष्कार आदिमें प्राय: साधारण पढ़े-लिखे हुए लोग ही अग्रसर होते हैं। ऊपर देशी रियासतोंके जिन प्रधान मंत्रियोंका उल्लेख है, वे किसी विश्व-विद्यालयके बी० ए० या एम० ए० नहीं थे। कैम्ब्रिजमें होनेवाले बहुत से "सीनियर रैंगलर" लोग विद्यामें बहुत बढ़े-चढ़े होने पर भी संसारके विशेष उपकारी नहीं प्रमाणित हुए हैं। इससे सिद्ध होता है कि परिश्रम करके किसी एक विषयमें अधिक योग्यता प्राप्त कर लेना और बात है और प्रतिभाशाली होना और बात है। दूसरी बात यह भी देखी जाती है कि यद्यपि जब तक मनुष्य यथेष्ट अनुभव न प्राप्त करले, तबतक उसे विशेष अधिकार नहीं मिलता, तथापि प्राचीन तथा आधुनिक कालके बहुतसे ऐसे शासक और अधिकारी आदि हो गये हैं, जिनकी अवस्था अपेक्षाकृत कम ही थी।

सिकंदर बीस वर्षकी अवस्थामें मकदूनियाकी गद्दी पर बैठा था और उसी समय उसने यूनानके अनेक राज्योंको परास्त भूकिया था। केवल पौने तेरह वर्षके राजत्व-कालमें उसने मध्य

सागरसे लेकर पंजाब तक अपना राज्य कर लिया था। चार्ल्स दी ग्रेटने तीस वर्षकी अवस्थामें फ्रान्स और जर्मनी दोनों पर अधिकार कर लिया था। फ्रान्सीसी ह्यूगेनाट लोगोंका सरदार हेनरी सोलह वर्षका था। उसी अवस्थामें वह अनेक युद्धोंमें विजय पाने लगा था। चौंतीस पैंतीस वर्षकी अवस्थामें एक बार उसने केवल पाँच हजार आदमियोंको लेकर उकडी मेयेनके पचीस हजार आदमियों पर विजय प्राप्त की थी। कहा जाता है कि जितनी देर मेयेनको भोजनमें लगती थी, उतनी देर हेनरीको सोनेमें भी न लगती थी। एक बार किसीने उससे मेयेनकी वीरता और साहसकी बहुत प्रशंसा की। इस पर उसने कहा—"वह जरूर बहुत अच्छा कप्तान है; पर मुझे पाँच घण्टेका समय उससे अधिक मिलता है।" बात यह थी कि हेनरी सोकर पाँच बजे उठता था और मेयेन दस बजे।

गस्टेवसने सत्रह वर्षकी अवस्थामें स्वीडनके सिंहासन पर अधिकार प्राप्त किया था। उस समय एक ओरसे पोलैण्डके राजा ने और दूसरी ओरसे रूसके ज़ारने उसके राज्य पर आक्रमण किया था; पर नौ वर्षतक लगातार युद्ध करके गस्टेवसने केवल अपने दोनों शत्रुओं को ही नहीं परास्त किया, बल्कि उनका बहुतसा देश भी छीन लिया। उसी बीचमें उसने आस्ट्रियन आक्रमणकारियोंको भी परास्त किया था। स्वीडनके राजा बारहवें चार्ल्सने बाल्यावस्था में ही इससे भी बढ़ कर वीरता दिखाई थी। जब पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें वह राज्यसिंहान पर बैठा, तब रूस, पोलैण्ड, सैक्सनी और डेन्मार्कके चारों राजाओंने मिलकर उसका देश छीनना चाहा। चार्ल्सने तुरन्त डेन्मार्क पर चढ़ाई करके वहाँके राजाको सन्धि करनेके लिए विवश किया। इसके

बाद वह रूसकी तरफ मुड़ा। अट्ठारह वर्षकी अवस्थामें उसने एक युद्ध में दसगुने रूसियोंको परास्त किया। तदनन्तर वह पोलैण्ड पर टूटा। वहाँकी सेनाको परास्त करके राजाको उसने गद्दीसे उतार दिया और उसके स्थान पर दूसरेको गद्दी दी, इसके उपरान्त वह रूसके ज़ार पीटरको गद्दीसे उतारनेके प्रयत्नमें लगा। इस युद्धमें रसदकी कमी, जाड़े और रोग फैलनेके कारण उसकी सेनाको परास्त होना पड़ा और वह भाग कर टर्की चला गया। चार वर्ष बाद वह वहाँसे लौटा और एक साथ ही प्रूशिया, डेन्मार्क, सेक्सनी और रूस से खूब लड़ा। पन्द्रह वर्ष तक इस प्रकार देशके बाहर रहकर वह फिर स्वीडन पहुँचा। वहाँ उसने मेनारडे पर जो उस समय डेन्मार्कसे मिल गया था, आक्रमण करके कई युद्धोंमें विजय प्राप्त की। पर एक दिन जब वह खाइयों का निरीक्षण कर रहा था, एक गोली आकर उसे लगी और सैंतीस वर्ष की अवस्था में वह मर गया।

प्रूशियाका फ्रेडरिक दी ग्रेट भी बहुत बड़ा वीर युवक हो गया है। आरम्भमें तो कभी यह आशा की ही नहीं जा सकती थी कि वह राज्यके किसी कामका निकलेगा; क्योंकि वह दिनरात फ्रान्सीसी किताबें पढ़ा करता था, गाता बजाता था और चित्रोंका संग्रह किया करता था। सैनिक शिक्षाकी ओर उसका तनिक भी ध्यान न था। पिताने नाराज होकर उसे जेलमें बन्द कर दिया था और यहाँ तक कि एक बार उसे फाँसी देने तककी आज्ञा दे दी थी। पर पिताके मरने पर अट्ठाईस वर्षकी अवस्थामें वह सिंहासन पर बैठा और दूसरे ही वर्ष आस्ट्रियासे लड़ कर उसने भारी विजय प्राप्त की। दो वर्ष बाद वह फिर आस्ट्रियासे भिड़ गया और उसमें भी विजय प्राप्त की। जब वह चवालीस वर्षका

हुआ, तब सप्त-वर्षीय युद्ध आरम्भ हुआ। उसमें भी उसने अपनी युद्ध-निपुणताके अनेक प्रमाण दिये। सीमा बढ़ा कर अपने राज्यको उसने युरोप में प्रथम श्रेणीका बना लिया था।

टाउलन के घिरावमें नेपोलियन तोपखानेका प्रधान अधिकारी था। उस समय उसकी अवस्था केवल चौबीस वर्षकी थी। सत्ताईस वर्षकी अवस्थामें उसने फ्रेंच सेनाको लेकर इटालियनोंसे मुठभेड़ की थी और अच्छी विजय प्राप्त की थी। उसने बड़े बड़े अनुभवी और वृद्ध सेनापतियोंके छक्के इसी अवस्थामें छुड़ाये थे। तेईस वर्ष तक वह बराबर लड़ता भिड़ता और जीतता ही चला गया। उसका नाम "विजय-पुत्र" रखा गया था। पर अन्तमें छियालीस वर्षकी अवस्थामें अधिक मोटे और वृद्ध हो जानेके कारण वह बाटर्लूके मैदानमें परास्त होकर पकड़ा गया। कुछ लोगोंका यह भी कथन है कि वह स्वयं तो भाग गया, पर उसके स्थान पर एक सिपाही पकड़ गया, जिसकी आकृति उससे मिलती जुलती थी। अस्तु; इसमें सन्देह नहीं कि अपनी युवावस्थामें उसने ऐसी वीरता दिखलाई थी कि उसकी समता इतिहासमें बहुत ही कम मिलती है। उसकी अधीनतामें काम करनेवाले, अधिकांश बड़े बड़े सेनापति भी युवक ही थे। राबर्ट क्लाइब भी छोटी ही अवस्थामें बहुत बड़ा योद्धा था। पचीस वर्षकी अवस्थामें केवल पाँच-सौ सिपाहियोंको लेकर उसने फ्रांसीसियोंको परास्त किया और आरकाट पर अधिकार किया था। एक हजार अँगरेज और दो हजार देशी सिपाहियोंको लेकर उसने चालीस हजार पैदल और पन्द्रह हजार घुड़-सवारों पर प्लैसीके युद्ध में विजय प्राप्त की थी।

भारतवर्षमें तो इतने अधिक वीर और योद्धा हो गये हैं कि इस देशकी भूमि ही वीर-प्रसविनी कही जाने लगी है। महाराष्ट्र-केसरी छत्रपति शिवाजी बहुत ही छोटी अवस्थासे अपना अधिकार और बल बढ़ाने लगे थे। १९–२० वर्षकी अवस्था तक उन्होंने कई दुर्गों पर अधिकार जमा लिया था। ३०–३२ वर्षकी अवस्था तक पहुँचते पहुँचते उन्होंने अनेक बार मुगलोंको बे-तरह परास्त करके बहुतसा प्रान्त हस्तगत कर लिया था और इसी प्रकार बराबर बढ़ते बढ़ते छियालीस वर्षकी अवस्थामें तो उन्होंने दक्षिणमें हिन्दू साम्राज्य ही स्थापित कर लिया था। उनकी गणना संसारके प्रधान पराक्रमियोंमें की जाती है। उनके समयमें तथा उनके उपरान्त भी महाराष्ट्र प्रदेश वीरोंसे खाली नहीं रहा। उसमें बड़े बड़े वीर, योद्धा और उत्साही युवक हुए।

बुन्देलखण्डमें भी अनेक पराक्रमी और योद्धा युवक हो गये हैं। ओड़छेके राजा वीरसिंहदेवने बहुत ही थोड़ी अवस्थामें मुसलमानोंसे लड़-भिड़ कर और उनकी अनेक छोटी-मोटी रियासतें छीन कर अपने राज्यका विस्तार बहुत बढ़ाया था। उनके बनवाये हुए अनेक प्रासाद और गढ़ आदि उनकी कीर्त्तिका अच्छा परिचय देते हैं। छत्रसालके पिता चम्पतरायको अपने पूर्वजोंसे जो जागीर मिली थी, उसकी वार्षिक आय साढ़े तीन-सौ रुपयेसे अधिक नहीं थी। इन्होंने केवल दस ही पाँच आदमियोंको अपने साथ लेकर कार्य्य आरम्भ किया था। धीरे धीरे इन्होंने अपने पराक्रमसे धन और जनका यथेष्ट संग्रह किया और ओड़छेका बहुत कुछ अंश अपने अधिकारमें कर लिया। जब शाहजहानने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया, तब इनमें जातीयताका भाव उत्पन्न हुआ और इन्होंने विधर्म्मियोंकी तरफ रुख

की। तबसे वे बराबर मुसलमानोंका दमन करनेके प्रयत्नमें लगे रहे। पर अनेक, घरके शत्रुओंके कारण ही इन्हें सफलता प्राप्त न हो सकी। अन्तमें इनकी मृत्यु हो गई और इनके वीर पुत्र छत्रसालने बुन्देलखण्डसे मुगलोंको निकालनेका काम अपने हाथमें लिया। मुगलोंके मुकाबलेमें इनकी शक्ति कुछ भी न थी। इसलिए पहले मुगल-सेनाका हाल-चाल जाननेके लिए इन्होंने मुगलोंकी सेवा की। स्वतंत्रता-सम्बन्धी अपने मनके भावोंको बड़ी कठिनतासे दबा कर देवगढ़में ये बड़ी ही वीरता-पूर्वक मुगलोंकी ओरसे लड़े थे। देवगढ़ पर मुगलोंकी विजय इन्हींके पराक्रमसे हुई थी। इसके उपरान्त दक्षिणकी चढ़ाईमें भी इन्होंने मुगलोंकी ओरसे बहुत बड़ा काम किया था। दक्षिणमें ही ये शिवाजीसे मिले थे और वहींसे इन्होंने स्वतंत्र रूपसे कार्य करना आरम्भ किया। स्वतंत्रता-स्थापनामें इन्हें जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं, उनके उल्लेखसे इतिहास भरे पड़े हैं। एक तो प्रबल बाहरी शत्रुओंका सामना और दूसरे घरके भेदियोंसे बचना, उस पर पासमें कोई विशेष साधनका न होना। ये सब बातें ऐसी थीं कि अच्छे अच्छे वीर निराश होकर कोनोंमें बैठ जाते। पर छत्र-सालने इन कठिनाइयोंकी तनिक भी परवा न की और अपना काम बराबर जारी रखा। मुगलोंकी ओरसे लड़ने भिड़नेके उप-रान्त बाईस वर्षकी अवस्थामें इन्होंने बुन्देलखण्डमें स्वतंत्रता स्थापित करनेके विचारसे मुगलोंसे लड़ना आरम्भ किया और अनेक अवसरों पर उन्हें बुरी तरह परास्त किया। औरंगजेबने इनको दबानेके लिए बहुत बड़ी मुगल-सेना बुन्देलखण्ड भेजी, जिसमें बहुतसे बुन्देले सरदार और राजा भी सम्मिलित हो गये थे। मुगलोंको पहाड़ी और जंगली स्थानमें ले जाकर इन्होंने

बड़ी भारी शिकस्त दी और बहुत दूर तक उनका पीछा करके उन्हें भगाया। पीछे जब रूमी सेनाकी कुमक पहुँची, तब उसे भी इन्होंने परास्त किया। शिवाजीके साथ साथ छत्रसालका उपद्रव भी बढ़ता देख कर औरंगजेब विचलित हो गया था। इसके उपरान्त और भी अनेक युद्धोंमें इन्होंने मुगलोंको परास्त किया, जिनमेंसे चित्रकूटका युद्ध बहुत प्रसिद्ध है। अड़तीस वर्षकी अवस्थामें शिवाजीकी तरह इनका भी राज्याभिषेक हुआ। इससे पहले ही ये दिग्विजय करके बहुत बड़ा राज्य प्राप्त कर चुके थे। अन्तिम बार इन्होंने मुगल सूबेदार शाहकुलीसे मऊके निकट युद्ध करके उसकी विशाल सेनाको परास्त किया और उसे बन्दी बनाया था। तबसे अरंगजेबको इनके विरुद्ध और सेना भेजनेका साहस नहीं हुआ। तब छत्रसाल अपने देशके शासन-सुधारमें लगे और सब प्रान्तों तथा विभागोंका इन्होंने बहुत अच्छा प्रबन्ध किया। अन्तमें लगभग पचासी वर्षकी अवस्थामें इनका शरीरपात हुआ। इन्होंने जो विशाल राज्य स्थापित किया था, वर्त्तमान, पन्ना, छत्रपुत्र, जैतपुर, चरखारी, अजयगढ़, बिजावर, सरीला, आदि राज्य उसीके अँग हैं और उसीके टूटनेसे बने हैं।

अन्य देशोंके राजकुलोंमें तो एक दो या तीन पीढ़ी तक ही वीर देखे जाते हैं, पर राजपूतानेमें अनेक ऐसे राजकुल हो गये हैं, जिनमें लगातार बीसियों पीढ़ियाँ श्रेष्ठ वीरों और योद्धाओंकी हुई हैं। इनमेंसे मेवाड़का बाप्पा रावलका वंश अग्रगण्य है। जब चित्तौड़ पर पश्चिमकी ओरसे एक विदेशी शत्रुने आक्रमण किया था, तब बड़े बड़े सरदार युद्धमें जानेसे हिचकने लगे थे। उस समय बालक बाप्पा तुरत उस विदेशीका सामना करनेके

लिए तैयार हो गये थे। बाप्पाने इस शत्रुको केवल परास्त ही नहीं किया था, बल्कि गजनी तक उसका पीछा भी किया था। इनकी योग्यता और पराक्रमसे प्रसन्न होकर चित्तौड़के मोरी वंशके राजाने इन्हें अपना राज्य दे दिया था। उस समय इनकी अवस्था केवल पन्द्रह वर्षकी थी। तबसे इन्होंने ३६ वर्ष तक चित्तौड़ पर राज्य किया और इस्फाहान, कन्धार, काश्मीर, इराक, ईरान, तूरान और काफिरस्तान तकके बड़े बड़े बादशाहोंको परास्त किया।

जब चित्तौड़ पर मुसलमानोंका अधिकार हो गया, तब वीरवर हम्मीरसिंहने केवल थोड़े सैनिकोंको लेकर बहुसंख्यक मुसलमानों के दांत खट्टे कर दिये और अन्तमें उनसे चित्तौड़ छीन ही लिया। युवावस्थामें ही हम्मीरसिंह जितने वीर और साहसी थे, उतने ही वे प्रबन्ध-कुशल और राजनीतिज्ञ भी थे। राणा कुम्भा और राणा साँगाने भी युवावस्थामें ही मुग़लोंसे अनेक युद्ध करके उन्हें परास्त किया था। बाकरौलमें मुसलमानों पर विजय प्राप्त करके राणा साँगा (संग्रामसिंह) ने रणथम्भोरके दुर्गम किले पर आक्रमण किया था। उस किले पर विजय प्राप्त करनेके लिए बहुतसे राजपूत योद्धाओंको एक दूसरेके कन्धे पर चढ़ कर और इस प्रकार बराबर आदमियोंकी सीढ़ी बना कर किलेके ऊपरी भाग तक पहुँचना पड़ा था और उनमेंसे सबसे पहले खाली हाथ किलेमें प्रवेश करनेवाले और पहरेवालोंको धक्केसे गिरा देनेवाले हमारे युवक राणा संग्रामसिंह थे। मुसलमानोंको इन्होंने सँभलने तकका मौका नहीं दिया और भीषण मारकाट मचा कर तुरत सारे किले पर अपना अधिकार जमा लिया। मालवे पर आक्रमण करके इन्होंने वहाँके बादशाह मुजफ्फरशाहको कैद कर

लिया था। बाल्यावस्थामें ही अपने भाईके साथ युद्धका अभ्यास करनेमें इनकी एक आँख जाती रही थी। दिल्लीके लोदी बादशाहके साथ युद्ध करनेमें इनका एक हाथ कट गया था और एक दूसरे युद्धमें तोपका गोला लगनेसे ये लँगड़े हो गये थे! इस शारीरिक अवस्थामें इन्होंने जैसा अच्छा पराक्रम दिखलाया था, वैसा कदाचित् ही और किसीने दिखलाया होगा। मरनेके समय इनके शरीर पर तलवारों और भालोंके ८० बड़े बड़े घाव थे! महाराणा प्रतापने युवावस्थामें ही अपनी वीरता और पराक्रमका जो अनुपम प्रमाण दिया था, उसकी प्रशंसामें बड़े बड़े इतिहासोंके पृष्ठके पृष्ठ भरे पड़े हैं।

पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंहने विशाल सिक्ख-राज्यकी स्थापनाका कार्य्य प्रायः बीस बाईस वर्षकी अवस्थामें ही आरम्भ कर दिया था और पचीस वर्षकी अवस्थामें इन्होंने अँगरेजोंसे सन्धि की थी। २८ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने उत्तरी पंजाबके बहुतसे स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया था। उस समय बहुतसे स्वाधीन सिक्ख-राज्य युवक रणजीतसिंहकी अधीनता स्वीकृत करनेमें अपना परम सौभाग्य समझते थे। इससे पहले ही सतलजके पश्चिमी किनारेका कुछ राज्य भी इनके अधिकारमें आ चुका था। उन्हीं दिनों जब नेपोलियनके भारत पर आक्रमण करनेकी आशंका होने लगी थी, तब अँगरेजोंने रणजीतसिंहको अपने साथ मिलाये रखनेके लिए मेटकाफ साहबको उनके दरबारमें भेजा था। २८-३० वर्षकी अवस्थामें ही ये यमुनासे लेकर सतलज तक अपना राज्य बढ़ाना चाहते थे। तीस वर्षकी अवस्थामें इन्होंने पहले पहल मुलतान पर आक्रमण किया था और लगातार कई बार आक्रमण करके अन्तमें ३८ वर्षकी

अवस्थामें उस पर विजय प्राप्त कर ही ली। इसके कई वर्ष पहले ही काश्मीरकी कई छोटी रियासतों और कुल्लू पर इन्होंने विजय प्राप्त कर ली थी। अफगानिस्तान पर भी आक्रमण करके इन्होंने अपने उच्चाकांक्षी और पराक्रमी होनेका परिचय दिया था। पीछेसे डेरागाजीखाँ और काश्मीर पर भी इन्होंने अधिकार जमा लिया था। जब ये ४१ वर्षके थे, तब इनका प्रताप इतना बढ़ चुका था कि रूससे एक दूत इनके दरबारमें आया था। फ्रान्समें भी इनकी ख्याति पहुँच गई थीं; क्योंकि वहाँसे दो ऐसे सेनापति इनके पास आये थे, जो नेपोलियनकी अधीनतामें काम कर चुके थे। महाराज रणजीतसिंहके समयमें सिक्ख-राज्यकी सीमा उत्तर और उत्तर-पूर्वकी ओर हिन्दुकुश और तिव्बतकी पर्वत-माला तक और उत्तर-पश्चिमकी ओर खैबर तथा सुलेमानकी पर्वत-माला तक पहुँच गई थी। इधर सिन्ध नदी और सतलजके पार तक सिक्खोंकी ध्वजा फहराती थी।

यद्यपि भारतमें मुगल-साम्राज्यका प्रधान और पहला संस्थापक बाबर था और उसके लड़के हुमायूँने भी साम्राज्य-स्थापनके काममें बहुत कुछ उद्योग किया था; पर वास्तवमें भारतमें मुगल-साम्राज्यका पूर्ण संस्थापन करनेवाला उसका पोता अकबर ही था। अकबरने पूर्ण साम्राज्य-स्थापनका बहुत बड़ा काम अपनी युवावस्थामें ही किया था। अट्ठारह वर्षकी अवस्थामें ही बैरम-खाँकी अभिभावकतासे निकल कर इसने अपने हाथमें राज-कार्य्य लिया था और तबसे लगातार सात वर्ष तक यह अपने ही अधीनस्थ, पर विद्रोही सरदारों से लड़ता रहा। अन्तमें उन्हें पूर्ण-रूपसे इसने अपने अधीन कर लिया। पचीस वर्षकी अवस्थामें ही इसने राजपूतानेके अनेक स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया

था और अनेक राज्योंको अपना करद बना लिया था। तब से यह बराबर दूसरे राज्योंको अपने राज्यमें मिलता रहा और धीरे धीरे इसने गुजरात, बंगाल, काश्मीर, सिन्ध और कन्धार पर तक अपना अधिकार जमा लिया। समस्त उत्तर भारत पर अधिकार करके इसने दक्षिणकी ओर रुख की और खानदेश, बराड़ तथा अहमदनगरके बहुत बड़े अंश पर भी अपना अधिकार जमा लिया था। यह केवल अपना राज्य बढ़ानेमें ही निपुण नहीं था, बल्कि उत्तम-रूपसे उसका शासन और प्रबन्ध करनेमें भी बहुत कुशल था।

इसी प्रकार हमारे यहाँ ऐसे सेना-नायकोंकी भी कमी नहीं है, जिन्होंने बहुत ही छोटी अवस्थामें सेनाका संचालन अपने हाथमें लिया हो और अपने स्वामीके लिए बहुतसे प्रदेश जीते हों। आल्हा और ऊदल दोनों भाइयोंने राजा परमालके लिए बहुतसा देश जीता था। राजा टोडरमल यद्यपि राजनीतिज्ञ और राज्य-संचालक ही थे, तो भी ईर्ष्या-वश जब कुछ लोगोंने उन्हें युद्धमें भिजवाया, तब वहाँ भी उन्होंने अपनी बहुत कुछ वीरता और योग्यता दिखलाई थी। अकबरके लिए गुजरात और बंगालका बहुत बड़ा प्रान्त टोडरमलने ही जीता था। इसके अतिरिक्त और भी अनेक छोटी-मोटी लड़ाइयोंमें उन्होंने विजय प्राप्त की थी। राजा हरदासरायने जहाँगीरके लिए काँगड़ा प्रदेश जीता था, बहुतसे किलों पर अधिकार प्राप्त किया था और चम्बेके राजाको सर किया था। महाराज रणजीतसिंहको विशाल सिक्ख-राज्य-की स्थापनामें सबसे अधिक सहायता युवक दीवान मोहकचन्द्रसे ही मिली थी, जिन्हें सर लेपिल ग्रिफिनने महाराजका सर्व-प्रधान सेनापति लिखा है। उन्हींने फरीदकोट और पटियालेकी रियासतों

को करद बनाया था, स्यालकोट और जालन्धर पर अधिकार किया था, गोरखोंको काँगड़ेसे निकाल बाहर किया था, भिंबर, रजावड़ी, कुल्लू, सुकेत और मण्डीके राजाओंको परास्त करके वशमें किया था, शाहशुजाको काश्मीरसे छुड़ाया था और अफगानोंसे लड़ कर विजय प्राप्त की थी। दीवान मोतीराम, रामदयाल, कृपाराम और हरीसिंह नलुएसे भी महाराज रणजीतसिंहको बहुत अधिक सहायता मिली थी और इन लोगोंने बहुतसे छोटे-मोटे प्रदेश जीते थे। दीवान सावनमल बत्तीस वर्षकी अवस्थामें २५०) मासिक पर मुलतान भेजे गये थे और दूसरे ही वर्ष मुलतान प्रान्तके आधे भागके गवर्नर बना दिये गये थे। कुछ ही दिनों बाद सारा मुलतान प्रान्त और डेरागाजीखाँ उनके अधिकारमें दे दिया गया, जो जीवनभर उनके हाथ में रहा। उन्होंने अपने प्रान्तमें शासन की जो सुव्यवस्था की थी, वह तो की ही थी, साथ ही मुलतान प्रदेशकी बहुतसी पड़ती जमीन को उपजाऊ बनानेके लिए उस पिछड़े हुए जमानेमें (सन् १८३२ के लगभग) तीन-सौ मील तक नहरें खुदवाई थीं। सीमाप्रान्तके अफगानोंको बड़ी कठिनतासे उन्होंने सर किया था। उनकी स्वतंत्र वृत्तिको देख कर लोगोंको आशंका होने लगी थी कि ये अपने प्रान्तको दबा कर कहीं स्वतंत्र न हो जाँय। इसलिए सन् १८४४ में वे लाहौरके दरबार में छलसे मार डाले गये थे।

यह बात दूसरी है कि किसीको प्रौढ़ावस्था तक पहुँचनेसे पहले अपनी योग्यता दिखानेका अवसर न मिले; पर तो भी उसमें अवसर पड़ने पर काम करनेकी योग्यता होना बहुत ही आवश्यक है। जो मनुष्य युवावस्थामें योग्यता प्राप्त कर

सकता है, वही प्रौढ़ावस्थामें भी कुछ काम कर सकता है। तो भी बहुत कम प्रतिभाशाली मनुष्य चालीस वर्षसे अधिककी अवस्था तक पहुँचते हैं। गाथेने कहा है कि उस अवस्था तक पहुँचनेके उपरान्त बहुत ही थोड़े लोग अपना मत बदलते अथवा नये सिद्धान्त ग्रहण करते हैं, जो वे युवावस्थामें पहलेसे ही सोच चुके होते हैं। कोलम्बस और न्यूटनके मनमें अपने अपने अविष्कारोंके सम्बन्धमें युवावस्थामें ही विचार उठे थे। रानडे और गोखलेने युवावस्थामें ही देश-सेवा करनेका दृढ़ विचार कर लिया था। राजा राममोहनराय तथा स्वामी दयानन्दने भी उसी अवस्थामें लोगोंके विचारोंके प्रवाहको बदलना निश्चय कर लिया था।

सब प्रकारके बड़े बड़े कामोंको विचारने और करनेकी शक्ति युवावस्थामें ही होती है। प्रौढ़ावस्थामें ही वे सब कार्य ठीक होते और पूर्णता प्राप्त करते हैं। युवा-वस्थामें जीविनी-शक्ति पूर्ण-रूपसे होती है और उसी समय मनमें नये विचार उत्पन्न होते हैं। चालीस वर्षके बाद लोग भले ही बड़े बड़े काम करते हों, पर इसमें सन्देह है कि उस समय मानसिकबल से उस काम में यथेष्ट सहायता मिलती है या नहीं। एक विद्वान्का विश्वास है कि "जिस मनुष्यकी शक्तियों और गुणोंका परिचय बीस वर्ष तक की अवस्थामें न मिल जाय, वह आगे चल कर कभी कोई बड़ा काम नहीं कर सकता, और अब तक मनुष्योंने जितने बड़े बड़े काम किये हैं, वे सब तीसवर्षकी अवस्था तक पहुँचनेसे पहले ही किये हैं। अन्य लोगोंको देखते हुए बड़े आदमियोंको अपने जीवनके उत्तरार्द्धमें चाहे अधिक यश प्राप्त हुआ हो, पर स्वयं उनके जीवनके उत्तरार्द्धकी अपेक्षा पूर्वार्द्ध में ही उन्होंने अधिक

कार्य्य किया और अधिक कीर्ति प्राप्त की है।" स्वयं अपने सम्बन्धमें उस महात्माने कहा है कि युवावस्थाकी अपेक्षा प्रौढ़ावस्थामें मेरी धारणा तथा शारीरिक शक्ति घट ही गई है, बढ़ी नहीं है। वह यह भी कहता है—"सम्भव है कि अपने समय, ज्ञान और अनुभवका सदुपयोग करनेवाले महानुभाव दिन पर दिन बराबर उन्नति करते चले जायँ, पर तो भी इसमें सन्देह नहीं कि ज्यों‌ज्यों दिन बीतते हैं, त्यों‌त्यों हमारी जीवन-शक्ति, फुर्तीलापन, दृढ़ता तथा अन्यान्य महत्त्वपूर्ण गुण बराबर घटते और कम ही होते जाते हैं।"

———

चौथा प्रकरण

वृद्ध महापुरुष

मनुष्योंकी दशा पौधोंकी-सी है। उनमेंसे कुछ ऐसे होते हैं, जो जल्दी फूलते हैं और कुछ ऐसे होते हैं, जो देर से फूलते हैं। जो पौधे जल्दी फूलते हैं, वे प्रायः जल्दी ही नष्ट भी हो जाते हैं। बढ़िया जातिके गुलाब, चमेली, बेला, मोतिया, पारिजात, कमल आदि फूल वर्षके आरम्भसे लेकर मध्य तक ही होते हैं। वर्षके उत्तरार्द्धमें तो गेंदा और सूरजमुखी होता है; उस समय तक रहनेवाले गुलाब आदि थोड़े ही होते हैं।

यद्यपि कहा जाता है कि "होनहार बिरवानके, होत चीकने पात" और "पूतके लच्छन पालनेमें" अर्थात् होनहार होनेके चिन्ह मनुष्यमें आरम्भमें ही दिखाई देने लगते हैं; तथापि कभी कभी ऐसा भी देखा जाता है कि मनुष्यके गुणोंका विकाश उतरती अवस्थामें होता है। प्रत्येक मनुष्यकी मानसिक शक्ति उसके स्वभावके अनुसार अलग अलग प्रकारकी होती है। कुछ लोग तेज होते हैं, कुछ सुस्त होते हैं, कुछ जिन्दा-दिल होते हैं, कुछ मुर्दा-दिल होते हैं। अच्छी शक्तियाँ रखनेवाले बहुतसे बालक भी बाल्यावस्थामें कोई उन्नति नहीं करते और बहुतसे साधारण योग्यतावाले ऐसे बालक, जिनमें जल्दी जल्दी बढ़नेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, उस अवस्थामें उनसे कहीं आगे बढ़ जाते हैं। तो भी पहले वर्गके बालक आगे चल कर युवावस्थामें अधिक

बलवान् और कार्य्यक्षम होते हैं। आमका पेड़ जल्दी जल्दी बढ़ता है, पर उसकी लकड़ी कमजोर और खराब होती है। शीशमका पेड़ देरसे बढ़ता है, पर उसकी लकड़ी मजबूत और बढ़िया होती है।

कुछ लोगोंका कथन है कि जो बालक छोटी ही अवस्थामें बहुत चालाक और तेज होते हैं, बड़े होने पर उन्हें किसी प्रकार की सफलता नहीं प्राप्त होती। युवावस्थामें वे प्रायः रोगी होते हैं और बहुत ही साधारण अवस्थामें रहते हैं। लड़कोंका तेज और चालाक होना एक तरहकी खराबी ही है। हेजलिटकी सम्मति है कि पढ़ने-लिखनेमें जो बालक बहुत तेज होते हैं, उनमें से अधिकांश बड़े होने पर मूर्ख हो जाते हैं; और लार्ड काकबर्न-का मत है कि चपल बालकोंकी अपेक्षा बोदे बालक ही बड़े होने पर अधिक काम कर सकते हैं। लार्ड काकबर्नका यह भी मत है कि बालकोंकी पढ़ने-लिखनेकी प्रवृत्ति और स्कूलमें उनकी उन्नति कुछ तो शिक्षकों पर और अधिकतर स्वयं बालकों पर निर्भर करती है। वे स्वयं अपने तथा अपने एक मित्रके विषयमें लिखते हैं कि "दोनोंको एक मूर्ख शिक्षकने गधा बना दिया था।"

ऐसे मूर्ख शिक्षक बालकोंकी प्रवृत्तिसे परिचित नहीं होते और न वे बालकोंको पढ़ने-लिखनेके लिए उत्साहित करनेकी कला जानते हैं; उनका सारा आधार मारने पीटने पर ही होता है। काकबर्न कहते हैं कि मैं चार वर्ष तक उस निर्दयी राक्षससे पढ़ता रहा, लेकिन इनमेंसे शायद दस दिन भी ऐसे न बीते होंगे, जिनमें कि उसने कमसे कम एक बार मुझे न मारा हो।

अधिकांश हृष्ट-पुष्ट बालकोंका मन पढ़ने-लिखनेकी अपेक्षा खेल-कूदमें ही अधिक लगता है। बैठ कर किताबें पढ़ना उनकी

प्रकृतिके विरुद्ध होता है। पर अच्छी स्मरण-शक्तिवाले रोगी बालकको खेल-कूद अच्छा नहीं लगेगा और वह अपने दरजेमें सब लड़कोंसे आगे रहेगा। चाहे ऐसा बालक बहुतसे पुरस्कार पालें, तो भी खेल-कूदमें लगा रहनेवाला बालक नफेमें ही रहेगा; उसका शरीर और स्वास्थ्य सदा अच्छा रहेगा और साथ ही बहुधा यह भी देखा जाता है कि युवावस्थामें उन दोनोंकी दशा बिलकुल बदल जाती है—खूब पढ़नेवाला लड़का किसी कामका नहीं रह जाता और न पढ़नेवाला लड़का बहुत अच्छी स्थितिमें हो जाता है। लेकिन जैसा कि हम पहले प्रकरणों में बतला चुके हैं, सदा यही बात नहीं होती; बल्कि ऐसी अवस्था वास्तवमें बहुत ही कम होती है।

यह कोई नहीं कह सकता कि एक बोदा लड़का कहाँ तक उन्नति कर सकेगा। उसे उन्नति करनेके लिए समयकी आवश्यकता होगी। केवल अनुभवसे ही उसकी प्रवृत्तियोंका विकाश होगा। सम्भव है कि माता-पिता उसे किसी ऐसे काममें लगा दें जो उसकी प्रवृत्तिके विपरीत हो; पर यदि उसमें दृढ़ता होगी और किसी विशेष कार्य्यके प्रति उसकी पूर्ण प्रवृत्ति होगी, तो वह पहला काम छोड़ देगा और अपने मनमाने काममें लग जायगा। यदि ऐसे बालकको अपने मनमाने काममें लगनेमें किसीसे सहायता मिलने लगेगी, तो मानों सोनेमें सुगन्ध आ जायगी। नहीं तो यों भी वह सोना तो है ही। गुरु नानक व्यापारी नहीं बनाये जा सके, वे आपसे आप महात्मा और धर्म्म-प्रवर्त्तक बन गये। मीराबाई चित्तौरमें रखी और भगवद्भजनसे वंचित नहीं की जा सकीं; दयानन्द गृहस्थीके जंगलमें नहीं फँसाये जा सके और उन्होंने एक मत चलाया ही।

यद्यपि बालकोंकी भावी प्रवृत्तिआदिके लक्षण पहलेसे ही दिखाई पड़ने लगते हैं, तो भी पहलेसे ही यह कह देना एक प्रकार से असम्भव ही है कि यह बालक बड़ा होकर क्या करेगा अथवा क्या बनेगा। न तो उसके होनहार होनेके लक्षणोंका विश्वास किया जा सकता है और न अकर्म्मण्य होनेके लक्षणोंका। चतुर बालक बड़ा होने पर बहुत ही साधारण अवस्थाका मनुष्य भी रह सकता है और भारी मूर्ख लड़का बड़ा होने पर बहुत बड़ा विद्वान्, वीर या आविष्कर्त्ता भी हो सकता है। बनारसकी गलियों में मारे मारे फिरनेवाले और साधारण लोगोंको गाँजेकी चिलमें भर-भर कर पिलानेवाले जंगबहादुरको देख कर कौन कह सकता था कि यह आगे चलकर नेपालका महावीर और महामात्य होगा? अथवा देहातमें रहनेवाले एक बहुत ही साधारण बालक (सयाजीराव गायकवाड़) को देखकर कौन कह सकता था कि इसे बड़ौदेका विशाल राज्य मिलेगा और यह भारतके प्रथम श्रेणीके शासकों और राजाओंमें होगा? अथवा परम बोदे बालक राबर्ट क्लाइव को, जो आगे चल कर ईस्ट-इण्डिया-कम्पनीके दफ्तरमें एक साधारण क्लर्क हुआ था, देखकर कौन कह सकता था कि किसी समय यह भारतमें अँगरेजी सरकारका प्रधान अधिकारी होगा और भारतवर्षमें यही अँगरेजी राज्यकी जड़ पूरी तरहसे जमावेगा?

चतुर और बुद्धिमान् बालक युवावस्थामें भी प्रायः अच्छे ही निकलते हैं। हाँ यह बात दूसरी है कि यदि उन्हें काम करनेका मौका न मिले, तो वे साधारण स्थितिमें ही रह जायँ। यह भी सम्भव है कि एक बहुत ही साधारण बालक भी साधारणतः और विशेषतः ऐसी दशामें जब कि उसमें धैर्य्य और दृढ़ता हो,

बहुत कुछ महत्त्व प्राप्त करले। नीरोग और हृष्ट-पुष्ट बालक पढ़ने-लिखनेकी अपेक्षा खेल-कूद ही अधिक पसन्द करते हैं; रूखे विषयोंको पढ़ना और सबक याद करना उनके लिए बहुत ही कष्टदायक होता है। उनकी इच्छा तो खुली हवा और मैदानोंमें दौड़ने-धूपनेकी ही होती है। फिर छोटी अवस्थामें जिन बालकों से बहुत कुछ आशा की जाती है, वे बालक भी बड़े होने पर कभी कभी बिलकुल ही भोंदू ही देखे जाते हैं। कई ऐसे आदमी भी हो गये हैं, जिनसे बाल्यावस्थामें बहुत कुछ आशा की जाती थी, पर बड़े होकर जिन्होंने कुछ भी न किया। फ्रान्समें दो ऐसे बहुत बड़े राजनीतिज्ञ और प्रधान धर्म्माधिकारी हो गये हैं, जो युवावस्थामें दिन-रात जूआ ही खेला करते थे।

इसी तरह कालेजोंमें पढ़नेवाले युवकोंके काम देख कर कभी यह भी निश्चय नहीं कर लेना चाहिए कि ये बड़े होकर अमुक भारी कार्य्य कर सकेंगे। जमीनकी तरह मन भी प्रायः खाली पड़ा रहना और सब प्रकार कामों और बोझोंसे बचना चाहता है। जिस तरह बहुत दिनों तक बराबर यथेष्ट धान्य उत्पन्न करनेवाली भूमिमें आगे चल कर उपज कम हो जाती है, उसी तरह अधिक काम करनेवाला मन भी आगे चल कर निकम्मा हो जाता है। लार्ड क्लेरेण्डन युवावस्थामें कुछ भी श्रम न करते थे। कालेजमें उनका सारा समय खेल-कूद और इधर-उधर घूमने-फिरनेमें बीतता था। पर जब विवाह होनेके उपरान्त उनकी स्त्रीका देहान्त हो गया, तब दुःखने उनके गुणोंका विकाश किया। तबसे वे कानून और साहित्यके अध्ययनमें लगे और इनमें उन्हें बहुत अच्छी ख्याति प्राप्त हुई। हमारे यहाँ गोस्वामी तुलसीदासजीकी भी पहले यही दशा थी। वे भी आरम्भमें बड़े ही कामी थे। पर

जब एक बार उनकी स्त्री अपने मायके गयी और वे उसके पीछे-पीछे अन्धेरी रातमें तैरकर नदी पार करते हुए उसके पास पहुँचे, तब उसने इन्हें कुछ मर्म्मभेदी वाक्य कहे। तबसे इनकी प्रतिभाका विकाश हुआ और ये हिन्दी कवियोंके सिरमौर बने।

पादरी वार बर्टन भी लड़कपनमें बड़े ही वाहियात थे। उनके एक शिक्षकने एक बार कहा था कि इससे बढ़ कर बोदा और कोई लड़का मेरे देखनेमें नहीं आया। तो भी उन्हें अपने आप पर पूर्ण विश्वास था। इसीलिए एक बार उन्होंने अपने एक मित्रसे कहा था कि "मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आप लोग मुझे क्या समझते हैं। पर आप विश्वास रखिए कि कभी न कभी मैं आपको तथा सारे संसारको दिखला दूंगा कि मैं उतना बड़ा अज्ञान—मूर्ख नहीं हूँ, जितना बड़ा कि लोग मुझे समझते हैं।" वास्तवमें उन्होंने ऐसा ही किया भी। उनकी लिखी हुई एक पुस्तक देख कर उनके शिक्षक को इस बातका विश्वास ही न होता था कि ऐसा मूढ़ आदमी ऐसी अच्छी पुस्तक लिख सकता है। पादरी मालथस जब कैम्ब्रिजमें पढ़ते थे, तब जान बूझ कर लोगोंसे लड़ाइयाँ मोल लेने और झगड़े खड़े करनेके सिवा उन्हें और कुछ आता ही न था। डाक्टर पैली भी युवावस्थामें इतने निकृष्ट थे कि उन्हें देख कर कभी कोई यह नहीं कह सकता था कि बड़े होने पर ये इतने बड़े विद्वान् होंगे। कालेजमें जब वे पढ़ते थे, तब दो पहर तक तो पड़े सोते ही रहते थे और बाकी दिन सैर-तमाशे और घूमने-फिरनेमें बिताते थे। एक दिन उनके एक बहुत अमीर मित्रने तड़के चार ही बजे आकर उन्हें जगाया और कहा—"तुम बड़े मूर्ख हो। हमारे घरमें तो खानेका ठिकाना है, इसलिए हम कुछ नहीं करते। पर

तुम तो गरीब हो, तुम्हारा काम कैसे चलेगा? तुम सब कुछ कर सकते हो और अच्छे दरजे तक पहुँच सकते हो। आज रात भर मुझे तुम्हारी ही चिन्ता रही है, इसीलिए इस समय मैं तुम्हें सचेत करने आया हूँ।" इन दो एक मर्म्मभेदी वाक्योंने पैलीके जीवनका रुख ही एकदमसे पलट दिया। उन्होंने ऐसे-ऐसे मन्सूबे बाँधे, जिनका उन्हें स्वप्नमें भी कभी ध्यान न हुआ होगा। वे खूब जी लगा कर पढ़ने लगे और उसी वर्ष सीनियर रैंगलर हो गये।

ड्राइडन भी स्कूल या कालेजमें कुछ भी न पढ़ता था। अपने जीवनके आरम्भिक तीस वर्ष तो उसने बिलकुल वृथा ही खोये थे। पर जब उसे दरिद्रताने घेरा, तब वह नाटक लिखने लगा और प्रायः सत्रह वर्ष तक फुटकर नाटक आदि ही लिखता रहा। जिन अच्छे-अच्छे ग्रन्थोंके लिए अँगरेजी साहित्यकारोंमें उसे इतना ऊँचा स्थान मिला है, वे सब उसकी पचाससे सत्तर वर्षके बीचकी अवस्थाकी रचनाएँ हैं। उसकी प्रतिभाका विकाश बिलकुल ढलती उमरमें हुआ था। गोल्डस्मिथ और स्विफ्टकी भी यही दशा थी। गोल्डस्मिथ इक्कीस वर्षकी अवस्थामें बी० ए० होनेके समय भी काठका उल्लू ही था। सूचीमें उसका नाम सबके अन्तमें था। उसने चिकित्सा सीखी और सारे युरोपमें वह मारा-मारा फिरा। वह बँसी बजा कर किसी तरह अपना पेट पालता था। इसके बाद उसने बहुत पापड़ बेले और एक बार तीस वर्षकी अवस्थामें उसने परीक्षा देनेके लिए सर्जनोंके कालेजमें प्रवेश करना चाहा। यद्यपि उन दिनों परीक्षा बहुत ही सहज थी, पर तो भी किसीने वहाँ उसे भरती न किया। तैंतीस छत्तीस वर्षकी अवस्थासे वह ग्रन्थ लिखने लगा और तबसे उसने बहुत ही अच्छे-

अच्छे ग्रन्थ लिखे। उसके मित्र उस समय भी उसकी हँसी ही उड़ाया करते थे। उसका मित्र जानसन उसे लक्ष करके कहा करता था कि "जब तक उसने कलम नहीं उठाई थी, तब तक उससे बढ़ कर और कोई मूर्ख नहीं था और जबसे उसने लिखना आरम्भ किया, तबसे उससे बढ़ कर और कोई बुद्धिमान् नहीं है। इसी तरह स्विफ्टने भी चौंतीस वर्षकी अवस्थामें लिखना आरम्भ किया था और तीन ही वर्ष बाद उसने एक ऐसी अच्छी पुस्तक लिखी, जिसके कारण उसकी सबसे अधिक ख्याति हुई। मिलटन, गाथे, वर्डस्वर्थ और बाइरन सब इसी कोटिके थे। इन सबके अच्छे-अच्छे ग्रन्थ प्रौढ़ावस्थामें ही लिखे गये थे। बाइरन जब संयोग-वश कभी अपने दरजेमें नम्बर चढ़नेके समय, सब लड़कों से ऊपर जा बैठता था, तब उसका शिक्षक कहा करता था—"हाँ जी, जरा देखें तो सही कि कितनी जल्दी फिर तुम सबसे नीचे जाते हो।"

अनेक कवियोंको तो किसी न किसी स्त्रीके प्रेमने ही कविताकी ओर प्रवृत्त किया था। डैनिश कवि जान इवाल्ड एक बार एक स्त्री पर आसक्त हो गया था, पर जब उस स्त्रीने दूसरेसे विवाह कर लिया, तब वह बहुत दुखी हुआ और फ़ौजमें भरती हो गया; पर वहाँ भी उसका जी न लगा। तबसे वह काव्य करके अपना जी बहलाने लगा। कुछ दिनों बाद वह ऐसा अच्छा कवि हो गया कि उसके एक ग्रन्थके मुकाबलेका और कोई ग्रन्थ डैनिश भाषामें है ही नहीं। कालेरिज भी बड़ा ही व्यसनी था। एक स्त्री पर उसका बहुत ही गहरा प्रेम था, पर उस स्त्रीने उसका कुछ ध्यान ही न किया। उसकी अधिकाँश अच्छी-अच्छी कविताएँ उसीके विरह-कालमें लिखी हुई हैं।

यद्यपि यह कहा जाता है, पर तो भी सदा और सब दशाओंमें यह आवश्यक ही नहीं है कि जो लोग बाल्य और युवावस्थामें बहुत ही विचक्षण-बुद्धि हों, प्रौढ़ावस्थामें वे किसी कामके न रह जायँ; क्योंकि संसारमें बहुतसे ऐसे लोग भी देखे जाते हैं जो बाल्य और युवावस्थामें भी बड़े ही विचक्षण-बुद्धि थे और वृद्धावस्थामें भी जिनकी विचक्षणता कम नहीं हुई। वर्डस्वर्थ बाल्यावस्थासे लेकर अस्सी वर्षकी अवस्था तक बराबर कविता करता रहा। मेटास टैसियो नामका एक कवि हो गया है, जो दस वर्षकी अवस्थासे लेकर अपने मरण समय चौरासी वर्षकी अवस्था तक बराबर कविता करता रहा।

कुछ लोगोंकी विचक्षणता बीचमें भी नष्ट हो जाती है। लार्ड चेस्टरफील्डका लड़का बाल्यावस्थामें तीन भाषाओंमें कविता करता था, पर युवावस्थामें उसके किये कुछ भी न होता था। इसी प्रकार और भी अनेक गवैये और कवि हो गये; जिन्होंने युवावस्था तक तो बहुत ही कीर्ति सम्पादित की; पर उसके उपरान्त उन्होंने कुछ भी न किया। कुछ लोग ऐसे भी हो गये हैं, जिनकी प्रतिभाशालिताका पता तो बाल्यावस्थामें ही लग गया था। पर जिनकी प्रतिभाका विकाश बिलकुल उतरती उमरमें हुआ था। हैण्डल दस ही वर्षकी अवस्था से गीत बनाने लग गया था; पर उसने परिचय अड़तालीस वर्षकी अवस्थामें दिया था। उसने जितने अपनी पूर्ण योग्यताका अच्छे-अच्छे ग्रन्थ लिखे, वे सब पचाससे पचहत्तर वर्षकी अवस्थाके बीचमें ही लिखे थे। इसी प्रकार बहुतसे चित्रकार और गवैये भी ऐसे हो गये हैं, जिन्होंने अपनी प्रवीणताका परिचय युवा, प्रौढ़ और वृद्ध सभी अवस्थाओंमें समान रूपसे दिया है। पर तो भी इन उदाहरणोंको अपवाद-

स्वरूप ही समझना चाहिए ; क्योंकि अब तक जितने बड़े बड़े कवि आदि हो गये हैं, उन्होंने अपनी प्रतिभा-शालिताका परिचय बहुत ही आरम्भिक अवस्थामें दे दिया है।

जिस समय मनुष्यका शरीर पूरी तरहसे बढ़ चुकता है, उस समय अधिक दिनों तक वह उसी दशामें नहीं रहता ; बल्कि धीरे-धीरे उसका ह्रास होने लगता है। सच पूछिए तो जिस दिन हम जन्म लेते हैं, उसी दिनसे हमारा मरण आरम्भ हो जाता है। युवावस्थामें मनुष्यमें जो परिवर्त्तन होता है, वह वृद्धिके लिए होता है और प्रौढ़ावस्थामें जो परिवर्त्तन होता है, वह ह्रासके लिए होता है। जिस समय चढ़ती उमरके दिन पूरे हो जाते हैं, उसी समय उमरका उतार आरम्भ होता है। सभी बातोंकी शक्ति धीरे-धीरे घटने लगती है ; उत्साह, आकांक्षा, बल आदि सभी कम होने लगते हैं। पर ज्यों-ज्यों मनुष्य नई बातें सीखता जाता है, त्यों-त्यों उसका बुद्धि-बल बढ़ता जाता है, इन्द्रियाँ शिथिल होने लगती हैं और बची हुई शक्ति बड़ी ही किफायतसे और अच्छे कामोंमें खर्च की जाती है। युवावस्थाके सुन्दर स्वप्नोंके साथ ही साथ उत्साह और कार्य्य करनेकी शक्ति भी कम होती जाती है। मनुष्यकी तेजी कम हो जाती है और वह अधिक शान्ति-पूर्वक सब बातों पर विचार करने लगता है। युवावस्थाकी अपेक्षा प्रौढ़ावस्थामें वह अपने अनुभवसे अधिक काम लेता है। इसीके साथ उसके शारीरिक और मानसिक अंग भी क्षीण होने लगते हैं। उसे किसी बातके उत्तम अंश बहुत कम दिखाई देते हैं और वह दरिद्रतासे अधिक दुखी होने लगता है। जैसा कि एक फारसीके कविने कहा है—"उमर

ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों जीवनके काँटे तो बढ़ते जाते हैं और फूल कुम्हलाते जाते हैं।"

प्रायः तीससे पचास वर्षकी अवस्था तक मनुष्यके सब अंग भी ठीक रहते हैं और उसकी मानसिक शक्तियाँ भी बहुत अच्छी दशामें रहती हैं। प्रतिभाके बहुत बड़े-बड़े काम इसी अवस्थामें होते हैं। मैकालेका कथन है—"इस समय संसारमें जितनी अच्छी-अच्छी किताबें हैं, उनमेंसे प्रति सैकड़े पंचानवे पुस्तकें ऐसी ही हैं, जिन्हें उनके लेखकोंने चालीस वर्षकी अवस्था तक पहुँचनेके उपरान्त लिखा है।" पर जैसा कि हम आगे चलकर दिखलावेंगे, यह कथन सर्वथैव ठीक नहीं है। शारीरिक श्रम बहुधा शरीरके संगठन और स्वभाव आदि पर अवलम्बित रहता है। पर साथ ही यह भी देखा जाता है कि काव्य तथा ललित-कलामें लोग युवावस्थामें ही अधिक प्रवीण होते हैं और इतिहास तथा दर्शन आदिमें मनुष्य प्रौढ़ तथा वृद्धावस्थामें पारंगत होता है। उद्‌गारों और भावोंकी उत्पत्ति युवावस्थामें ही होती है, पर साहित्यके अधिक गूढ़ और गहन विषयोंकी बात इससे बिलकुल ही उलटी है। किसी बहुत बड़े इतिहासकी सामग्री प्रौढ़ या वृद्धावस्थासे पहले एकत्र ही नहीं की जा सकती। इसी लिए अब तक जितने बड़े-बड़े इतिहास-वेत्ता हुए हैं, वे सब वृद्ध ही थे।

मि० क्वेटेलेटने एक नकशा तैयार किया है, जिसमें उन्होंने यह दिखलाया है कि नाटक बनानेकी शक्ति किस उमरमें बढ़ती और किस उमरमें घटती है। उससे पता लगता है कि इक्कीस वर्षकी अवस्थामें तो इसका आरम्भ होता है और पचीससे तीस वर्षकी अवस्था तक यह पूरे जोरों पर होती और बराबर

बढ़ती रहती है। पचास या पचपन वर्षकी अवस्था तक इसका बढ़ना जारी रहता है; और तब उसके उपरान्त एकदमसे उसका अन्त हो जाता है। बड़े-बड़े लेखकोंके छपे हुए ग्रन्थोंसे अब तक यही सिद्ध हुआ है। उन्होंने यह भी बतलाया है कि सुखान्त नाटक लिखनेकी अपेक्षा दुःखान्त नाटक लिखनेकी शक्ति अधिक शीघ्रतासे बढ़ती है। पर इसमें भी बहुतसे अपवाद मिलते हैं। बहुत से लोग ऐसे भी हो गये हैं, जो वृद्धावस्थामें बहुत ही दुर्बल हो जाने पर भी युवावस्थाकी-सी ही प्रतिभा दिखला गये हैं। बुढ़ापेमें भी उनमें जवानीकी-सी उमंगें देखी जाती हैं, उनके मरे हुए दिलमें मानों फिरसे जान आ जाती है। कभी-कभी तो यहाँ तक देखा जाता है कि वृद्धावस्थाके फल युवावस्था के फलों की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होते हैं। अन्धे होमरने सुप्रसिद्ध ओडेसी (Odyssey) नामक ग्रन्थ वृद्धावस्थामें ही बनाया था। मिलटनने आदम और हौवाके प्रेमका अपूर्व वर्णन बहुत ही वृद्धावस्थामें किया था। सेनापतिने अपना 'कवित्त-रत्नाकर' ग्रन्थ लगभग साठ वर्षकी अवस्थामें बनाया था। मतिरामने अपना पहला ग्रन्थ प्रायः पैंतालीस वर्षकी अवस्थामें बनाया था। उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रसराज' तो शायद पचपन या साठ वर्षकी अवस्थामें बना था। सबलसिंह चौहानने यद्यपि महाभारतका छन्दो-बद्ध अनुवाद युवावस्थामें ही आरम्भ किया था, पर उसका अन्तिम या स्वर्गारोहण पर्व उन्होंने लगभग अस्सी वर्षकी अवस्थामें लिखा था। भूषणने पैंतीस वर्षकी अवस्थासे कविता करना आरम्भ किया था और अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिवराज-भूषण' प्रायः साठ वर्षकी अवस्थामें बनाया था। महाराज छत्रसाल चौबीस वर्षकी अवस्थासे लेकर

प्रायः सत्तर-पचहत्तर वर्षकी अवस्था तक कुछ न कुछ कविता किया करते थे। देव कवि सोलह वर्षकी अवस्थासे ही कविता करने लगे थे और अपने मरण समय बहत्तर वर्षकी अवस्था तक बराबर कविता करते थे। घनानन्दने ढलती उमरमें ही भक्ति-सम्बन्धी अच्छी-अच्छी कविताएँ की थीं। पद्माकर भट्ट प्रायः अस्सी वर्षकी अवस्था तक बराबर बहुत अच्छी कविता करते थे।

बहुतसे लोग ऐसे हो गये हैं, जो युवावस्थामें बड़े ही निकम्मे, दुष्ट और मूर्ख होनेके कारण अपने वंशके कलंक समझे जाते थे, पर जो आगे चल कर अपने वंशके भूषण सिद्ध हुए। बहुतोंको तो कठिनाइयों और विपत्तियोंने ही कार्य्य-क्षेत्रमें उतार कर श्रेष्ठ बना दिया और बहुतेरे दूसरी आकस्मिक घटनाओंके कारण भले आदमी बन गये। व्हाइटफील्ड युवावस्थामें चोर था, पर वृद्धा-वस्थामें वह अपने समयका सर्व-श्रेष्ठ उपदेशक समझा जाता था। फ्रान्सके राष्ट्रपति और फ्रान्सीसी राज्य-क्रान्तिके बहुत अच्छे इति-हासज्ञ मा० थियर्स बाल्यावस्थामें बड़े ही भुक्कड़ और दुष्ट थे। हरे सेव खानेके लिए वे अपनी किताबें तक बेच डालते थे और अपनी दुष्टताके कारण स्कूलके मास्टरोंको सदा तंग किया करते थे। वे मास्टरकी कुरसी पर मोम लगा देते थे और जब मास्टरको उठनेमें बहुत कठिनता होती, तब सब लड़के जोरसे हँस पड़ते थे। पर वे बड़े ही दरिद्रके लड़के थे ; भविष्यकी चिन्तासे आप सुधर गये और थोड़े दिनों बाद ही अपने सारे सह-पाठियोंसे आगे बढ़ गये। ड्यूमास बाल्यावस्थामें खेलकूदके सिवा और कुछ जानता ही न था। युवावस्थामें उसे देख कर कोई यह नहीं कह सकता था कि यह कुछ भी कर सकेगा। उसके एक नाटककार मित्रने उसे लिखा था—"नाटक लिखना

भी एक प्रकारका व्यवसाय ही है और इसमें केवल थोड़ेसे अभ्यासकी आवश्यकता है।" तबसे वह नाटक लिखने लगा। धीरे-धीरे उसने अस्सी नाटक और चालीस उपन्यास लिख डाले। शेरिडन भी बाल्यावस्थामें बड़ा ही पाजी और चुलबुला था। पर माताके मरनेके कारण उसका पाजीपन बहुत कुछ कम हो गया और तबसे वह बराबर उन्नति करने लगा। बढ़ते-बढ़ते वह अपने समयका बहुत बड़ा महापुरुष हो गया था।

पाठ्य पुस्तकें पढ़ कर बालक अपने दरजेमें ही सबसे अच्छा रह सकता है। संसारमें सर्व-श्रेष्ठ होनेके लिए कर्मण्यता और अध्यवसायकी आवश्यकता होती है। बाल्य या युवावस्थामें जो सदा किसी प्रकारका बहुत अधिक अध्ययन करता रहता है, वह बहुधा संसारके कामका नहीं रह जाता। इसी लिए हेजलिटने अपने एक निबन्धमें पण्डितों की मूर्खता और विद्वानों-की अज्ञानताका इतना जोरदार और सटीक हाल लिखा है।

बड़े-बड़े योद्धा तो अनपढ़ ही होते हैं; पढ़नेमें उन्हें बड़ी कठिनता होती है और वे बहुतसा समय लगाकर भी बहुत ही थोड़ा पढ़ पाते हैं। एक प्रसिद्ध जर्म्मन जनरलकी माता उसका बाल्यावस्थाका विद्या-वैर देखकर मनाया करती थी कि वह मर जाय तो अच्छा हो। पर वह अपने समयका सर्व-श्रेष्ठ सेनापति हुआ। ड्यूक आफ मार्लबरो भी बाल्यावस्थामें कुछ पढ़ते-लिखते न थे। लेकिन पचास-साठ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने बड़े-बड़े युद्धोंमें कई बार अच्छी विजय पाई थी। क्लाइव बाल्यावस्थामें महल्ले भरके पाजी लड़कोंको साथ लेकर चारों तरफ उपद्रव करता फिरता था। स्कूलवाले उससे हमेशा परेशान रहते थे। इन लोगोंने तथा इन्हींके समान और भी बहुतसे

लोगोंने कभी स्कूलमें कुछ पढ़ा ही नहीं और फिर भी जीवनमें उन्होंने इतने बड़े-बड़े काम किये, जितने बड़े बड़े किताबी कीड़ोंने कभी न किये होंगे।

लार्ड काकबर्नकी तरह बहुतसे बालक ऐसे भी होते हैं जो बुरे शिक्षकोंके हाथमें हो रह कर बुरे हो जाते हैं और जब तक उन दुष्ट शिक्षकोंसे उनका पीछा नहीं छूटता, तब तक उनके गुणों-का विकाश ही नहीं होता। बहुत अधिक मारपीट या जबर-दस्ती भी लड़कोंको बे-तरह बिगाड़ देती है। जार्ज कैबेनिस इसीलिए स्कूलमें कुछ भी न सीख सका था, जिसके कारण वह वहाँसे निकाल दिया गया। जब उसके बापने समझ लिया कि लड़केको पढ़नेका शौक तो है, पर उसके साथ कड़ाई करनेसे काम न चलेगा, तब उसने उसे अपनी इच्छा पर छोड़ दिया। तबसे वह बहुत ही अच्छी तरह आप ही आप पढ़ने लगा और थोड़े ही दिनोंमें अनेक भाषाओं तथा शास्त्रोंका पण्डित हो गया।

कभी-कभी ऐसा होता है कि जिस बालकमें कोई नवीनता उत्पन्न करनेकी प्रतिभा होती है, उसे लोग "मूर्ख" और "गधा" ही कहा करते हैं। इसका कारण यह है कि उसके विशिष्ट गुणोंको विकसित होनेका अवसर ही नहीं मिलता। जर्मनीमें क्लैपराथ नामका एक प्रसिद्ध विद्वान् हो गया है। एक दिन विश्वविद्यालयमें उसके एक परीक्षकने कहा कि "जान पड़ता है कि तुम्हें कुछ भी नहीं आता।" उसने उत्तर दिया—"जी नहीं, मैं चीनी भाषा जानता हूँ" चीनी एक तो यों ही बहुत कठिन भाषा है; दूसरे उस समय एक जर्मन युवकके लिये जर्मनीमें बैठे-बैठे उसका सीखना और भी कठिन काम था। पर नहीं, उसी

अवस्थामें क्लैपराथने घर पर ही चीनी भाषाका बहुत अच्छा अभ्यास कर लिया था। इसके बाद वह अरबी और संस्कृत आदिका भी बहुत अच्छा पण्डित हो गया। सर जोसफ बक्स स्कूलमें एक अक्षर भी न पढ़ते थे। हाँ जंगली फूलोंका उन्हें बचपनमें बहुत ही शौक था और आगे चल कर वे वनस्पति-शास्त्रके बहुत बड़े पण्डित हुए।

इटलीमें जनरल मेनेब्रिया नामके एक प्रधान मन्त्री हो गये हैं। उनकी प्रतिभाका विकाश एक बड़े ही विलक्षण रूपमें हुआ था। एक दिन उनके पिताने उन्हें दण्ड देनेके लिए खाली कमरेमें बन्द कर दिया था। पर बालक मेनेब्रिया बन्द क्यों कर रह सकता था? उसने बैठे-बैठे दीवारमें एक बहुत बड़ा छेद कर डाला और सिरसे पैर तक सुरखी और चूनेसे भरा हुआ वह अपनी माताके पास पहुँच गया। युवावस्थामें उन्हें गणित सीखनेका इतना शौक था कि उसकी कुछ अच्छी पुस्तकें खरीदनेके लिये उन्होंने अपने कपड़े तक बेच डाले और गरमीमें पहनने लायक बहुत ही हलके कपड़ोंसे जाड़ा बिताया। आगे चलकर उन्होंने बड़े-बड़े दुर्गम किलोंको फतह किया था।

बहुतसे ऐसे लोग भी हो गये हैं, जिन्होंने युवावस्थामें तो कुछ भी नहीं किया और प्रौढ़ बल्कि वृद्धावस्थामें बहुत बड़े-बड़े काम किये। जिस तरह कोई पौधा गरमीमें, कोई बरसातमें और कोई जाड़ेमें फूलता है, उसी तरह कोई मनुष्य बाल्यावस्थामें, कोई युवा-वस्थामें और कोई वृद्धावस्था में काम करता है। मनुष्यके बहुतसे गुणोंका विकाश तो केवल अवसर न मिलनेके कारण ही नहीं होता। सीजरने बयालीस वर्षकी अवस्थामें पहले पहल सेना-पतिका पद पाया था और उसके उपरान्त सोलह वर्ष तक उसने

बहुतसी लड़ाइयाँ जीतीं। ओलीवर क्रामवेल चालीस वर्षसे पहले लड़ाईका कुछ भी हाल न जानता था। उसके साथी एडमिरल ब्लकका आरम्भिक आधा जीवन देहातमें ही बीता था। देहात छोड़ने पर भी सेनामें वह साधारण सिपाहीकी जगह भरती हुआ था। पर चौवन वर्षकी अवस्थामें वह एक जंगी बेड़ेका प्रधान बनाया गया था। उसी समय उसने प्रसिद्ध सेनापति वानट्रौम्पको हराया था और उसके कई साथियोंको कई बार परास्त किया था। वाशिंगटनका कार्य्य-काल उसकी अधेड़ अवस्थासे ही आरम्भ हुआ था। डुमरियरने पचास वर्षकी अवस्था तक पहुँचनेके उपरान्त अपनी वीरताका परिचय दिया था। उसकी वीरता देख कर युरोपवाले दंग रह गये थे। आस्ट्रियन जनरल रेडेजकीने तो तिरासी वर्षकी अवस्थामें पहली भारी विजय प्राप्त की थी। सन् १८५७ वाला गदर लार्ड क्लाइबने पैंसठ वर्षकी अवस्थामें शान्त किया था और वे कुछ ही दिनों पहलेसे अपनी कारगुजारी दिखलाने लगे थे। प्रसिद्ध जर्मन सेनापति वान माल्टकेको छासठ वर्षकी अवस्था तक कोई जानता भी न था। सन् १८२८–२९ में रूसियों और तुर्कोंमें जो युद्ध हुआ था, उसका उसने एक इतिहास लिखा था। अँगरेजीमें उसका अनुवाद सन् १८५४ में हुआ था। उस समय एक अँगरेजी समाचार-पत्रने उसका जिक्र करते हुए लिखा था—"वह प्रूशियन सेनाका एक कप्तान था, जो मर गया।" इङ्गलैण्डवालोंको उस समय तक उसके जीने मरनेकी भी खबर न थी! पर सत्तर वर्षकी अवस्थामें सेडानकी विजय प्राप्त करके उसने बहुत कुछ कीर्ति सम्पादित की और तबसे उसकी गणना बड़े-बड़े वीर सेनापतियोंमें होने लगी। जिन सैनिकोंको अब तक अपनी

वीरता दिखलानेका अवसर न मिला हो, उन्हें इन सब बातोंको पढ़ कर मनमें धैर्य्य रखना चाहिए।

कुछ लोग ऐसे भी हो गये हैं, जिन्हें एक काममें तो विफलता हुई और जब वे उसे छोड़ कर दूसरे काममें लगे, तो उन्हें बहुत अधिक सफलता हुई। एडिसन न तो वक्ता हो सका और न नाटककार, पर उसके निबन्धोंके मुकाबलेमें संसारमें कदाचित् ही और किसीके निबन्ध हों। ओटवे नाटक-पात्र नहीं बन सका, पर उसके बनाये कई नाटक बहुत अच्छे हैं। पं० रत्ननाथ सरकार और माईकेल मधुसूदनदत्त वकालत या बैरिस्टरी नहीं कर सके; पर वे उत्तम श्रेणीके लेखक हुए। इसी प्रकार बहुतसे साहित्य-सेवी ऐसे भी हो गये हैं, जिन्होंने बहुत ही वृद्धावस्थामें कीर्ति पाई। डी फोने अपनी सर्व-प्रिय कहानी—"राबिन्संन क्रूसो" अट्ठावन वर्षकी अवस्थामें लिखी थी। रिचर्डसन जिन अच्छे-अच्छे उपन्यासोंके लिये प्रसिद्ध हैं, वे सब उपन्यास उसने पचास वर्षकी अवस्थाके उपरान्त लिखे थे। डा० जान्सनका सर्वोत्तम ग्रन्थ Lives of the Poets (कवियोंके जीवन-चरित्र) पचहत्तर वर्षकी अवस्थामें लिखा गया था। लांगफेलोने अपनी सर्व-श्रेष्ठ कविता सत्तर वर्षकी अवस्थामें बनाई थी। लैमार्क पहले सैनिक था। पर जब एक युद्धमें वह सैनिक सेवाके अयोग्य हो गया, तब चालीस वर्षकी अवस्थामें उसने वनस्पति-शास्त्र पर पहला ग्रन्थ लिखा। पचास वर्षकी अवस्थासे उसने इस सम्बन्धमें व्याख्यान देना आरम्भ किया और पचीस वर्ष तक बराबर व्याख्यान देता रहा।

इस अवसर पर यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि बहुत से महापुरुष ऐसे भी हो गये हैं, जो पहले सेनामें थे। सैनिक

सदा परिश्रमी, आज्ञाकारी और नियमोंके पालन करनेवाले होते हैं और इन सब बातोंसे मनुष्यको अपने भावी जीवनमें उन्नति करनेमें बहुत सहायता मिलती है। चरित्रके संगठनमें भी इन सब बातोंका बहुत कुछ उपयोग होता है और सबसे बढ़कर बात यह है कि सच्ची प्रतिभाके विकाशके लिए चित्तकी जिस एकाग्रताकी आवश्यकता होती है, वह एकाग्रता भी इन्हीं सब बातों से आती है। इसीलिए प्रायः सभी देशोंमें ऐसे अनेक साहित्य-सेवी मिलते हैं, जो किसी समय सैनिक थे। सुकरात, जेनोफन, सीजर, डान्टे, कैलडरन, लोप डी वेगा, डेस्कार्टीस, चॉसर, बेन जूलियस, जान्सन, फिलिप सिडनी, बनियन आदि सभी सैनिक थे।

कुछ ऐसे वृद्ध महापुरुष भी हो गये हैं, जिनमें वृद्धावस्था किसी प्रकारकी क्षीणता या शिथिलता उत्पन्न ही नहीं कर सकी। डिसराइली ने कहा है कि प्रतिभाशाली मनुष्य बूढ़े होना जानते ही नहीं। उनका ज्ञान और धारणा-शक्ति बराबर अन्तिम समय तक ज्योंकी त्यों रहती है। प्लेटोने इक्यासी वर्षकी अवस्थामें लिखते लिखते शरीर त्याग किया था। केटो ने साठ वर्षकी अवस्थामें और किसी किसीके मतसे अस्सी वर्षकी अवस्थामें ग्रीक भाषा सीखी थी। सिसरोने तिरसठ वर्षकी अवस्थामें वृद्धावस्था पर एक बहुत ही उत्तम ग्रन्थ लिखा था। गेलीलियो अठत्तर वर्षकी अवस्था तक बराबर वेध आदि करता था। जान्सनने इकहत्तर वर्षकी अवस्थामें डच और वाटने पचहत्तर वर्षकी अवस्थामें जर्मन भाषा केवल यह जाननेके लिये सीखी थी कि हमारी धारणा-शक्ति कहीं क्षीण तो नहीं हो गई है। पर दोनोंने बहुत ही उत्तमता-पूर्वक वे भाषाएँ सीख लीं और समझ लिया कि हमारी धारणा-

शक्ति ज्योंकी त्यों बनी हुई है। तिरासी वर्ष की अवस्थामें जब गाथे मरने लगा था, तब उसके होश-हवास बिलकुल दुरुस्त थे। एलेक्ज़ेण्डर वान हम्बल्टने मरनेसे एक महीने पहले नब्बे वर्ष की अवस्थामें अपने अन्तिम ग्रन्थ Cosmos की समाप्ति की थी। लियोपोल्ड वान टैन्के इक्यानबे वर्ष की अवस्था तक प्रतिदिन आठ घण्टे काम किया करता था। उसके अन्तिम लेख आदि भी उतने ही उत्तम हैं, जितने कि आरम्भके हैं। स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी प्रायः पचासी वर्षकी अवस्था तक बराबर बहुत कुछ काम किया करते थे। अस्सी वर्ष की वृद्धावस्थामें उन्होंने कलकत्तेकी कांग्रेसका सभापतित्व ग्रहण करके निर्भीकता पूर्वक कह दिया था कि भारतवासियोंका अन्तिम ध्येय "स्वराज्य" ही है। श्रीमती एनीबेसेण्टने लगभग सत्तर वर्षकी अवस्थामें भारतीय स्वराज्य संघकी स्थापना करके उसके सम्बन्धमें बहुत कुछ काम किया। बम्बईके सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर सर रामकृष्ण भाण्डारकर अस्सी वर्षकी अवस्था तक पहुँच जाने पर भी साहित्य और पुरातत्त्व-सम्बन्धी बहुत अधिक कार्य्य करते हैं।

एक लेखकने लिखा है कि चालीस वर्षके बाद दिमागमें कोई नई बात नहीं समा सकती। पर डा० प्रीस्टले चालीस वर्षकी अवस्था तक कुछ भी कैमिस्ट्री न जानते थे। पहले पहल इकतालीस वर्षकी अवस्थामें उन्होंने आक्सीजन गैसका पता लगाया था और तब उसके बाद नाइट्रस, कारबोनिक आक्साइड आदिका। एक विद्वान्ने उनके विषयमें कहा है कि "डा० प्रीस्टलेने सबसे अधिक त्रुटियोंके होते हुए भी कैमिस्ट्रीका

अध्ययन किया, उसमें सबसे श्रेष्ठ स्थान पाया और बहुतसी नई बातोंका पता लगाया।"

ज्योतिषियोंकी आयु तो प्रायः अधिक हुआ करती है। प्रायः सभी बड़े-बड़े ज्योतिषी सत्तर-अस्सी वर्षकी अवस्था तक जीवित रहे और बराबर रात-रात भर नक्षत्रोंका वेध करते रहे हैं। डीलैम्बरेने कई भागों में गणित ज्योतिषका इतिहास लिखा था। जब एक आदमीने उससे कहा कि पहले भागमें अनेक बातें ऐसी हैं, जो अगले भागों से नहीं मिलती और प्रायः विरुद्ध पड़ती हैं, तब उसने उत्तर दिया था--"मैंने तिरसठ वर्षकी अवस्थामें उसे लिखना आरम्भ किया था और अब मैं बहत्तर वर्षका हूँ। यदि मैं इस आसरेमें रहूँ कि सब बातोंका ठीक-ठीक ज्ञान हो जाने पर किताब का छपना आरम्भ हो, तो किताब तैयार ही न हो सके।"

बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों और न्यायाधीशोंकी अवस्था भी बहुत अधिक हुई है। सच तो यह है कि जीवनका महत्त्व समझ कर उसे जितना अधिक श्रेष्ठ बनाया जाय, वह उतना ही अधिक रक्षित रहता है। निकम्मे आदमी जल्दी मर जाते हैं और काम-काजी आदमी अधिक समय तक जीवित रहते हैं। बल्कि स्वर्गीय मि० गोखलेकी मृत्युके समय मराठी केसरीके एक लेखमें तो यहाँ तक निकला था कि महापुरुषोंमें एक ऐसी शक्ति होती है, जिसके द्वारा वे किसी विशिष्ट उद्देश्यकी पूर्ति तक अपना जीवन बनाये रखते हैं और इसी लिये इतनी भीषण बीमारी में भी मि० गोखले इतने दिनों तक जीवित रहे।

स्वास्थ्यके लिये यह बात बहुत ही आवश्यक है कि सभी शक्तियोंका बराबर उपयोग किया जाय। यह सिद्धान्त वृद्धोंके लिये भी है और युवकोंके लिये भी। कुछ काम न करनेसे हाथ-पैर,

हृदय मस्तिष्क आदि सभी अंग छीजने लगते हैं और मानसिक शक्तियों का जल्दी-जल्दी नाश होने लगता है। शारीर-शास्त्रके एक बहुत बड़े विद्वान का मत है कि "यह कहना ठीक नहीं है कि जिस समय जीवन-शक्तिका ह्रास होने लगता है, उसी समयसे धारणा-शक्तिका भी ह्रास होने लगता है। वृद्धावस्थाके पूर्वार्द्धमें तो धारणा-शक्ति और भी प्रबल हो जाती है। अतः कोई ऐसा समय निश्चित करना असम्भव है, जब कि ज्ञान-शक्तिका ह्रास होता हो।"

लाइण्डहर्स्टने ठीक नब्बे वर्षकी अवस्थामें हाउस आफ लार्ड्समें एक बड़ी ही सुन्दर और योग्यता-पूर्ण वक्तृता दी थी। पामर्स्टन जितने अधिक दिनों तक इंगलैण्डका प्रधान मंत्री रहा, उतने अधिक दिनों तक लार्ड लिवरपूलको छोड़ कर और कोई नहीं रहा। पर तो भी पामर्स्टन सदा बहुत ही योग्यता-पूर्वक प्रधानमंत्रीका काम करते रहे और इक्यासी वर्षकी अवस्थामें मरे। मरनेके समय तक वे प्रधान मंत्री ही थे। सर एडवर्ड कोक अस्सी वर्षकी अवस्थामें घोड़े परसे गिरनेके उपरान्त साल भर तक जीते रहे और इस बीचमें उन्होंने कई कानूनी किताबें तैयार कीं। लिफ्राय नब्बे वर्ष की अवस्था तक आयरिश बेंचके लार्ड चीफ जस्टिस थे। इस पर अखबारों तथा हाउस आफ लार्ड्समें कई बार आपत्ति भी हुई थी। पर उस समय तक भी उनके फैसले बराबर अच्छे ही होते थे। इसीलिये एक बार स्वर्गीय लार्डचेम्सफर्डने हाउस आफ लार्ड्समें कहा था कि मानसिक शक्तिके विकाशके आरम्भ और अन्तके लिये कभी यह न समझना चाहिए कि वह बहुत देरमें हुआ है। अर्थात्

बहुत ही वृद्धावस्थामें भी उसका विकाश हो सकता है और बहुत ही वृद्धावस्था तक वह बनी भी रह सकती है।

काम करनेसे ही प्रसन्नता होती है, निकम्मे रहनेसे नहीं। लोहेको जितना जंग नहीं खाता, उतना आदमी को निकम्मा रहना खा जाता है। निकम्मे रहनेसे जीवन-शक्तिका ह्रास और नाश होता है। निकम्मे आदमीके लिये कोई आधार नहीं रह जाता और इसीलिये उसका अस्तित्व भी मिट जाता है। जो मनुष्य कुछ पढ़ता-लिखता, सोचता-विचारता या करता धरता न हो, उसका जीवन बुरी तरह नष्ट होता है। काम न करनेवाला आदमी बहुत ही बुरा होता है। विशेषतः वृद्धावस्थामें तो कामकी और भी अधिक आवश्यकता होती है। जिस प्रकार फूलोंकी सबसे अच्छी पँखड़ियाँ वही होती हैं, जो सबके अन्तमें खिलती हैं, उसी प्रकार मनुष्यके सबसे अच्छे कार्य्य वही होते हैं, जो वह अन्तिम अवस्थामें करता है।

इस सम्बन्धमें लोगोंको जेम्स वाटको अपना आदर्श बनाना चाहिए। युवावस्थामें जब कि वह तरह-तरहके आविष्कार किया करता था, प्राय; रोगी रहता था। अपने रोगोंसे वह यहाँ तक दुखी था कि एक बार अपने प्राण तक देनेके लिये तैयार हो गया था। पर प्रौढ़ावस्थामें उसके रोग कम हो गये और उसकी वृद्धावस्था बहुत अच्छी तरह कटी। वह खूब किताबें पढ़ता, अच्छे अच्छे सिद्धान्त स्थिर करता और तरह-तरह के नये आविष्कार करता था। बयासी वर्षकी अवस्थामें वह सर वाल्टर स्काट और लार्ड जेफ्रे आदि से मिला था। दोनोंने उसकी आनन्द-पूर्ण वृत्ति और बहुज्ञताकी बहुत ही प्रशंसा की थी। जो विषय छिड़ता, उसीमें वह अपने पाण्डित्य और पूर्ण

ज्ञानका परिचय देता था। तिरासी वर्षकी अवस्थामें वह तरह तरहके फोटो बना कर अपने मित्रोंको दिया करता था। उसे बहुत अधिक विषयोंका बहुत अधिक ज्ञान था। वह बहुत ही असाधारण मनुष्य था। वह किसीको दिखलानेके लिये नहीं, बल्कि ज्ञान और विद्याके प्रति अपने अनुरागके कारण सदा बहुत ही शान्ति-पूर्वक काम किया करता था। उसके तथा उसके समान अन्य महापुरुषोंके जीवन-क्रमसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि यदि हम सदा शुद्धता-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करें और सत्यता-पूर्वक अपने कर्त्तव्योंका पालन करते रहें, तो हमारी वृद्धावस्था बड़ी ही प्रसन्नता और सुखसे कटेगी और हमें स्थायी शान्ति मिलेगी।

पाँचवाँ प्रकरण।

गुण और प्रतिभाका वंशानुक्रमण।

जिस प्रकार मनुष्योंकी किसी एक जातिमें एक ही तरहके मनुष्य उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार माता-पिताके आगे भी उन्हींकी तरहकी सन्तान उत्पन्न होती है। आजसे हजारों वर्ष पहले भारत, चीन, जापान और अरब आदि देशोंके निवासी जैसे थे, वैसे ही वे आज भी हैं। युरोपकी जर्मन गॉल, आयरिश और वेल्श आदि जातियोंकी भी वही दशा है। यद्यपि वर्ण-संकरताके कारण जातियोंमें अन्तर पड़ा जाता है, तो भी वह अन्तर उतना अधिक नहीं होता; उनके मूलगुण बहुतसे अंशोंमें प्रायः वैसे ही बने रहते हैं।

यही बात परिवारों और कुलोंकी भी है। बालकों और बालिकाओंका शारीरिक संगठन, स्वभाव और आचार-विचार आदि प्रायः उनके माता-पिताकी उन बातोंके अनुरूप ही होता है। यदि वर्ण-संकरता न हो, तो अवश्य ही उनमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं पड़ता, बालक प्रायः पिता पर और बालिका प्रायः अपनी माता पर पड़ती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सन्तानमें कुछ विलक्षणताएँ तो माता-पिताकी अपेक्षा कम हो जाती हैं और कुछ बढ़ जाती हैं। परिवारों और कुलोंमें सम्भव है कि यह अन्तर कुछ शीघ्र बढ़ जाय; पर समाजमें उतनी शीघ्रता-पूर्वक अन्तर नहीं होता और इस प्रकार प्रत्येक जातिके विशिष्ट-गुण प्रायः ज्योंके त्यों बने रहते हैं!

कभी-कभी परिवारोंमें कुछ विशिष्ट-गुण कई-कई पीढ़ियों तक बने रहते हैं। कभी-कभी वे गुण या विशेषताएँ लड़के या लड़कीमें नहीं पाई जातीं और पोते या पोतीमें फिर आ जाती हैं। युरोपके एक प्रतिष्ठित कुलमें, प्रायः डेढ़, दो-सौ वर्ष हुए अनाचारके कारण इण्डियन रक्त मिल गया था। तबसे उस कुलमें कभी-कभी एकाध काला लड़का या लड़की उत्पन्न हो जाती है; हाँ, शेष परिवार गोरा ही रहता है। आप किसी प्रतिष्ठित और सम्पन्न परिवारमें चले जाइए और उसकी कुछ पीढ़ियोंके चित्र देखिए; उन सबमें आपको प्रायः एक विशेष प्रकारकी समानता मिलेगी। लखनऊके कई नवाबोंके चित्रोंके देखनेसे भी इस कथनकी पुष्टि हो जायगी।

कभी-कभी यहाँ तक देखा जाता है कि यह समानता बिलकुल अन्त समयमें प्रकट होती है। सर थामस ब्रडनने एक ऐसे मृतप्राय मनुष्यको देखा था, जिसका चेहरा ठीक मरनेके समय बिलकुल उसके चचाके चेहरेके समान हो गया था। अँगरेजीके कई अच्छे-अच्छे कवियों और लेखकोंने भी इसी प्रकार मरनेके समय उत्पन्न होनेवाली समानताका वर्णन किया है। सूदेने एक ऐसे भाई-बहिनको देखा था, जिनकी आकृति आदिमें जीवन-भर आकाश-पातालका अन्तर था; पर वृद्धावस्थामें उन दोनोंकी आकृति आदिमें इतनी समानता हो गई थी कि मानों वे दोनों एक साथ उत्पन्न हुए हों। स्वयं अपने विषयमें सूदेने उतरती उमरमें लिखा था कि जब मैं शीशा देखता हूँ, तब मुझे अपने चेहरेमें अपने पिता के चेहरेकी कुछ रेखाएँ दिखाई पड़ती हैं। चेहरे और हाथ-पैरकी बनावट तथा बालोंका रंग आदि बराबर कई पीढ़ियों तक चलता है। सर वाल्टर स्काटने अपने एक उपन्यास

के एक नायकके सम्बन्धमें लिखा है कि उसकी भौंहके पास घोड़े की नालके आकारका एक चिन्ह था और वैसा ही चिन्ह लड़केकी भौंहके पास भी था। डार्विन साहबने अपनी Origin of Species नामक पुस्तकमें तो यहाँ तक लिखा है कि आकृति की विलक्षणताएँ नष्ट हो जाने पर सैकड़ों पीढ़ियोंके बाद भी दिखाई पड़ती हैं। विलक्षणताको धारण करनेका प्रयत्न प्रत्येक पीढ़ी करती है और किसी अज्ञात अनुकूल कारणसे किसी पीढ़ी-को उसमें सफलता भी हो जाती है।

जिस प्रकार शारीरिक विशेषताएँ कई-कई पीढ़ियों तक चलती हैं, उसी प्रकार नैतिक विशेषताएँ भी अनेक पीढ़ियों तक देखी जाती हैं। बहुतसे परिवार ही ऐसे होते हैं, जिनके सब आदमी बड़े बकवादी होते हैं और बहुतसे परिवार ऐसे भी होते हैं, जिनके लोग बहुत ही शान्त होते और बहुत कम बोलते हैं। यही दशा मानसिक गुणोंकी भी है। नैतिक और मान-सिक सभी गुण वंशानुक्रमिक होते हैं, यह बात दूसरी है कि किसी विशेष कारण-वश वे गुण कुछ पीढ़ियोंमें लुप्त हो जायँ। बहुतसे प्राचीन कुल ऐसे हैं, जिनमें बीच-बीचमें प्राचीन विशेषता प्रकट हो जाती है। भारतवर्षमें इसके सम्बन्धके प्रमाण बहुत ही सहजमें मिल सकते हैं। कर्म्मनिष्ठ और कुलीन ब्राह्मण-कुलोंमें बहुधा कर्म्मनिष्ठ विद्वान् और सुयोग्य ब्राह्मण ही होते हैं। वीर क्षत्रिय-कुलोंकी वीरताका नाश हजारों वर्षोंमें भी नहीं हुआ है। वैश्य-वर्ग वाणिज्यके लिये अधिक उपयुक्त पाया जाता है; उससे वीरताकी आशा करना प्रायः निष्फल ही होगा। निकृष्ट सेवाके लिये शूद्र ही सदा तैयार और साथ ही उपयुक्त होगा। उक्त

तीनों वर्णोंमेंसे किसी वर्णके आदमीसे आप कभी वैसी सेवाकी आशा नहीं कर सकते।

राजनीतिज्ञता, देश-हितैषिता और विद्वत्ता आदिमें भी पारिवारिक गुण कभी नष्ट नहीं होते। यही कारण है कि सदा और सब अवसरों पर शुद्ध और श्रेष्ठकुलके लोगोंका ही अधिक आदर होता है और इसीलिये उसकी रक्षाके लिये भी लोग इतना प्रयत्न करते हुए देखे जाते हैं। बाप्पा रावलके वंशजोंमेंसे अधिकांश बड़े ही वीर, पराक्रमी, तेजस्वी, उच्चाकांक्षी और लड़ाके ही हुए। सर सालार जंगकी चार-पाँच पीढ़ियों तकके लोग बराबर हैदराबादके प्रधान मंत्री ही होते गये। अन्य देशी रियासतोंमें भी बहुधा एक ही कुलके लोग दीवान होते और बहुत ही योग्यता-पूर्वक अपना काम करते हुए देखे गये हैं। चन्द वरदायीके वंशज भी बराबर कवि ही होते गये। यही कारण था कि प्राचीन आर्योंने अपनी जातियों तथा अन्तर जातियोंको शुद्ध और गुणी रखनेके लिये इतने दृढ़ प्रतिबन्ध किये थे और इस कार्य्यमें उन्हें बहुतसे अंशोंमें सफलता भी हुई।

पर कभी-कभी यह भी होता है कि किसी बहुत ही अप्रसिद्ध और छोटे कुलमें भी बहुत बड़े लोग उत्पन्न हो जाते हैं। एक अवसर पर जब फ्रान्सके कुछ बड़े-बड़े रईस अपनी कुलीनता और पूर्व-पुरुषोंके सम्बन्धमें बड़ी-बड़ी डींगें हाँक रहे थे उस समय मारशल जुलोटने कहा था—"मैं तो स्वयं अपना पूर्व-पुरुष हूँ।" और भी अनेक महापुरुषोंके सम्बन्धमें यही बात कही जा सकती है। वे स्वयं ही अपने पूर्व-पुरुष होते हैं। ऐसे ही महापुरुष कुछ दिनोंके बाद अपने कुलके मूल-पुरुष माने जाते हैं। नेपोलियन कहा करता था कि मैं मिट्टीमेंसे अपने लिये सेनापति निकालता

हूँ। स्वयं नेपोलियन भी अवश्य ही कुलीन था, उसका कुल किसी बातके लिये विशेष-रूपसे प्रसिद्ध नहीं था। इसी प्रकार बहुतसे वीर, राजनीतिज्ञ और कवि आदि भी ऐसे हो गये हैं, जो अपने पूर्व-पुरुष आप ही थे--जिनके कुलमें पहले उनके समान और कोई नहीं हुआ था। बहुत ही साधारण कुलमें भी कभी-कभी प्रतिभा एकबार बिजलीकी तरह चमकती हुई दिखाई देती है। उस कुलमें अचानक एक ऐसा आदमी पैदा हो जाता है, जिसके नामका डंका सारे संसारमें बज जाता है और जिसे लोग सैकड़ों-हजारों वर्षों तक याद रखते हैं। पर ऐसा मनुष्य अपने कुलमें एक ही होता है; उसके मरते ही सारी विभूति नष्ट हो जाती है और वह कुल पहले की तरह ज्योंका त्यों रह जाता है।

व्यक्ति-गत विशेष गुण तो बापसे बेटेमें चले जाते हैं, पर प्रतिभाका ऐसा अवतरण नहीं होता। विशेषता कुल-गत गुण है और प्रतिभा व्यक्ति-गत। तुलसी और सूर आदि अपने-अपने कुलमें एक ही हुए थे। बीरबल और टोडरमलके कुलमें दूसरा बीबबल या टोडरमल नहीं हुआ। शिवाजीके कुलमें कोई ऐसा है, जिससे उनके चरणोंकी भी समता की जा सके?

ऐसे अलौकिक गुणोंवाले महात्मा किसी विशिष्ट जाति अथवा वर्गमें नहीं होते; बल्कि सभी जातियों और वर्गों में हो सकते हैं। वे बड़े-बड़े प्रासादोंमें भी जन्म ले सकते हैं और छोटी-सी टूटी-फूटी झोंपड़ीमें भी। इसीलिये श्रेष्ठ-कुलोंमें भी बड़े-बड़े महात्मा उत्पन्न हुए हैं और छोटे तथा नीच कुलोंमें भी। प्रतिभाशाली मनुष्योंके विषयमें तो सदा यही माना जायगा। हाँ, नैतिक तथा मानसिक गुण अवश्य कुल-गत होते हैं। अधिकांश बड़े-बड़े योद्धा और वीर प्रायः शासक और राजवर्गमें ही मिलेंगे।

पृथ्वीराज चौहान, महाराणा प्रतापसिंह, महाराणा संग्रामसिंह आदि-आदि इसके उदाहरण हैं। कवि प्रायः मध्यम श्रेणीके लोगोंमें ही जन्म लेते हैं। तुलसी, केशव, पद्माकर, बिहारी, देव आदि इसके प्रमाण हैं। बड़े-बड़े वैज्ञानिक तथा आविष्कर्त्ता भी मध्यम और विशेषतः श्रमजीवी वर्गमें ही होते हैं। प्रचीन कालमें कुछ विशिष्ट वर्गों और कुलोंके लोग ही शासन आदि विभागोंमें रखे जाते थे। पर जबसे नई सभ्यता फैली और धन तथा ज्ञानकी वृद्धि हुई, तबसे सभी वर्गों और जातियोंके लोग उसमें लिये जाने लगे हैं। और तभीसे मध्यम श्रेणीके लोगोंमें से भी बहुतसे लोग अच्छे शासक, योद्धा और न्यायाधीश होने लगे हैं। पहले बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ और राज्य-संचालक वे ही लोग होते थे, जिनके पूर्वज भारी जमींदार या रईस और उपाधि-धारी होते थे, अथवा जिनके पास फौजें या किले होते थे। अथवा ऐसे नीच और पतित लोग होते थे, जिनकी चापलूसी आदिसे प्रसन्न होकर राजा-महाराजा जिन्हें राज्यमें ऊँचे-ऊँचे पद दे दिया करते थे। पर अब सुशिक्षित, सुयोग्य और सुजन ही राज्योंमें ऊँचे-ऊँचे ओहदों पर पहुँचते हैं।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि मनुष्योंमें स्वभाव और गुण आदि वंशानुक्रमिक होते हैं। कद, शरीरका संगठन, आकृति, बल और अल्प अथवा दीर्घ आयु सभी वंशानुक्रमिक है। डार्विनका मत है कि दीर्घ आयु भी वंशानुक्रमिक है। उसने यह भी कहा है कि वर्णान्धताका रोग पाँच-पाँच पीढ़ियों तक चलता हुआ देखा गया है। हाफेकरने तो यहाँ तक कहा है कि हस्त-लिपि भी वंशानुक्रमिक होती है और रोगोंका तो कुछ पूछना ही नहीं है। वंशानुक्रमिक रोगोंकी तो गिन्ती ही नहीं हो सकती।

कण्ठमाला, क्षयी, पागलपन, गठिया आदि अनेक रोग वंशानुक्रमिक है। क्षयीवाले अस्पतालके एक डाक्टरका मत है कि क्षयी रोग पितासे पुत्रको और मातासे कन्याको होता है। गठियाका रोग माता या पितासे पुत्र या कन्याको होता है। यदि यह रोग किसी दरिद्रको हो, तो फिर उसकी पूरी खराबी होती है।

दरिद्रता और भिखमंगी भी पुश्तहा पुश्त तक चलती है। माता-पिताके दुर्गुण और दोष भी तीन-तीन और चार-चार पुश्त तक चलते हैं। यह एक ऐसी बात ऐसी है, जिसके कारण प्रत्येक मनुष्यको, यदि स्वयं अपने लिये नहीं, तो कमसे कम अपने परम प्रिय बाल-बच्चोंके लिये ही सही, दुर्गुणों और दुष्कर्मोंसे अवश्य बचना चाहिए और सदा बाल-बच्चोंके सामने उत्तम आदर्श उपस्थित करना चाहिए। काम-काजी आदमियोंसे काम-काजी आदमी और दुष्टों, पाजियों तथा अपराधियोंसे दुष्ट, पाजी और अपराधी ही उत्पन्न होते हैं। एक बार एक दुष्ट लड़केने अपने बूढ़े बापको मार-पीट कर सड़क पर घसीटना आरम्भ किया। बूढ़ेने चिल्ला कर कहा—"बस करो! वस करो! मैं अपने बापको इसी पेड़ तक घसीट कर लाया करता था।" इस प्रकारके पैतृक दोषों और बुराइयोंसे बचनेका सबसे अच्छा उपाय यही है कि मनुष्य यथासाध्य अपने आपको वशमें रखे और सब काम विवेक-पूर्वक करे। डा० बालने एक बार हाउस आफ कामन्समें कहा था कि आयर्लैण्डके एक ही जिलेमें कई शताब्दियों तक हत्याएँ होती रहीं। ब्रजके अधिकांश चौबे बड़े ही मसखरे हुआ करते हैं। भोजपुरियोंके समान उजड्ड और प्रान्तोंमें बहुत ही कम मिलेंगे। बुन्देलखण्डके साधारण निवासी भी प्रायः अच्छे कवि होते हैं। यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी अच्छी कविता करती हैं।

मैनपुरी जिलेके भौगाँव नामक गाँवकी मूर्खता बहुत प्रसिद्ध है। बाँकीपुर जिलेके नेउरा ग्रामके अधिक शिक्षित बड़े-बड़े बैरिस्टर और हाईकोर्टके जज ही होते हैं। लखनऊ जिलेके काकोरी और बिलग्राम गाँवके लोग बड़े विद्वान् होते हैं।

शिल्प और कला-कुशलता भी पैतृक ही होती है। एक सुनारका लड़का जितने अच्छे गहने बनावेगा, उतने अच्छे गहने किसी खेतिहरका लड़का न बना सकेगा। उसकी योग्यता मानों स्वाभाविक होती है। सुनारीका काम उसके यहाँ कई पुश्तोंसे होता है, इसीलिये वह सुनारीकी शिक्षाके लिये भी अधिक उपयुक्त होता है। भारतमें तो खैर हर एक पेशेवालेकी इसीलिये एक जाति ही बन गई है; पर जिन पाश्चात्य आदि देशोंमें पेशेवरोंकी इस प्रकारकी जातियाँ नहीं हैं, उनमें भी कोई वंश केवल नक्काशीके लिए और कोई चित्रकारीके लिये प्रसिद्ध होता है। उन वंशोंमें गुणी पितासे गुणी पुत्र उत्पन्न होता है। गुणोंका पैतृक होना बिलकुल स्वाभाविक है। नागफनी पर जन्मभर गुलाब-जल छिड़कते रहिए, वह सदा नागफनी ही रहेगी और छोहाड़ेके पेड़को किसी ऊसर मैदानमें लगा दीजिए और उसमें एक बूंद भी पानी न दीजिए, तो भी समय पर वह खूब फलेगा। एक विद्वान्ने यहाँ तक कहा है कि गुणोंके पैतृक होनेमें कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है; आश्चर्य्य तभी है जब कि गुण पैतृक न हों। पर इसमें सन्देह नहीं कि पीढ़ियोंमें आचारकी उतनी समानता नहीं दिखाई देती, जितनी आकृति आदिकी दिखाई देती है। इसका मुख्य कारण यह है कि आचार, बहुतसे अंशोंमें परिस्थिति, शिक्षा और कठिनाइयों आदि पर अवलम्बित रहता है।

पर तो भी इसमें सन्देह नहीं कि उच्च और श्रेष्ठ कुलमें जन्म होना बहुत ही अच्छा है ; क्योंकि नैतिक और मानसिक गुण रक्त में मिले होते हैं। एक विद्वान्ने कहा है कि एक कुलीन मनुष्य बीस ही वर्षकी अवस्थामें जितना प्रतिष्ठित हो सकता है, साधारण मनुष्य चालीस वर्षकी अवस्थामें भी उतना प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। पर श्रेष्ठ कुलमें जन्म लेना तो किसीके अधिकारमें है ही नहीं; हाँ, यदि वह चाहे तो स्वयं कुछ नैतिक और मानसिक गुण प्राप्त कर सकता है और साधारण कुलोंमें उत्पन्न बहुतसे मनुष्य इस प्रकार अच्छी उन्नति करते हुए देखे गये हैं।

नैतिक विषयोंमें तो नहीं, पर हाँ मानसिक और शारीरिक बातोंकी उन्नतिमें वर्ण-संकरतासे भी बहुत कुछ सहायता मिलती है। वर्ण-संकरोंमें पराक्रम और दृढ़ता भी खूब होती है। युरोपमें चार्ल्स मारटेल नामका एक प्रसिद्ध व्यक्ति हो गया है, जिसने बहुत ही वीरता-पूर्वक मुसलमानोंका मुकाबला करके युरोपमें उनके धर्म्मका प्रचार रोका था। यदि मारटेल न होता तो, आज युरोपवाले ईसाई नहीं, बल्कि मुसलमान दिखाई देते। वह मार-टेल दोगला ही था। प्रसिद्ध वीर विजयी विलीयम (William the Confuerer) रखनीका लड़का था। इंगलैण्डमें कई राजाओंकी रखनियोंके लड़के बहुत बहादुर और मशहूर हुए हैं। युरोपमें अनेक ऐसे बड़े-बड़े विद्वान्, वैज्ञानिक और दार्शनिक हो गये हैं, जो दोगले थे।

यद्यपि कभी-कभी किसी नीचकुलमें अचानक कोई प्रतिभा-शाली मनुष्य निकल आता है, पर साधारणतः उच्च कुलवालोंमें ही अधिक योग्यता देखी जाती है। अब प्रश्न यह है कि बालक में अधिकांश नैतिक और मानसिक गुण मातासे आते हैं, या

पितासे। प्रायः यही कहा जाता है कि बालककी योग्यता उसकी माता पर निर्भर होती है। एक विद्वान्‌ने कहा है-"मर्द सदा वैसे ही बनेंगे, जैसे औरतें उन्हें बनाना चाहेंगी। अगर तुम मर्दों को बड़ा और नेक बनाना चाहते हो, तो औरतोंके मनमें बड़प्पन और नेकी नक्श करा दो।" नेपोलियन तथा अन्यान्य बड़े बड़े आदमियोंका भी यही सिद्धान्त रहा है। स्वयं नेपोलियन अपने सारे गुणोंको अपनी माताका ही प्रसाद बतलाता था और वह अपनी माताका बहुत बड़ा आज्ञाकारी था। आज्ञाकारिताका गुण भी उसने मातासे ही सीखा था और यही कारण था कि नेपोलियनने इतना महत्व प्राप्त किया था। औरों पर तो उसका महत्त्व मानों ऊपरसे फट पड़ा था। नेपोलियनके बड़े भाई जोसफमें यह बात नहीं थी और नेपोलियन सदा उसकी नालायकी की शिकायत किया करता था। लार्ड नेलसन स्वयं बहुत ही वीर और सज्जन था और केवल उसीके कारण उसका एक दुराचारी भाई अर्ल बना दिया गया था।

सबसे बढ़कर बात तो यह है कि बालककी कोमल प्रकृति पर सबसे अधिक प्रभाव परिस्थिति और संगतिका पड़ता है और इन्हीं बातों पर उनका बनना बिगड़ना निर्भर है। इसके अतिरिक्त यह भी मानना पड़ेगा कि उसके कुछ गुण जन्म-सिद्ध भी होते हैं जो सहजमें परिवर्त्तित या नष्ट नहीं किये जा सकते। बाल्यावस्थामें जब कि उसकी शिक्षा आप ही आप होती रहती है, वह प्रायः अपनी माताके ही अधीन होता है। इसीलिये माताकी ही अधिकाँश बातें उसमें आती हैं। पुरुष तो बड़े होकर कीर्त्ति प्राप्त करते हैं और बड़े नामवर होते हैं। पर जो माताएँ उन पुरुषोंको कीर्त्ति प्राप्त करनेके योग्य बनाती हैं, उनका उपकार

कोई नहीं मानता। बड़े-बड़े योद्धा, बड़े-बड़े कवि और बड़े-बड़े धनवान् प्रायः अपनी माताहीकी कृपासे बड़े बने हैं।

नेपोलियन और क्रामवेलकी तरह छत्रपति महाराज शिवाजी-में भी अधिकांश गुण उनकी पूजनीया माता जिजाबाईसे ही आये थे। जिजाबाईने ही उनमें दृढ़ता, वीरता, स्वदेश-प्रेम और कर्त्तव्य-परायणता आदि गुण बाल्यावस्थामें कूट-कूटकर भरे थे। राजनीति, शासन और सैन्य-परिचालन आदिकी शिक्षा भी उन्हें जिजाबाईसे ही मिली थी। प्रसिद्ध वीर आल्हा और ऊदलने अपने सारे गुण अपनी माता देवलदेवीसे ही प्राप्त किये थे। बाल्यावस्थामें वही उन्हें पहाड़ों पर घुमाती थी, वही उनसे नाले लंघवाती थी और वही उन्हें पटा, बाँक, तलवार, भाला आदि चलाना सिखाती थी।

बड़े-बड़े आधुनिक युरोपियन कवियों और साहित्य-सेवियोंको भी अपनी-अपनी मातासे ही अधिकांश शिक्षा मिली थी। वाल्टर स्काटकी माता एक प्रोफेसरकी लड़की थी और उसे विद्यासे बहुत ही प्रेम था। वह पूर्ण विदुषी थी। ग्रे और काउपरमें उनकी माताने ही काव्य-प्रेम उत्पन्न किया था। सूदेकी माता बड़े ही मृदुल स्वभावकी और समझदार थी। डा० मूरकी माता भी एक प्रोफेसरकी लड़की और बड़ी ही विदुषी थी। लार्ड चीफ जस्टिस मैन्सफील्ड, लार्ड चैन्सलर अर्स्टकिन और ड्यूक आफ वेलिंगटनमें भी सब गुण अपनी-अपनी माताके ही थे। लार्ड ब्रूहमके पिता बहुत ही साधारण मनुष्य थे; पर उनकी माता बहुत ही योग्य और बुद्धिमती थी। बाइरन कविको सारी शिक्षा मातासे ही मिली थी। उसका बाप कुछ भी न था। बाल्या-

वस्थामें उसे माताने ही सब कुछ पढ़ाया-लिखाया था और उसमें विद्यानुराग उत्पन्न किया था।

इस अवसर पर यह बात ध्यान रखने योग्य है कि पिता चाहे कैसा ही अयोग्य और वाहियात क्यों न हो, पर यदि माता सुयोग्य होगी, तो वह अपनी मृदुलता और वत्सलता आदि गुणोंके प्रभावसे बालकको अवश्य सुयोग्य, गुणी और विद्वान् बना देगी। पर यदि माताका आचरण निकृष्ट होगा, तो पिताके सद्‌गुण आदि प्रायः निरर्थक ही प्रमाणित होंगे। ऐसे बहुत ही कम बालक अच्छे निकलते हैं, जिनके पिता योग्य और माता अयोग्य हों। अच्छी माताओंके प्रभावकी पूर्ति न तो शिक्षासे हो सकती है, न धनसे और न परिस्थिति आदिसे। सब प्रकारके विचारों और सिद्धान्तों आदिका उद्‌गम घर ही है और संसारके नैतिक सुधारकी बागडोर सदा माताके ही हाथमें रहती है।

यदि माता और पिता दोनों ही योग्य हों, तो फिर पूछना ही क्या है—फिर तो सोनेमें मानों सुगन्ध मिल जाती है। ऐसे आदमियोंको बहुत ही भाग्यवान् समझना चाहिए। लार्ड बेथनके पिता सर निकोलस बेकन एक बहुत बड़े राज-कर्म्मचारी, सुशिक्षित, सदाचारी और राजनीतिज्ञ थे और उनकी माता ग्रीक तथा लैटिन आदि भाषाओंकी अच्छी जानकार थी। उन्होंने कई ग्रन्थोंके अनुवाद भी किये थे। उनकी शेष तीनों बहिनें भी बहुत ही योग्य और अनेक भाषाओंकी अच्छी पण्डिता थीं। महात्मा लूथरकी माता बड़ीही गुणवती और पतिव्रता थी और उनके पिता भी बड़े ही ईमानदार और दृढ़-प्रतिज्ञ थे। गाथेके माता-पिता भी बहुत ही योग्य थे और उसने उन दोनोंके कुछ न कुछ गुण ग्रहण किये थे। विशेषतः उसकी माता बहुत ही समझदार और योग्य

थी। गाथेके एक भक्तने एक बार उसकी मातासे बहुत देर तक वार्त्तालाप करनेके उपरान्त कहा था–"अब मैं समझ गया कि गाथे कैसे इस दरजे तक पहुँचा है।"

यद्यपि अनेक ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमें सुयोग्य पुरुषोंके माता-पिता बहुत सुयोग्य थे और जिन्होंने दोनोंसे गुण प्राप्त किये थे; पर ऐसे उदाहरण और भी अधिक मिलेंगे जिनमें गुणोंकी प्राप्ति केवल पिताहीसे हुई हो। "पिता पर पूत" वाली कहावत बहुत ही पुरानी है। पुरुषोंमें आकृति और गुण शताब्दियों तक चले चलते हैं। पहले लार्ड शेफ्ट्सबरीकी आकृति आदिसे उनकी सातवीं पुश्तके लार्ड शेफ्ट्सबरीकी आकृति बिलकुल ही मिलती थी। राजपूतानेके अनेक राजवंशों-के कई-कई पीढ़ियोंके चित्र देखनेसे भी इस मतकी पुष्टि होती है।

जो बात आकृति आदिके लिये है, वही गुणोंके लिये भी है। गवैये-कुलोंमें प्रायः सभी अच्छे गवैये होते हैं और चित्रकार कुलोंमें सभी अच्छे चित्रकार निकलते हैं। कवियोंके घरमें कवि उत्पन्न होते हैं और राजनीतिज्ञोंके घरमें राजनीतिज्ञ जन्म लेते हैं। वीरोंके घरमें तो वीरोंकी उत्पत्तिके असंख्य उदाहरण मिलेंगे। भारतमें अनेक ऐसे वीर-कुल प्रसिद्ध हैं, जिनमें पचासों पीढ़ियों तक सब लोग वीर और योद्धा ही हुए हैं। इस देशके लोगोंके मनमें तो गुणों आदिके वंशानुक्रमणका सिद्धान्त इतनी दृढ़तासे जमा हुआ है कि इसके सम्बन्धमें किसी प्रकारके उदा-हरण या प्रमाण आदि देनेकी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती। यहाँ तो इसी सिद्धान्तके आधार पर अलग-अलग जातियोंका ही संगठन कर दिया गया है, जिसमें शिल्प और कला आदिकी निरन्तर उन्नति ही होती जाय। पर पाश्चात्य देशोंमें भी जहाँ

इस प्रकार पेशेवरोंकी अलग जातियाँ नहीं है, अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनसे गुणोंके वंशानुक्रमणवाले सिद्धान्तका पूरा पूरा समर्थन होता है। विलायतमें कई ऐसे कुल हैं, जिनमें सभी लोग बराबर गवैये, कवि, राजनीतिज्ञ, शासक, साहित्य-सेवी, वकील-बैरिस्टर, इतिहासज्ञ, दार्शनिक, विज्ञान-वेत्ता, नाटककार और नट ही होते हैं। केवल पुरुष ही नहीं, बल्कि उन कुलोंकी स्त्रियाँ भी अपने कुलके विशिष्ट गुणोंसे अलंकृत देखी जाती हैं।

कुछ ऐसे उदाहरण भी हैं, जिनमें विशिष्ट गुण अधिक पीढ़ियों तक नहीं चलते, बल्कि पितासे पुत्र तक पहुँच कर ही रह जाते हैं। ल्यूथसने वंशानुक्रमण पर जो ग्रन्थ लिखा है, उसमें उसने बतलाया है कि अधिकांश कुलोंमें मूल-पुरुषोंके विशिष्ट गुण प्रायः तीसरी पीढ़ी तक जाकर रुक जाते हैं और बहुत ही कम दशाओंमें चौथी पीढ़ी तक पहुँचते हैं; पाँचवीं पीढ़ी तक उनका पहुँचना तो बहुत ही कठिन होता है। और बहुत-सी दशाओंमें तो वे एक ही पीढ़ीमें समाप्त हो जाते हैं; दूसरी पीढ़ी तक भी उनके पहुँचनेकी नौबत नहीं आती। कुलके किसी एक ही मनुष्यमें कुछ विशिष्ट गुण होते हैं और उसीके साथ उनका अन्त हो जाता है। बहुतसे लोगोंको यह बात एक दिल्लगी मालूम होगी कि वैज्ञानिक अन्वेषण करनेकी शक्ति खूनके साथ पुश्त दर-पुश्त चलती है और इस प्रकारके वंशानुक्रमणके भी अनेक उदाहरण हैं। फ्रान्सके एक कुलमें लगातार सदा सौ वर्षों तक बराबर सब लोग ज्योतिषी ही हुए थे। एक कुलमें चार पीढ़ियों-के आठ आदमी बराबर अच्छे गणितज्ञ ही हुए। एक वंश ऐसा था, जिसमें कई पीढ़ियों तक सभी लोग अच्छे योद्धा और नाविक होते थे; वे लोग जहाजों पर अच्छे-अच्छे पद पाते थे और बड़े-

बड़े युद्धोंमें जाकर वीरता-पूर्वक लड़ते थे। लड़ाईमें उनके हाथ-पैर कट जाते थे और घर आकर वे लोग अपने लिये बढ़ईसे काठकी टाँगें बनवाया करते थे। तबसे प्रसिद्ध हो गया कि "काठकी टाँगें भी किसी कुलमें पीढ़ियों तक चलती हैं।"

इन सब उदाहरणोंसे विदित होगा कि वंशानुक्रमण जगत्-व्याप्त है। शारीरिक संगठनमें तो यह बहुतसे अंशोंमें जगत्-व्याप्त है ही। किसी परिवारके लोग कंजे और किसीके भेंगे ही होते हैं। किसी परिवारके लोगोंका चमड़ा बहुत मोटा होता है और किसीका पतला। किसी परिवारके लोगों के हाथों या पैरोंमें छः छः उँगलियाँ होती हैं। किसी कुलके सभी लोगोंकी आँखें बहुत कमज़ोर होती हैं और किसी कुलवालोंको वर्णान्धताका रोग होता है। किसी वंशवालोंके हाथ बहुत लम्बे होते हैं और किसीके पैर। कोई कुल उजड्डोंका होता है और कोई बेवकूफोंका। इसी प्रकारकी और भी बहुतसी बातें वंशानुक्रमिक होती हैं। जरमी बेनथमने तो यहाँ तक कहा है कि नींदमें जोर-जोरसे खर्राटे लेना भी वंशानुक्रमिक है। उसने अपने ही परिवारके सम्बन्धमें लिखा है कि "हमारे कुलमें जो खर्राटे न लेता हो, वह अपने माता-पितासे उत्पन्न ही नहीं है। मेरे पिता खर्राटे लेते थे, मेरी माता खर्राटे लेती थी और यदि मेरा भतीजा खर्राटे न ले तो उसे मक्कार समझना चाहिए।" एकबार दो कुलीन महिलाओंने धनके लालच-से दो मूर्खोंके साथ विवाह कर लिया था। उनके यहाँ पाँच पीढ़ियों तक सभी बच्चे महामूर्ख होते रहे। स्मालेटके एक उपन्यासके नायकने सड़क पर पड़ी हुई एक छोटी जिप्सी नामकी बालिका पाई थी। उसने उसे अपने घर लाकर रखा और सब प्रकारसे युरोपियन ढङ्गकी शिक्षा दी और उसे विलायती ढङ्गका

नाचना-गाना भी सिखलाया। जब वह सयानी हुई, तब लोगोंने समझा कि अब इसमें कुछ भी जिप्सीपनकी बू नहीं रह गई। एक बार वह कुछ स्त्रियोंके पास ताश खेलने गई। वहाँ एक स्त्रीने खेलमें उसके साथ कुछ बेईमानी की। इस पर बिलकुल जिप्सियों की तरह वह बिगड़ खड़ी हुई और सबको कोसती-काटती हुई वहाँसे उठकर चलती बनी। इसीलिये कहा है—

जाकर जौन सुभाव, छूटे नहिं जीसों।
नीम न मीठी होय सिंचो गुड़-घीसों॥

केवल एक चीज़ ऐसी है जो वंशानुक्रमिक नहीं होती और वह चीज़ है प्रतिभा, विशेषतः काव्य-सम्बन्धी प्रतिभा। और गुण तो वंशानुक्रमिक होते हैं, पर यह गुण व्यक्ति-गत होता है और जिस व्यक्तिमें होता है उसीके मरनेके साथ नष्ट हो जाता है। जो लोग प्रतिभाशाली होते हैं, उनके माता-पितामें कोई असाधारण या विलक्षण बात नहीं पाई जाती। अपने वंशमें ऐसे प्रतिभाशाली मनुष्य अकेले होते हैं। उनके लड़के-पोतोंमें कुछ भी प्रतिभा नहीं होती और वे बहुत ही साधारण मनुष्योंकी कोटिमें चले जाते हैं। न तो उनके समान योग्य और प्रतिभाशाली पुरुष उनके कुलमें कोई पहले होता है और न उनके बाद। माता-पितासे उन्हें किसी प्रकारका ज्ञान और बुद्धि-बल नहीं प्राप्त होता; वे स्वयं योग्यता और पाण्डित्य अर्जित करते हैं। काशीके अनेक स्वर्गीय महामहोपाध्याय इसी कोटि के थे। म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री, म० म० पं० राममिश्र शास्त्री, म० म० पं० गंगाधर शास्त्री और पं० मथुराप्रसाद मिश्र आदिकी ऐसे ही लोगोंमें गणना की जा सकती है।

यह मानना ही पड़ेगा कि प्रतिभाकी व्याख्या नहीं हो सकती और न उसके मूलका ही पता लग सकता है। बड़े-बड़े कवियोंका

उदय धूमकेतुओंकी तरह होता है; वे आते हैं, अपने मार्गसे होते हुए निकल जाते हैं और हम लोगोंको आश्चर्य्य-सागरमें छोड़ जाते हैं। कालिदास, भवभूति और माघ ; केशव पद्माकर और भूषण; चासर, स्पेन्सर और शेक्सपियर सब ऐसे ही थे। बिहारी, देव और सूदन आदि साधारण माता-पिताके पुत्र थे। उर्दू के प्रसिद्ध कवि सौदाके पिता सौदागर थे और कहा जाता है कि इसी लिये उन्होंने अपना उपनाम "सौदा" रखा था। मीर सोजके पिता अच्छे तीरंदाज थे ; पर कवितासे उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। मीर दर्दके पितामें कोई विलक्षणता या विशेषता नहीं थी। सैयद इंशाके पिता और बातोंमें भले ही योग्य हों, पर काव्यकी दृष्टिसे उनमें कोई विशेषता नहीं थी। गालिबके पिता मामूली सिपाही थे। और इन लोगोंके वंशज भी कवि नहीं हुए। यदि प्रतिभा वंशानुक्रमिक होती, तो इनकी सन्तान और भी अधिक प्रतिभाशाली होती।

बहुतसे महापुरुष ऐसे हुए हैं, जिनमें उनके माता-पिताका एक भी विशिष्ट गुण नहीं था। बल्कि उनके आचरण उनके माता-पिताके आचरणोंके बिलकुल विपरीत थे। इसीलिये बहुतसे लोगोंका यह भी विश्वास है कि योग्य पुरुष सदा योग्य पिताके ही घर जन्म नहीं लेते और न योग्योंके आगे योग्य सन्तान ही होती है, इसीलिये बहुतसे महापुरुषोंको अपने माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध और अपने अनुकूल मार्गका अवलम्बन करना पड़ा है। पिताको पुत्रके मार्गमें बाधा डालने में सफलता नहीं होती। उधर योग्य पिता अपनी अयोग्य सन्तानसे परम दुखी देखे जाते हैं। प्रसिद्ध सम्राट् मारकस, ओरेलियस गुणों और विद्याकी खान था ; पर उसका पुत्र

सम्राट कामाडेस बड़ा ही निर्दयी और पूरा पिशाच था। सिसरोका पुत्र मारकस बड़ा भारी शराबी था। कमाल यद्यपि अयोग्य नहीं था, तो भी उसके सिद्धान्त कबीरके सिद्धान्तोंके बिलकुल विपरीत थे। फ्रान्सके काउण्ट जोकेलिनका लड़का बड़ा भारी ऐयाश और शराबी था। उसने अपने बापकी सारी रियासत चौपट कर दी और अन्तमें उसे भूखों मरना पड़ा। प्रथम एडवर्ड बड़े ही सज्जन और वीर थे; पर उनके पुत्र द्वितीय एडवर्डका चरित्र बड़ा ही निन्दनीय था। सर थामस मूरका लड़का बड़ा ही मूर्ख था। लूथरका लड़का भी उद्दण्ड था और अपने पिताकी आज्ञा नहीं मानता था। ओलीवर क्रामवेलका लड़का रिचर्ड क्रामवेल बड़ा नालायक था। एडिसनकी एक मात्र लड़कीमें जरा भी समझ नहीं थी। लार्ड चेस्टर फील्डने अपने पुत्रको उपदेश देनेके लिये जो पत्र लिखे थे, उनकी एक बहुत अच्छी पुस्तक बन गई है; पर तो भी उनका लड़का न सुधरा। सर वाल्टर स्काटका लड़का फ़ौजमें मामूली अफ़सर था। वह कहा करता था कि मेरे पिताने साहित्य-क्षेत्रमें जो कीर्त्ति प्राप्त की है, उससे मैं लज्जित हूँ और मैंने आज तक उनका एक भी उपन्यास नहीं पढ़ा! काशीके एक बहुत बड़े और प्रतिष्ठित पण्डितका लड़का, जो स्वयं भी थोड़ा बहुत विद्वान् है, अपनी लाखों रुपयोंकी सम्पत्ति नष्ट करके गलियोंमें मटन-चाप बेचता और लोगोंसे गाली-गलौज करता फिरता है। इसीलिये एक फ्रान्सीसी कहावत है कि "वही बालक अच्छा है, जिसका बाप ऐरा-गैरा है। उस बालकको बहुत ही भाग्यवान् समझना चाहिए, जो केवल अपने पिताके गुणोंके कारण ही आदरणीय न हो।"

शिल्प और कलामें उन्नति करनेवाले लोग प्रायः दरिद्र ही होते हैं और आरम्भमें उन्हें अनेक बड़ी-बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। रेनाल्डने कहा है कि किसी शिल्पकारके घरमें जन्म लेनेसे ही मनुष्य शिल्पकार नहीं बन सकता ; जो अवसर पाकर अच्छा प्रयत्न करता है वही शिल्पकार हो सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि जिसका जन्म किसी शिल्पकारके घर होगा, उसमें शिल्पके सम्बन्धमें कुछ स्वाभाविक गुण अवश्य होगा ; परन्तु उसकी वृद्धि और विकाशके लिये निरन्तर परिश्रम करनेकी आवश्यकता होगी। रम्ब्राण्ट नामक एक प्रसिद्ध चित्रकारने अपने पुत्र टाइटसको चित्रकारी सिखलानेके लिये बहुत दिनों तक पूरा परिश्रम किया ; पर टाइटसको कुछ भी न आया। टाइटसने जो ख्याति प्राप्त की वह केवल यही थी कि यह प्रसिद्ध चित्रकार रम्ब्राण्टका लड़का है। प्रसिद्ध गवैये मोजर्टके लड़केका हाल भी सुनने लायक है। जब ब्लैंक्विनी नामक प्रसिद्ध गवैया मिलन नगरमें गया तब वहाँ उसे मोजर्टके लड़केसे मिलनेका शौक हुआ। वह उसके आफ़िसमें पहुँचा और साहब-सलामत करके उसे ऐसे कीर्त्तिशाली पिताके घर जन्म लेने पर बधाई देने लगा। मोजर्टका लड़का जरा उजड्ड था और उसे बात-चीत करनेका शऊर नहीं था। उसकी बातोंसे ब्लैंक्विनीको बहुत आश्चर्य्य हुआ और उसने पूछा—"क्यों साहब! आप क्या सचमुच मोजर्टके ही लड़के हैं?" उत्तर मिला—"हाँ।" उसने कहा—'तब तो आपने इस कला-कुशल देशमें एक पूज्य और सुयोग्य पिताकी छायामें जन्म लिया है।" उत्तर मिला—"ऊँह।" उसने पूछा—'आप पियानो या वायोलिन तो बहुत अच्छा बजाते होंगे?"

उत्तर मिला—"तुम क्या मुझे शैतान समझते हो ? मैं गाना-बजाना कुछ भी नहीं पसन्द करता।" उसने पूछा—"तो क्या आप गवैये नहीं हैं ?" उत्तर मिला—"नहीं, मैं महाजन हूँ।" यह कहकर उसने जमीन पर पड़ी हुई अशरफियोंके ढेरमेंसे मुट्ठी भर अशरफियाँ उठा लीं और खूब खनखनाते हुए उन्हें रोकड़िएके ऊपर बरसा दिया और कहा–"मैं यह संगीत पसन्द करता हूँ।" क्लैंक्विनी को इससे बड़ी ही घृणा हुई; वह तुरन्त उठकर वहाँसे चल दिया।

अच्छे-अच्छे और प्रसिद्ध कुलोंका अन्त बड़ी ही बुरी तरह होता है। और बड़े-बड़े महापुरुषोंकी कीर्त्ति प्रायः उनके लड़के नष्ट कर देते हैं। मेवाड़के राजवंशको ही लीजिए। बाप्पा रावलसे लेकर महाराणा प्रताप तक तो मेवाड़की महत्ता और स्वतन्त्रता सब प्रकारसे बनी रही! पर महाराणा प्रतापको पहलेसे ही अपने पुत्रसे कोई विशेष आशा नहीं थी। और न महाराणा अमरसिंहने उनके प्रणोंका निर्वाह ही किया। और आगे चलकर उनके वंशज तो और भी दुर्बल और पराधीन होते गये। दिल्लीके मुगल-वंशका अन्त करनेवाले मुहम्मद शाह और शाह आलम द्वितीयकी दुर्बलता, अयोग्यता और परवशताका हाल पढ़कर दुःख होता है। मुहम्मद शाह इतना दुर्बल था कि और तो और स्वयं अपने शरीर तककी रक्षा न कर सकता था। शाह आलम द्वितीयकी तो आँखें तक निकलवा ली गई थीं। और अन्तमें द्वितीय अकबर और द्वितीय बहादुर शाह नाममात्रके सम्राट् रह गये थे। महलमें पड़े-पड़े ऐयाशी, शायरी, और बटेरबाजी आदिके सिवा उन्हें और कुछ आता ही न था। यद्यपि अवधके नवाब भी अँगरेजोंकी कृपासे बादशाहोंके दरजे तक पहुँच गये थे और कुछ समय तक उनकी अच्छी चल गई थी; पर

वाजिदअली शाहने अपनी ऐयाशी और अयोग्यताकी पराकाष्ठा करके अवधको अँगरेजी राज्यमें मिलवा दिया। खुद मटिया बुर्जमें नजरबन्द कर दिये गये और बारह लाख रुपये सालाना पेन्शन मिलने लगी। उन्होंने उसीको गनीमत समझा और "सन्तोषं परमं सुखं" के न्यायानुसार नजरबन्दीमें भी खूब ही गुलछर्रे उड़ाये। छत्रपति महाराज शिवाजीने अपने पुत्र शम्भाजीकी परम दुराचारिता और अयोग्यतासे बहुतही दुखी और अप्रसन्न होकर स्वयं उन्हें पानोलके किलेमें कैद कर दिया था। शम्भाजीका आचरण परम निन्दनीय था और उनमें कुछ भी योग्यता न थी। इसी लिये बड़े-बड़े सरदार उनसे असन्तुष्ट रहते थे। करनाटकसे राज-स्व आना बन्द हो गया था और उधर रिआया भी बहुत ही दुखी हो गई थी। इसके बाद दक्षिणमें पेशवाओंका जमाना आया। पेशवा-वंशके प्रधान संस्थापक बाजीराव पेशवा बड़े ही योग्य थे और वे उत्तर-भारत तकमें अपना राज्य स्थापित करना चाहते थे। राणा सेन्धिया और मल्हारराव होलकर उनके सेनापति थे। उन्होंने अनेक नये प्रान्तों पर अधिकार भी किया था। उनके पुत्र बालाजी बाजीराव भी बहुत योग्य थे। बालाजी बाजीरावके पुत्र माधवराव भी अच्छे वीर और योग्य शासक थे। पर माधवरावके बाद ही पेशवाईका ह्रास होने लगा और अन्तमें द्वितीय बाजीरावकी अयोग्यताके कारण उसका अन्त हो गया। उन्होंने अपने आपको अँगरेजोंके अधीन कर दिया और आठ लाख पेन्शन लेकर बिठौरमें रहना स्वीकार किया। महाराज रणजीतसिंहके पुत्र खड्गसिंह भी प्रायः अयोग्य ही थे। उनमें अनेक दुर्गुण थे। सिख-साम्राज्यके नाशके पूर्ण नहीं तो आंशिक कारण वे अवश्य थे।

एक विद्वान्ने कहा है कि राजा लोगोंको केवल उपाधियाँ दे सकता है ; वह उन्हें योग्य नहीं बना सकता। राजा चाहे किसी बन्दरको लोगोंसे "शेर" भले ही कहलवा ले, पर वह वास्तवमें उसे शेर नहीं बना सकता। किसी उच्च कुलमें या बहुत बड़े आदमीके घरमें जन्म लेनेसे कुछ भी नहीं हो सकता। वास्तवमें मनुष्यके लिये गुणों और योग्यताकी आवश्यकता होती है। गुणों और योग्यताका होना जहाँ बहुतसे अंशोंमें अपने प्रयत्न और परिश्रम पर अवलम्बित हैं वहां वह कुछ अंशोंमें ईश्वरीय देन भी है। राजा प्रथम जेम्स धन लेकर लोगोंको बड़ी-बड़ी उपाधियाँ दिया करता था ; पर साथ ही वह यह भी कहता था—"मैं किसीको लार्ड तो बना सकता हूँ, पर उसे भलाआदमी नहीं बना सकता।" धन, बल, अधिकार या उपाधि आदिसे ही कोई भलाआदमी और योग्य नहीं हो सकता। बहुत ही तुच्छ कुलमें जन्म लेनेवाला मनुष्य भी अपने सद्गुणों और सत् कार्योंके कारण श्रेष्ठ बन सकता है और बहुत श्रेष्ठ कुलमें जन्म लेनेवाला मनुष्य भी अपने दुर्गुणों और दुष्कर्मोंके कारण परम नीच बन सकता है। उच्च और श्रेष्ठ बनना बहुतसे अंशोंमें प्रत्येक मनुष्यके अपने अधिकारकी बात है। पर साथ ही हम यह भी मानते हैं कि मनुष्यके बनने-बिगड़नेमें परिस्थिति आदि भी बहुतसे अंशोंमें कारणीभूत होती है। मनुष्य कालानुसार ही उन्नति करते हैं। यदि समय अनुकूल हो और मनुष्यमें बल तथा दृढ़ता हो तो वह अनेक कठिनाइयोंको पार करता हुआ उन्नतिके शिखर तक पहुँच जायगा ; और बहुतसे अंशोंमें उन्हीं कठिनाइयोंका अभाव लड़केको अयोग्य बनानेमें सहायक होगा जिन कठिनाइयोंके कारण पिता उन्नति करता है। बहुधा योग्य पुरुषोंके आगे अयोग्य

सन्तान होनेका मुख्य कारण यही है कि सन्तानको रास्ता साफ मिलता है। लड़का देखता है कि मेरे बापने इतनी कीर्त्ति या इतनी सम्पत्ति सम्पादित की है; अब मुझे कुछ करने-धरनेकी आवश्यकता क्या है ? और इसी लिये वह अपने साथ अपने पूर्वजोंकी कीर्त्ति आदि भी नष्टकर देता है।

आजकल युरोप और अमेरिका आदि इस विषयमें बहुत ही उन्नति पर हैं। विशेषतः अमेरिकामें अधिकांश महापुरुष ऐसे ही हो गये हैं जिनका जन्म बहुत ही साधारण बल्कि दरिद्र गृहस्थके यहाँ हुआ है और जिन्होंने केवल अपने ही बाहु-बलसे बहुत अधिक कीर्त्ति और महत्ता प्राप्त की है। महात्मा वाशिंगटन एक साधारण किसानके लड़के थे। शेरमन मोची था, नाक्स जिल्द-साज था, ग्रीन लोहार था और हैमिल्टन एक साधारण क्लर्क था। अब्राहम लिंकन पहले मल्लाही करता था। इन सबके पूर्वज न तो उच्च वंशके थे और न धनवान्। सच तो यह है कि महत्ताका कुल और धनसे कोई विशेष सम्बन्ध ही नहीं है। जो मनुष्य खूब काम करता है वही महापुरुष होता है। ऐसे मनुष्यके मनमें बहुत उच्च विचार उत्पन्न होते हैं। वह अच्छे-अच्छे ग्रन्थ बनाता और बड़े-बड़े काम करता है और इस प्रकार संसारमें अपनी अक्षय कीर्त्ति छोड़ जाता है। अपने भाग्य, अपने वैभव और अपने महत्त्वका वह स्वयं निर्म्माता होता है। और दूसरा मुख्य कारण यह है कि यह बहुत अधिक अरिश्रम और खूब विचार करता है। और वास्तवमें संसारमें ऐसे ही मनुष्यका आदर होता है जो स्वयं अपनी ही बुद्धि और अपने बलसे महत्त्व और कीर्त्ति प्राप्त करता है।

प्रतिभाशाली मनुष्योंके विषयमें एक और बहुत विलक्षण बात

यह है कि वे प्रायः निःसन्तान होते हैं। ऐसे लोग या तो विवाह ही नहीं करते और यदि करते भी हैं तो उससे उन्हें कोई सन्तति नहीं होती। यदि संयोग-वश उन्हें बाल-बच्चा हो भी तो वह अधिक दिनों तक नहीं जीता, शीघ्र ही मर जाता है। और यदि जीता भी रहता है तो प्रायः नालायक होता है। मि० कोथरने जॉन्सनकी जो जीवनी लिखी है उसमें उन्होंने बतलाया है कि अंगरेजीके महा कवियोंको तो कोई सन्तति ही नहीं हुई और बहुत से दूसरे अच्छे-अच्छे कवियोंको भी नहीं हुई। शेक्सपियर, जॉन्सन, मिल्टन, ड्राइडन, रो, एडिसन, पोप, स्विफ्ट, ग्रे, गोल्डस्मिथ और काउपरका कोई नाम-लेवा नहीं था। लार्ड बाइरन और सर वाल्टर स्काटके भी कोई पुत्र न था। कदाचित् विधिने कुछ ऐसी विलक्षण योजना ही कर दी है कि प्रतिभाशाली मनुष्यकी कृतियाँ उनकी सन्तानका काम दें—उन्हें कोई लड़की या लड़का न हो। कई ऐसे अँगरेज विद्वान भी हो गये हैं जिनका वंश केवल एक दो या चार पीढ़ी तक चलकर रह गया और अब जिनके वंशमें कोई पुरुष नहीं है; हाँ, उनकी कन्याओंके कुछ वंशज हैं। उक्त महानुभावोंमेंसे कुछने तो विवाह ही नहीं किया था। उनके ग्रन्थ-रूपी पुत्र ही अवशिष्ट रहे। बेकनने माता-पिता और सन्तान पर जो निबन्ध लिखा है उसमें एक स्थान पर उसने कहा है—"निःसन्तान लोगोंने ही बहुत बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे हैं और बड़े-बड़े कामोंकी नींव डाली है। जब उन्होंने अपने आपको शरीर द्वारा अपनी प्रतिमा तैयार करनेमें असमर्थ पाया तब उन्होंने अपने मनकी प्रतिमा तैयार की।"❀

❀ आत्मा वैजायते पुत्रः।—मनुः।

छठा प्रकरण।

साहित्यिक रोग या बहुत अधिक मानसिक श्रम।

हम बतला चुके हैं कि महापुरुष सदा बहुत अधिक काम करनेवाले होते हैं। उनमेंसे कुछ जल्दी फूलते हैं और कुछ देरसे। कुछ ऐसे भी होते हैं जो कभी फूलते ही नहीं। वे कभी प्रौढ़ नहीं होते; महत्त्व प्राप्त करनेके प्रयत्नमें ही उनका दम निकल जाता है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो बहुत अधिक प्रयत्न करके अपने उद्दिष्ट स्थान या सफलताके शिखर तक तो पहुँच जाते हैं, पर वहाँ पहुँचनेके लिये उन्हें जो बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है उसीके कारण, सफल-मनोरथ होते ही वे परलोकगामी हो जाते हैं। घोड़ा घुड़-दौड़में जीत तो जाता है पर दौड़के समाप्त होते ही तुरन्त मर जाता है।

आक्सफोर्डके एक विद्यार्थीने अपने एक मित्रके सम्बन्धमें एक बार कहा था कि वह नित्य पन्द्रह घण्टे तक पढ़ा करता था, पर अन्तमें उस बेचारेका दिमाग़ खराब हो गया। उसका एक और मित्र परीक्षाके लिये बहुत अधिक प्रयत्न और परिश्रम करनेके कारण ही मर गया था। डा० गारनटेने एक ग्रन्थ पढ़नेके सम्बन्धमें कहा था—"मैंने उसे एक महीनेमें खतम किया; पर उसने भी मुझे करीब-करीब खतम ही कर दिया।"

जो लोग साहित्य-क्षेत्रमें कीर्त्ति प्राप्त करना चाहते हैं उनके भाग्यमें सुख और चैन नहीं होता। श्रेष्ठ कवि बनना मानों आत्म-बलि करना है। किसीने कहा है कि ज्ञान-वृक्षका फल अवश्य ही बहुत मीठा होता है, परन्तु उसे प्राप्त करना बहुत ही कठिन और कष्ट-प्रद है; बल्कि कभी कभी तो उसके लिए मनुष्यको अपने प्राण तक गँवाने पड़ते हैं। साहित्यिक कीर्त्तिके मुकुटके नीचे छिपा हुआ काँटोंका एक वृन्त होता है और ज्ञनाकी वृद्धि बहुधा दुःखकी वृद्धिका कारण होती है।

प्रतिभाको एक विद्वान्ने एक प्रकारका पारीका ज्वर बतलाया है। जब यह ज्वर चढ़ता है तब मनुष्यको अपने शरीरकी सुध नहीं रह जाती। प्रतिभाशाली मनुष्य एक प्रकारके आवेशमें आ जाता है और उसी आवेशकी दशामें उसके द्वारा बहुत बड़े-बड़े काम हो जाते हैं। उसका दिमाग उसके शरीर पर एक प्रकारके बिजलीके यंत्रका काम करता है और शरीर तथा ज्ञान-तन्तुओं पर एक प्रकारका आघात पहुँचाता है। वह आघात जितना ही प्रबल होता है उससे उतनी ही अधिक और उतनी ही स्थायी शिथिलता भी आती है। इस प्रकार उससे शारीरिक शक्तियोंका निरन्तर क्षय होता रहता है और उसकी पूर्त्ति केवल बहुत अधिक विश्रामसे ही हो सकती है। और यदि विश्राम न हो तो शारी-रिक शक्तियोंका पूरा-पूरा नाश हो जाता है। सूदेने एक ऐसी बहुत ही अच्छी स्त्री-कविका विवरण लिखा है जो सत्रह वर्षकी अवस्थामें ही परलोक सिधार गई थी।

एक पाश्चात्य गीत बनानेवालेके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि जब कभी वह कोई अच्छा गीत बनानेको होता था तब उसे एक प्रकार

का गुप्त रोग होता था। वह गुप्त रोग वास्तवमें उसी मानसिक परिश्रमके कारण ज्ञान-तन्तुओंके क्षुब्ध होनेसे होता था जो उसे उस गीतके बनानेमें करना पड़ता था। गाथेने लिखा है कि जब-जब वह कोई अच्छा गीत बनाता था तब-तब वह बीमार होता था। शिलरने अपने सभी अच्छे ग्रन्थ अपने जीवनके अन्तिम पन्द्रह वर्षोंमें लिखे थे; पर उन्हीं दिनों वह सदा बहुत अधिक पीड़ित रहा करता था। कारलाइलने एक बार कहा था कि ग्रन्थ-रचना और स्वास्थ्यका बड़ा भारी बैर है। वह जब कुछ लिखने लगता तब उसकी तबीयत खराब हो जाती थी। एक ग्रन्थ लिखनेके समय तो वह मरणासन्न हो गया था। डा० डार्विन एक दिनमें कभी तीन घण्टेसे अधिक काम न कर सकते थे। कभी-कभी तो उन्हें बात-चीत तक करनेमें कष्ट बोध होता था।

मस्तिष्कमें जो क्षोभ उत्पन्न होता है उसके कारण ज्ञान-तन्तु, उदर, हृदय, कलेजा और यहाँ तक कि शरीरके सभी अंग क्षुब्ध हो जाते हैं। ऐसे विचारशील मनुष्य बहुत ही कम मिलेंगे जिनका मुख प्रसन्न और प्रफुल्लित दिखाई देता हो। उनका चेहरा पीला पड़ जाता है और बाल सफेद हो जाते हैं। उनकी उपमा ऐसे ज्वालामुखी पर्वतसे दी जा सकती है जो ऊपरसे बरफसे ढँका रहता है।

मस्तिष्क जिस समय काम करता है उस समय वह हमारी जीवनी-शक्तिको जलाता है। उसमेंसे एक प्रकारकी गरमी निकलती है जो हमारी शारीरिक शक्तियोंको जलाती रहती है। बल्कि मस्तिष्कको एक प्रकारकी यज्ञ-शाला समझना चाहिए जिसमें हमारी शारीरिक और जीवनी-शक्तिकी आहुति पड़ती

रहती है। यदि हम ठीक समय पर और उचित मानमें खायें, सोयें और विश्राम करें, तो उस यज्ञ-शालामें—जिस शक्तिकी आहुति होती है, उसकी पूर्त्ति हो जाती है और उस दशामें मानसिक परिश्रम करना हमारे लिये शुभ प्रमाणित होता है। पर यदि इन सब बातोंमें कमी हो, तो वह हमारे लिये बड़ा ही घातक प्रमाणित होता है।

जब कि मनुष्य अपनी सभी शारीरिक शक्तियोंका समुचित और समान-रूपसे प्रयोग करता और उन सबको एक-रस रखता है, तब वह नीरोग रहता है। पर पढ़ने-लिखनेवाले लोग अपने अन्य शारीरिक अंगोंकी अपेक्षा अपने मस्तिष्कका इतना अधिक उपयोग करते हैं कि शारीरिक शक्तियोंमें भारी विषमता उत्पन्न हो जाती है, जिसके परिणाम-स्वरूप उन्हें रोगी होना पड़ता है। शरीरके सबसे कोमल अंगसे तो बहुत अधिक काम लिया जाता है और रग-पट्ठोंकी कोई चिन्ता नहीं की जाती। इसमें सन्देह नहीं कि मानसिक श्रमका परिणाम अवश्य अच्छा होता है; क्योंकि उसीसे बल, ज्ञान और प्रतिष्ठाकी प्राप्ति होती है। पर इनके लिये मनुष्यको अपनी बहुत कुछ शारीरिक हानि भी करनी पड़ती है। मानसिक श्रम बड़ी-बड़ी आशाओंसे किया जाता है, पर जिस समय उन आशाओंकी पूर्त्ति होती है उस समय तक वह बहुत ही रोगी और दुर्बल हो जाता है। नीरोग रहनेके लिये ही मानसिक श्रमकी आवश्यकता होती है, पर बहुत अधिक मानसिक श्रम मनुष्यके मरणका कारण होता है। गणितज्ञ, दार्शनिक, उपदेशक, वकील, डाक्टर, सम्पादक और लेखक आदि सभी मानसिक श्रम करनेवाले अपना स्वास्थ्य बिगाड़ कर ही श्रम करते हैं। हमारी जिस शारीरिक शक्तिका काम पाचन, पोषण, रक्त-संचालन और

क्षति-पूर्त्ति आदि है, वह शक्ति जब केवल मस्तिष्कमें ही जा लगेगी, तब क्यों न उन कामोंमें त्रुटि रहेगी ? यही कारण है कि अधिक मानसिक श्रम करनेवालोंको प्रायः बदहजमी, दस्त या इस तरहकी और बातोंकी शिकायत बनी रहती है।

मान लिया कि बहुत अधिक मानसिक श्रम करके आप दूसरे वृहस्पति या कुबेरके अवतार हो गये, पर बिना स्वास्थ्यके आपका ज्ञान या धन किस कामका ? मानसिक श्रम करनेवालोंको कमानेकी उतनी चिन्ता नहीं होती, जितनी पचानेकी होती है। बड़े-बड़े धनवान् और विद्वान् बदहजमीसे सदा परेशान रहते और साधारण देहातियोंसे इस विषयमें ईर्ष्या करते हैं। कालबिन दिन-रातमें केवल एक बार बहुत ही हलका भोजन किया करता था। विलायतके एक बहुत बड़े प्रोफेसरने जब एकबार एक डाक्टरसे अपने पेटकी शिकायत की, तब डाक्टरने उससे कहा कि सबसे अच्छा उपाय यह है कि तुम लिखने-पढ़नेकी अपनी सारी सामग्री चौमुहानी पर रखकर जला दो, बहुत जल्दी तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर जायगा। प्रसिद्ध कवि काउपर मन्दाग्निके कारण होनेवाले अन्य रोगोंसे इतना दुखी रहता था कि कई बार उसने आत्म-हत्या तक करनेका विचार किया था। यदि वह अपने भोजन और व्यायाम आदिका यथेष्ट ध्यान रखता तो उसे जीवन भर रोना न पड़ता। कारलाइलकी भी यही दशा थी। उसने बहुत-सी दवाएं खाईं और तरह-तरहकी तरकीबें कीं, पर किसीसे कुछ न हुआ ; उसकी बदहजमी सदा बनी ही रही। यद्यपि इंगलैण्डके प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ पिटके सम्बन्धमें कहा जाता है कि उसकी मृत्यु कई राजनीतिक पराजयोंकी चिन्तासे हुई थी; पर वास्तवमें उसे भी हाजमेकी ही शिकायत थी, जिसके कारण उसे

प्रायः गठियाका भी दौरा हो जाता था। गठिया बहुधा धनवानोंको ही होती है और पैतृक मानी जाती है। पर वह निर्धनोंके सिवा उन लोगोंको भी हो जाती है, जिनके पूर्वजोंको पहले कभी नहीं होती। गठिया पुरुषोंको ही बहुत अधिक होती है। गठियाके सौ रोगियोंमें बीससे कम स्त्रियाँ और अस्सीसे अधिक पुरुष होते हैं। जो मनुष्य यथेष्ट व्यायाम नहीं करता और जिसके पेटमें बहुतसा बिना पचा हुआ भोजन पड़ा रह जाता है, उसीको गठिया होती है। प्रसिद्ध डाक्टर सिडनहमने पहले पहल इसके सम्बन्धकी बहुतसी बातोंका पता लगाया था और उसकी मृत्यु भी इसी रोगके कारण हुई थी। उसने गठियाके सम्बन्धमें कहा था— इससे दरिद्रोंकी अपेक्षा धनवान् और मूर्खोंकी अपेक्षा बुद्धिमान् ही अधिक मरते हैं। बड़े-बड़े बादशाह, सेनापति और दार्शनिक इसीसे मरे हैं। यहीं पर प्रकृति अपनी निष्पक्षता सिद्ध करती है। वह बतला देती है कि जो कुछ बातोंमें मेरा विशेष कृपा-पात्र है, वही कुछ बातोंमें मेरा विशेष कोप-भाजन भी है।" यह रोग केवल धनवानोंको ही नहीं, बल्कि बड़े-बड़े राजनीतिज्ञोंको भी होता है।

जो मनुष्य अपने मस्तिष्क और उदरका बहुत अधिक तथा हाथ-पैरका बहुत कम उपयोग करता है, उसे गठिया हो जाता है। पैतृक गठियासे पीछा छूटना भी बहुत कठिन होता है। जनरल थामसन को पैतृक गठिया थी। उन्होंने बड़े-बड़े उपाय किये, सदा बहुत कुछ शारीरिक श्रम भी किया, सब तरहकी मदिरा छोड़ दी, बहुतसे भोजनोंसे भी परहेज किया, पर कुछ भी फल न हुआ। बहुत दिनों तक जब उन्होंने शराब पीना छोड़ दिया, तब कहीं जाकर उन्हें कुछ फुरसत हुई। इस अवसर पर यह बात

ध्यानमें रखने योग्य है कि शराबियोंको भी प्रायः गठियाका रोग होता है और ऐसे लोग जब शराब पीना छोड़ देते हैं, तब उनके रोगमें भी कुछ कमी हो जाती है।

जो मनुष्य बहुत अधिक चिन्तन करता है, उसकी पाचन-शक्ति अवश्य बिगड़ जाती है। केवल शारीरिक श्रम करने-वाले देहाती खूब हट्टे-कट्टे और मज़बूत होते हैं, यथेष्ट भोजन करते हैं और सब कुछ अच्छी तरह पचा लेते हैं। पढ़े-लिखे नागरिक सदा रोगी और दुर्बल रहते हैं। उन्हें एक एक कौर गिनकर खाना पड़ता है और सदा पेटकी लगी रहती है। उधर देहातियोंको सदा भोजनकी ही चिन्ता बनी रहती है, पचानेकी चिन्ता उन्हें कभी नहीं होती। जिस मनुष्यकी पाचन-शक्ति ठीक नहीं होती, उसकी मानसिक-शक्ति भी अपना काम ठीक तरहसे नहीं कर सकती। एक फ्रेंच चिकित्सकने कहा है कि जो मनुष्य जिस प्रकार भोजन पचाता है, वह उसी प्रकार विचार, चिन्तन या मनन भी करता है। बहुत अधिक मान-सिक श्रम करनेसे पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है, जिससे तरह तरहके रोग तो उत्पन्न होते ही हैं, साथ ही मस्तिष्क भी बिगड़ जाता है।

पहले कहा जा चुका है कि हमारा मस्तिष्क बिजलीके एक यंत्रके समान है, जिसके कारण हमारे ज्ञान-तन्तुओं पर आघात पहुंचता है। यदि बीच-बीचमें विश्राम और निद्राके द्वारा इन आघातोंको रोका न जाय तो हमारे मस्तिष्कका भी दिवाला निकल जायगा और ज्ञान-तन्तुओं पर भी उसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ेगा। बड़े-बड़े प्रतिभाशाली कवियोंकी प्रतिभा जिस समय जागृत होती है, उस समय उनकी शारीरिक अवस्था बहुत

ही खराब हो जाती है। कोई काँपने लग जाता है, किसीकी आँखोंके आगे अन्धेरा छा जाता है और किसीको ज्वर चढ़ जाता है। ऐसे मनुष्यों की मृत्यु भी बहुत ही शीघ्र हो जाती है। लेकिन ऐसे लोगोंकी मृत्युके लिये दुःख नहीं होना चाहिए; क्योंकि मनुष्यकी आयुके दीर्घ होनेका प्रमाण वर्षोंकी संख्या नहीं है, बल्कि वह ज्ञान तथा सुख है, जो वह अपने जीवनमें प्राप्त तथा अनुभव करता है। डीन स्विफ्टका मत था कि कोई महा-पुरुष दीर्घजीवी नहीं हो सकता। जब कोई उससे किसी वृद्ध महापुरुषका जिक्र करता, तब वह कहता कि "यदि उस मनुष्यका मस्तिष्क या हृदय किसी योग्य होता तो वह अबसे बहुत पहले मर चुका होता।" अपने मस्तिष्क-रूपी यज्ञ-कुण्डमें जो अपनी शारीरिक शक्तियोंकी जितनी ही अधिक आहुति देता है, उसका अन्त भी उतनी ही जल्दी हो जाता है। एकबार एक चित्रकार बहुत बीमार हो गया। उसे देखनेके लिये कई डाक्टर आये। सब कहने लगे कि अभी इसकी अवस्था अधिक नहीं हुई है, अतः यह बच जायगा। उस चित्रकारने कहा—"आप लोग मेरी छियालीस वर्षकी अवस्था पर मत जाइए; मैंने दिन और रात परिश्रम किया है, इस लिये मेरी अवस्था दूनी समझिए।" और वास्तवमें बहुत अधिक परिश्रम करनेके कारण वह बहुत ही शिथिल और क्षीण हो गया था। जो लोग अपने मस्तिष्कके साथ-साथ शरीरके और अंगों तथा शक्तियोंका भी बराबर उप-योग करते रहते हैं, उनकी यह दशा नहीं होती; वे अधिक दिनों तक सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

साधारणतः सदा लिखते-पढ़ते रहनेवाले मनुष्योंके फेफड़ों तक साँसकी हवा ठीक-ठीक नहीं पहुँचती; क्योंकि टेबुल या डेस्क

आदि पर ही झुक कर अपना काम करना पड़ता है। जब वे रातके समय अथवा गन्दी हवामें बैठकर लिखते-पढ़ते हैं तब साँसका यह दोष और भी बढ़ जाता है। शारीरिक अङ्गोंका हवासे यथेष्ट पोषण नहीं होता। भोजनकी आवश्यकता कुछ विशिष्ट अवसरों पर ही होती है, पर हवा और रोशनीकी आवश्यकता प्रत्येक मनुष्यको हरदम रहती है। हवाके अभावमें रक्तके संचालन और शुद्धिमें बहुत बाधा पहुँचती है और अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। यदि यथेष्ट व्यायाम किया जाय, तो इन दोषों और रोगोंकी नौबत नहीं आती। आजकलके चित्रकार और कवि प्रायः ऐसे स्थान पर बैठकर काम करते हैं, जहाँ शुद्ध वायु और सूर्य्यकी किरणोंकी पहुँच ही नहीं होती। बड़े-बड़े प्रसिद्ध ज्योतिषी अपना सारा समय अपनी वेधशालाओं में ही व्यतीत करते हैं और बरसों तक बाहर नहीं निकलते। बड़े-बड़े विद्वानों और लेखकोंकी भी यही दशा होती है। जब उनकी तबीयत बहुत अधिक घबराती है, तब वे थोड़ी देरके लिये खिड़कीसे बाहर मुँह निकाल कर हवाका एकाध झकोरा ले लेते हैं। बस, यही उनका व्यायाम है और यही हवा खाना है। ऐसी दशामें मनुष्यका रोगी होकर मर जाना आश्चर्य्य-जनक नहीं है, बल्कि वास्तवमें उसका बच रहना ही आश्चर्य्य-जनक है।

लेकिन सबसे बड़ी कठिनता तो यह है कि मानसिक श्रम एक प्रकारका नशा हो जाता है। ऐसे मनुष्यको बिना मानसिक श्रम किये चैन ही नहीं पड़ता। एक बार पेट्रार्कने एक पादरीसे अपने बीमार रहनेकी शिकायत की। पादरीने असली मतलब समझ लिया और इस लिये उसके पुस्तकालयकी कुंजियाँ

उससे माँग लीं। तीन ही दिन बाद पेट्रार्कने बहुत गिड़-गिड़ाकर पादरीसे कहा कि मुझे मेरी तालियाँ लौटा दीजिये, नहीं तो मैं आपके सामने ही मर जाऊंगा। तात्पर्य्य यह कि जो लोग इस प्रकार प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन करते हैं, वे कुछ दिनोंमें उसके बहुत ही अभ्यस्त हो जाते हैं और आगे चलकर इसके लिये उन्हें बहुत कुछ दण्ड भी भोगना पड़ता है।

अधिक मानसिक श्रम करनेवालोंके लिये सब दण्डोंमेंसे पहला दण्ड तो यह है कि उन्हें उन्निद्र रोग हो जाता है—उन्हें कभी गहरी नींद नहीं आती। वास्तवमें मानसिक श्रम करनेवालोंके लिये बहुत अधिक सोनेकी आवश्यकता होती है। पर तो भी वे लोग सोते बहुत ही कम हैं। अधिक कार्य्य करनेके उपरान्त भी बहुत देर तक मन क्षुब्ध रहता है और वह बराबर कुछ न कुछ सोचा करता है। मन और मस्तिष्क परसे मनुष्यका अधिकार उठ जाता है और वे दोनों आप ही आप बिना रुके बराबर काम करते रहते हैं। इस प्रकार मस्तिष्क तथा शरीरकी जो शक्ति नष्ट होती है, उसकी पूर्ति बिना गहरी नींदके हो ही नहीं सकती। लेकिन जब कि मनुष्यको गहरी नींद नहीं आती और वह करवटें बदलता या स्वप्न देखता रहता है, तब उसका मस्तिष्क और शरीर शान्ति नहीं पाता; क्षति ज्योंकी त्यों बनी रहती है, उसकी पूर्त्ति नहीं होती। नींद उसी समय नहीं आती, जब कि मनुष्य बहुत ही शिथिल और चिन्तित रहता है। और अधिक मानसिक श्रम करनेवालेका सदा शिथिल और चिन्तित रहना बहुत ही स्वाभाविक है। बहुत ही कम साहित्य-सेवी ऐसे होंगे, जिन्हें पूरी और गहरी नींद आती हो। व्यापारी लोग भी प्रायः सोनेके समय अनेक प्रकारकी चिन्ताएं किया करते हैं;

स्वप्नमें भी उन्हें सट्टे और नफे-नुकसानका ध्यान बना रहता है। जमीदारों और महाजनोंकी भी प्रायः यही दशा होती है। उन्हें नींद नहीं आती, इसलिये उनके मस्तिष्क और शरीरको भी विश्राम नहीं मिलता।

पोप जिन दिनों होमरका इलियड ग्रन्थ पढ़ता था, उन दिनों एक बार उसकी इच्छा हुई थी कि कोई मुझे फाँसी लटका दे, जिसमें इस ग्रन्थसे मेरा पीछा छूट जाय! फाँसी पर लटकनेके लिये तो आप तैयार थे, पर स्वयं पुस्तक नहीं छोड़ सकते थे! लार्ड आक्सफर्डके मनमें रातके समय जो विचार उठते थे, उन्हें लिखनेके लिये वे अपनी स्त्रीको एक रातमें चार-चार बार कागज आदि लानेके लिये जगाते थे। बोरहैवको एक बार बहुत अधिक अध्ययन करनेके उपरान्त छः हफ्ते तक बिलकुल नींद नहीं आई थी। गोलडोनीने बहुत अधिक परिश्रम करके एक सालमें छः नाटक तो अवश्य लिख डाले थे, पर इसके बाद वह जन्म भर और किसी कामका न रह गया था! पर जो लोग खूब सोते हैं उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है और वे अधिक दिनों तक जीते भी हैं, जो मनुष्य सचमुच काम करना चाहता हो, उसे उचित है कि वह सात-आठ घण्टे अवश्य सोया करे।

थोड़ीसी गहरी नींद भी आदमीकी सारी थकावट दूर कर देती है। पर झपकी, ऊँघ और स्वप्नोंसे थकावट ज्योंकी त्यों बनी रहती है। उस दशामें मस्तिष्क बराबर अपना काम करता है। सर आइजक न्यूटनने तो एक बार उसी दशामें गणित-सम्बन्धी एक बहुत कठिन समस्याकी मीमांसा तक कर डाली थी! दो एक ऐसे लेखक भी हो गये हैं, जिन्होंने सोनेके समय कोई विचार अधूरा ही छोड़ दिया था; पर उन्हें गहरी नींद आई और पड़े-पड़े

ऊँघनेकी दशामें ही उन्होंने वे विचार पूर्ण कर लिये ! अधिक मानसिक श्रम करनेवालोंमेंसे किसीने स्वप्नमें ही कोई आविष्कार तक कर डाला है और किसीने कविता भी करली है।

बहुतसे लोग रात-रात भर स्वप्न ही देखा करते हैं और उन्हें गहरी नींद नहीं आती। ऐसे आदमियोंके लिये यह जान लेना बहुत ही लाभदायक है कि नींदका अभ्याससे भी बहुत कुछ सम्बन्ध है। सिपाही और मल्लाह जब चाहते हैं, तब सो जाते हैं और जब चाहते हैं तब उठ बैठते हैं। नेपोलियन जब चाहता था, तब सो जाता था। लार्ड ब्रूहमको यदि पन्द्रह मिनटका भी समय मिलता तो नींद आ जाती थी। अमेरिकाके प्रसिद्ध आविष्कारक मि० एडिसन भी जब चाहते हैं, तब पन्द्रह मिनट तककी एक गहरी नींद ले लेते हैं। इंगलैण्डका प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और प्रधानमंत्री पिट भी इसी प्रकार सो लेता था। पर उसमें विशेषता यह थी कि वह सोये सोये पार्लीमेण्टके व्याख्यान और वाद-विवाद सुना करता था। एक बार किसी विवादके अवसर पर एक मेम्बरने कहा कि मंत्री महाशय सो रहे हैं। उसने चट आँखें खोल कर कहा—“नहीं, ईश्वर करता कि मुझे नींद आ जाती।” काशीमें ही हमारे एक मित्र हैं जो सोनेमें इन सब लोगोंसे बढ़े-चढ़े जान पड़ते हैं। वे नित्य रातको दूर-दूरके मन्दिरोंमें दर्शन करनेके लिये प्रायः पैदल ही जाते हैं और रास्तेमें चलते समय पूरी नहीं, तो बहुत कुछ नींद अवश्य ले लेते हैं ! उनमें सबसे बढ़कर विशेषता यह है कि वे कभी इक्के या गाड़ी आदिकी ठोकर नहीं खाते और निश्चित स्थान पर पहुँचनेसे दस-पाँच कदम पहले ही जाग भी जाते हैं।

एक विद्वान्‌का मत है कि जिस मनुष्यको अच्छी तरह नींद नहीं आती, वह कभी महत्त्व प्राप्त नहीं कर सकता। जो आदमी सब प्रकारकी चिन्ताएँ छोड़कर इच्छा करते ही सो सकता है, उसकी काम करनेकी शक्ति बराबर बनी रहती है और कभी नष्ट नहीं होती। सिकन्दर, नेपोलियन, पिट और वेलिंगटन आदि ऐसे ही लोग थे, जो इच्छा होते ही तुरन्त सो जाते थे। वेलिंगटन तकिये पर सिर रखते ही गहरी नदींमें सो जाता था। उसे कभी करवट बदलनेकी भी आवश्यकता नहीं होती थी। लार्ड पामर्स्टन हाउस आफ कामन्समें भी सोया करते थे; और इसी लिये वे बयासी वर्षकी अवस्था तक इतना काम कर सके। जेम्स वाट ने कदाचित् इसी लिये भाफके इंजिनका आविष्कार किया था कि वह दस-ग्यारह घण्टे रोज सोया करता था। नींद आनेसे आदमी का दिमाग ठिकाने रहता है, पर जिसे पूरी नींद नहीं आती, उसके पागल हो जानेकी सम्भावना रहती है। प्राचीन कालमें बहुतसे देशोंमें प्राण-दण्ड देनेकी एक प्रथा यह भी थी कि आदमी को सोने नहीं दिया जाता था और जो आदमी सोनेसे रोका जाता था, वह दस पन्द्रह दिनके अंदर अवश्य मर जाता था।

मनुष्य को किस प्रकार नींद आ सकती है, इसके सम्बन्धमें बहुत से लोगोंके भिन्न-भिन्न मत हैं। किसीका मत है कि आदमी को तड़के उठना चाहिए, इससे उसे रात को जल्दी और गहरी नींद आवेगी। किसीका मत है कि अधिक शारीरिक श्रम करना या कमसे कम सोनेके कुछ पहले चार-पाँच मील पैदल चलना चाहिए। कुछ लोगोंने इसके लिये कृत्रिम उपाय भी बतलाये हैं। एकने कहा है कि सोनेके समय पहाड़ा पढ़नेसे जल्दी नींद

आ जाती है। एक ने कहा है कि कोई प्रसिद्ध कविता पढ़नी चाहिए। एक पादरी उस समय तक ईश्वर-प्रार्थना किया करता था, जब तक कि शैतान आकर उससे उसका पीछा छुड़ाकर उसे सुला न देता था। एक आदमीने कहा है कि एक कल्पित बिन्दु पर बहुत देर तक निगाह जमानेसे नींद आ जाती है। एक डाक्टरका मत है कि पन्द्रह-बीस मिनट तक ठंडी हवामें गहरी साँस लेनेसे आदमी तुरन्त सो जाता है। एक का मत है कि दाहिनी करवट लेट कर और खूब आरामसे तकिये पर सिर रख कर खूब गहरी साँस खींचनी चाहिए और तब उसे धीरे-धीरे छोड़ना चाहिए। साथ ही साँस छोड़नेके समय कल्पना करनी चाहिए कि हमारी नाकमेंसे हवाकी एक धारा निकल रही है और उस कल्पित धारा पर दृष्टि जमानी चाहिए। इस क्रियासे तुरन्त नींद आ जायगी। एक दूसरे आदमीका मत है कि सोनेसे थोड़ी देर पहले और सब कामोंके अन्तमें कोई ऐसा काम करना चाहिए जिसका दिन भरके और सब कामोंसे कोई सम्बन्ध न हो। इसी प्रकारके और भी अनेक उपाय हैं। पर सबसे अच्छा उपाय यही है कि मनुष्य दिनमें खूब शारीरिक श्रम करे, अथवा सन्ध्या के समय खूब लम्बा चक्कर लगावे और बढ़िया ठण्डी हवाका सेवन करे।

ऐसे लोगोंको क्या कहा जाय, जो पूरी नींद तो लेते नहीं, उलटे नींदको रोकनेके लिये तरह-तरहके उपाय करते हैं। पश्चिमी देशोंमें और उनकी देखा-देखी पूर्वी देशोंमें भी लोग जागनेके लिये चाय, कहवा या कई तरहकी शराबें पीते या अफीम खाते हैं। अधिकांश युरोपीय साहित्य-सेवी कहवेका इस्तेमाल करते हैं। पर उसके कारण किसीकी गांठों में दर्द होने लगता है और किसी

की आंखोंकी ज्योति जाती रहती है। किसी-किसीको सदा बुखार भी बना रहता है। किसी-किसीने तो अधिक कहवा पीकर थोड़ी ही अवस्थामें अपने प्राणों तकसे हाथ धोये हैं। कहवेमें उत्तेजना-शक्ति अवश्य होती है, पर उसका अन्तिम परिणाम बहुत ही बुरा होता है। मिचेलेटने लिखा है कि अठारहवीं शताब्दीमें फ्रान्सीसियों के मनमें जो-जो क्रान्तिकारक विचार और भाव उठे थे, उसका मुख्य कारण यही था कि उन दिनों वहाँके लोग कहवे-का बहुत अधिक व्यवहार करते थे और इधर उनकी तबीयतके दब जानेका कारण यह है कि वे तमाखूका बहुत अधिक व्यवहार करने लगे हैं।

जागनेके लिये बहुतसे लोग चायका भी व्यवहार करते हैं। डा० जान्सन जागनेके लिये प्राय: बीस प्याले चायके पीया करते थे। कभी-कभी रातके चार बजे तक उनके लिये चाय बना करती थी। जब उन्हें आगे चलकर उन्निद्र रोग हो गया, तब उन्होंने यह भी समझ लिया था कि इसका कारण चाय ही है। हैजलिट बहुत बढ़िया और मँहगी एक पाउण्ड चाय एक हफ्तेमें पी जाता था! इसीसे उसका हाजमा बिगड़ गया था, जिसके परिणाम-स्वरूप वह बहुत जल्दी मर गया। शराब पीकर उसने अपना रोग और भी बढ़ा लिया था। वाटर्लूके युद्धमें जब नेपो-लियन हार गया, तब उसकी हारसे हैजलिट बहुत ही दुखी हुआ था। हफ्तों तक वह बिना नहाये और बिना हजामत बनवाये दिन-रात इधर-उधर घूमा करता था और चौबीसों घण्टे शराब-में बदमस्त रहता था। कई हफ्तोंके बाद अन्तमें मानों उसकी नींद टूटी, वह चैतन्य हुआ और उसके उपरान्त उसने शराब

पीना बिलकुल छोड़ दिया। फिर आमरण उसने कभी शराबको छूआ भी नहीं!

बहुतसे मानसिक श्रम करनेवालोंमें शराब छोड़नेका नैतिक साहस नहीं होता। उनका मस्तिष्क तो यों ही क्षुब्ध रहता है, जागनेके लिये किसी प्रकारके मादक द्रव्यके सेवनकी तो उन्हें आवश्यकता ही नहीं रहती। उन्हें तो उलटे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, जिसमें उन्हें नींद आवे। पर वे सदा जागनेके लिये मादक द्रव्योंका ही व्यवहार करते हैं। शराब आदिका बहुत अधिक व्यवहार मनुष्यको शारीरिक हानि भी पहुँचाता है और नैतिक भी। प्राचीन कालमें जितने बड़े-बड़े महाकवि और कवि हो गये हैं, वे कभी शराब नहीं छूते थे और इसीलिये उनके महाकाव्य और काव्य आज-कलके शराबी कवियोंकी कविताओंसे कहीं बढ़कर है। पर आज-कलके कवियोंको तो शराबकी लत-सी पड़ गई है। बेन जान्सन दिन-रात शराब पीता था। एक बार एक दोस्तके साथ बहुत अधिक शराब पीनेके कुछ ही समय उपरान्त शेक्सपियरकी मृत्यु हुई थी। काले एक बार किसी देहातमें अपने एक मित्रके यहाँ शराब पीने गया था। बहुत अधिक शराब पीनेके कारण वह बे-होश हो गया और घरका रास्ता भूल गया। कुछ देर बाद वह एक खेतमें गिर पड़ा और रातभर वहीं खुलेमें पड़े रहनेके कारण मर गया। ओटवेकी मृत्यु भी शराबसे हुई थी। बॉयस शराब पीकर सड़क पर गिर पड़ा था। उसके ऊपरसे एक गाड़ी चली गई और वह मर गया। एडिसन लिखनेके समय बराबर शराब पीता जाता था। लिखाई खतम होनेसे पहले उसकी शराबकी बोतल खाली हो जाती थी। स्टील तो शराब खानेमें ही बैठ कर लिखा करता

था। पोपकी अकाल मृत्यु भी बहुत अधिक शराब पीनेके कारण हुई थी।

गोल्डस्मिथ भी बड़ा भारी शराबी था। एकबार मकानका किराया न चुकाने के कारण उसके यहाँ कुर्की आई और वह गिरफ्तार हो गया। उसका हाल सुनकर डा० जान्सनने एक गिनी भेजी और कहलाया कि मैं अभी आता हूँ। गोल्डस्मिथने समझ लिया कि जान्सन तो आते ही हैं, उस गिनीकी शराब मँगा ली। जान्सन ने आकर पूछा कि अब किराया कहाँसे चुकाओगे? उसने उत्तर दिया—"मेरे पास एक उपन्यास तैयार है।" वह उपन्यास Vicar of Wakefield था। जान्सनने ६० पाउण्ड पर वह उपन्यास एक प्रकाशकके हाथ बेच डाला। किराया चुका दिया गया, जान्सन और चपरासी चले गये; गोल्ड-स्मिथने तब फिर मालिक-मकानसे एक प्याला शराबका माँगा। बर्न्स तो सिर्फ अपने दोस्तोंकी खातिर ही बहुत शराब पीता था। पादरी लागेन एक बार शराबके नशेमें ही उपदेश देनेके लिये गिरजेमें पहुँच गया था। सर वाल्टर स्काटने धीरे-धीरे शराब कम करके सिगरेट पीना आरम्भ किया था। अपने लड़केसे उसने कहा था—"रोज थोड़ीसी शराब पीनेसे भी मेदा खराब हो जाता है और मैं शराब पीता था इस लिये तुम्हारा मेदा तो और भी कमजोर है।" शराबके कारण बाइरनकी सदा बहुत ही बुरी दशा रहा करती थी। वह बिलकुल वहशी, शक्की और झगड़ालू हो गया था। कीट्स एकबार एक तीव्र आलोचनाके कारण इतना दुखी हुआ था कि छः हफ्ते तक वह दिन-रात शराब ही पीता रहा। चार्ल्स लैम्बको रास्तेमें जो शराब खाना मिलता था, उसीमें वह घुस

जाता था। पीछेसे उसने शराब छोड़कर तमाखू पीना आरम्भ कर दिया था। डी किन्सी और कालेरिज अफीम खाया करते थे। कालेरिज बहुत अधिक अफीम खाता था, जिसके कारण अन्तिम चौदह वर्षोंमें उसकी बड़ी ही दुर्दशा हुई थी। पर इसके बाद कुछ दिनोंमें उसने अपनी दशा थोड़ी बहुत सुधार ली थी। उसका लड़का हार्टली यद्यपि अच्छा प्रतिभाशाली था; पर शराबी होनेके कारण उसने भी अपने आपको चौपट कर दिया था। छापेखानेवालोंको जब कम्पोज करनेके लिये कापी की जरूरत होती थी, तब वे लड़कोंको शराब खानोंमें उसे ढूँढ़नेके लिये भेजा करते थे। उसके एक परम मित्रने जब देखा कि वह रोज दो पहर तक शराबके नशेमें बे-होश पड़ा रहता है, तब उसने उससे मिलना तक छोड़ दिया था। स्वयं हार्टली शराबके दोषोंसे बहुत अच्छी तरह परिचित था; पर वह अपनी बुरी आदत छोड़ नहीं सकता था और जानबूझ कर उसका शिकार बनता था। उसकी इच्छा शक्तिकी दृढ़ता बिलकुल नष्ट हो चुकी थी। उर्दूके सुप्रसिद्ध कवि मिरजा गालिब भी बड़े भारी शराबी थे। शराबके कारण ही वे प्रायः दरिद्र बने रहा करते थे और बहुत कुछ कर्जदार भी बने रहते थे। एक बार महाजनोंने नालिश कर दी। आपने अदालतमें पहुँचते ही कहा—

कर्जकी पीते थे मै लेकिन समझते थे कि हाँ।
रंग लाएगी हमारी फाकः मस्ती एक दिन॥

मि० महमूद जो प्रयाग हाईकोर्टमें कुछ दिनों तक जज भी रह चुके थे, बड़े भारी शराबी थे। एक बार आपको लखनऊकी एक अदालतमें बहस करनेके लिये जाना था। सुनते हैं, उस समय आप शराबके नशेमें इतने चूर थे कि दो आदमियोंको दोनों ओरसे

पकड़कर आपको अदालत तक ले जाना पड़ा था। बहुत अधिक शराब पीनेके कारण ही आपकी मृत्यु प्रायः चालीस ही वर्षकी अवस्थामें हो गई थी। उर्दूके सुप्रसिद्ध लेखक पं० रत्ननाथ सरशार भी दिन-रात शराबके नशेमें चूर रहते थे और इसीके कारण उनकी मृत्यु भी थोड़ी ही अवस्थामें हो गई। जब वे प्रयाग हाईकोर्टमें अनुवादक थे, तब जेबमें शराबकी बोतल रख कर हाईकोर्ट जाया करते थे। प्रयागमें उनका चार वर्षका जो लड़का मरा था, उसके सम्बन्धमें यही प्रसिद्ध है कि उसे स्वयं उन्होंने ही शराबके नशेमें छत परसे नीचे फेंक दिया था। हिन्दीके लेखकोंमें ब्लाकटानन्द और राजा रामपालसिंह परले सिरेके शराबी थे और पं० रामगरीब चौबे तो शराबके सिवा अफीम, भाँग और गाँजेकी भी खबर लिया करते थे। और उनके थोड़ी अवस्थामें मर जानेका यही कारण था। कलकत्तेके श्रीयुत हरिनाथ दे जो बहुतसी भाषाओंके एम० ए० थे, केवल बहुत अधिक शराब और ताड़ी पीनेके कारण प्रायः ३२-३३ वर्षकी अवस्थामें मर गये थे।

बहुतसे ऐसे बड़े-बड़े विद्वान् भी हो गये हैं जिनका शरीरान्त केवल बहुत अधिक मानसिक श्रम करनेके कारण ही हुआ है। यदि ऐसे लोग बहुत अधिक मानसिक श्रम करनेके साथ-साथ मादक द्रव्योंका सेवन भी आरम्भ कर दें, तो उनका और भी अल्प आयुमें मर जाना बिलकुल स्वाभाविक है। वास्तवमें मानसिक श्रम करनेवालोंको मानसिक विश्रामकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है; इसलिये उन्हें तो मादक द्रव्योंसे और भी दूर रहना चाहिए।

अधिक मानसिक श्रमसे मनुष्यको उन्निद्र रोग हो जाता है और उसकी पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है। साथ ही कभी-कभी

उसे एक प्रकारका उन्माद या मालीखौलिया भी हो जाता है। सर आइजिक न्यूटनको एक बार प्रायः पन्द्रह दिन तक बिलकुल नींद न आई थी, जिसके परिणाम-स्वरूप उनका दिमाग खराब हो गया था। कई महीने तक विश्राम करनेके उपरान्त कहीं जाकर उनका दिमाग दुरुस्त हुआ था। इसी प्रकार और भी ऐसे बहुतसे लोग हो गये हैं, बहुत अधिक मानसिक श्रम करनेके कारण जिनका दिमाग खराब हो गया था। यहाँ तक कि बड़े-बड़े विदूषकों और मसखरोंको भी मालीखौलिया हो जाता है। डाक्टरने अपने एक रोगीसे कहा—"तुम्हें चित्तकी थोड़ी प्रसन्नता की आवश्यकता है। इस लिये तुम प्रसिद्ध विदूषक ग्रिमाल्डीके पास जाओ। वह तुम्हें केवल हँसा कर अच्छा कर देगा।" रोगीने उत्तर दिया—"महाशय! मैं ही ग्रिमाल्डी हूँ।" प्रसिद्ध नाटककार और विदूषक मोलियरको भी मालीखौलिया हो गया था। टस्सो, जान्सन, स्विफ्ट, बाइरन आदि भी इस रोगसे नहीं बचे थे। टस्सोको कहीं चैन ही नहीं पड़ता था। वह जहाँ जाता था, वहाँ उसे तरह तरहके भीषण शब्द सुनाई पड़ते थे। और जान पड़ता था कि चारों तरफ लपटें निकल रही हैं। गेलीलियो और नेपोलियनका दिमाग भी कुछ खराब हो गया था। स्मालेट-को कहीं कुछ अच्छा ही नहीं लगता था। उसने सारे युरोपकी यात्रा कर डाली, पर कहीं उसका जी न लगा।

सुप्रसिद्ध कवि काउपरको कुछ भी हजम न होता था, इसीलिये उसे मालीखौलिया हो गया था। वह सदा दुखी और चिन्तित रहता था। इसी दुःख और चिन्तामें उसने हास्य-रस-पूर्ण एक बहुत अच्छा काव्य भी लिख डाला था। जान लीच एक बहुत अच्छा चित्रकार था, जिसके बनाये हुए हास्य-चित्रोंसे प्रसिद्ध

हास्य-रस-पूर्ण पत्र "पंच" की शोभा बहुत बढ़ गई थी। पर स्वयं लीचको भी मालीखौलिया था। डाक्टरोंके मना करने पर भी वह बराबर परिश्रम करता ही जाता था, इसलिये बहुत जल्दी उसका दिमाग खराब हो गया और अन्तमें बहुत अधिक कार्य्य करनेके कारण ही वह शीघ्र मर गया। उसका अन्तिम हास्य-चित्र उसके मरनेके दिन "पंच" में प्रकाशित हुआ था। प्रसिद्ध कवि कीट्स और शेलीके दिमागने भी कुछ दिनों बाद जबाब दे दिया था। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि न तो वे कुछ सोच सकते थे और न समझ सकते थे।

जिस समय मस्तिष्कको बहुत अधिक काम करना पड़ता है, उस समय खून बहुत तेजीसे मस्तिष्ककी ओर दौड़ता है। मेटा-स्टासियो जब काम करने बैठता था, तब उसका खून इतनी तेजी और इतनी अधिकतासे मस्तिष्ककी ओर दौड़ता था कि उसका चेहरा बिलकुल लाल और शराबियोंका-सा हो जाता था और प्रायः लाचार होकर उसे काम छोड़ देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त बहुत अधिक मानसिक श्रम करनेके समय यह भी होता है कि उस समय यदि थोड़ासा श्रम और किया जाय तो उसका बहुत ही बुरा परिणाम होता है। एक विद्वान्का एक अच्छी पुस्तक पढ़नेके समय हृदय धड़कने लगा था। एक कवि बहुत दिनों तक एक वाक्यकी तलाशमें था। जब एक दिन संयोग-वश उसे वह वाक्य मिल गया, तब उसे इतनी प्रसन्नता हुई कि उसकी ज्ञान-शक्तिने कुछ देरके लिये जबाब दे दिया। स्विफ्ट बहुधा बड़ी तेजीसे काँपने लग जाता था, उसके सिरमें बहुत दर्द होने लगता था और कानोंमें तरह-तरहकी आवाजें सुनाई देने लगती थ। थामस हुड केवल बहुत अधिक मानसिक श्रम

करने और बहुत जागनेके कारण ही एक बार बहुत सख्त बीमार हो गया था। यहाँ तक कि उसके फेफड़ेमें से खून निकलने लग गया था और वह मरनेके करीब हो गया था।

बीटी अपनी लिखी पुस्तकको लिखनेके उपरान्त फिर कभी एक बार भी उसे नहीं पढ़ सकता था। उसका एक मित्र प्रूफ देख दिया करता था। इसका कारण उसने यह बतलाया है कि "लिखी हुई पुस्तक को फिरसे पढ़नेमें मेरे ज्ञान-तन्तुओं पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता था और मुझे उसके पढ़नेमें बहुत कष्ट होता था। इस कष्ट का कारण यह था कि जिन दिनों मैं अपनी पुस्तक लिखनेके लिये अन्य पुस्तकोंका बहुत अध्ययन किया करता था, उन दिनों पढ़नेके उपरान्त मुझे बहुत ही भय लगता था और लिखी हुई पुस्तकको फिरसे पढ़नेसे मुझे फिर उसी भयका स्मरण हो आता था।" सर वाल्टर स्काटने पैंतालिस-छियालिस वर्षकी अवस्थामें बहुत अधिक परिश्रम किया था और लगातार कई बड़े-बड़े उपन्यास लिख डाले थे। परिणाम यह हुआ कि उसके पेटमें मरोड़ होने लगा। वह बहुत ही दुर्बल हो गया था, पढ़नेके समय उसकी आँखोंके आगे अन्धेरा छा जाता था, हरदम उसके कान में तरह तरहकी आवाजें सुनाई पड़ती थीं, जिससे वह और कुछ भी न सुन सकता था और न कुछ सोच-विचार ही सकता था। कुछ आराम होते ही उसने फिर लिखना आरम्भ कर दिया। दो तीन पुस्तकें लिखनेके उपरान्त फिर उसकी बीमारीका दौरा हुआ, तब उसने लाचार होकर परिश्रम करनेके लिये अफीमका सेवन आरम्भ कर दिया। वह साल भरमें प्रायः बारह जिल्दें लिखा करता था। जब डाक्टरने उसे बहुत अधिक श्रम करनेसे मना किया, तब उसने कहा कि स्वस्थ दशामें मुझसे काम न करने

के लिये कहना वैसा ही है, जैसा कि किसी पानी भरे हुए बरतन को चूल्हे पर चढ़ा कर पानीसे कहना कि तुम खौलो मत। आखिरी बार फिर उसकी बीमारीका दौरा हुआ। उस समय उस का चित्त बहुत ही दुखी और भयभीत रहता था। एक दिन वह एक शब्द भी शुद्ध नहीं लिख सका था और न कुछ सोच या समझ ही सकता था। उसे कई कई रोग एक साथ ही हुए, पर फिर भी उसने काम करना न छोड़ा। वह समझता था कि इतना अधिक परिश्रम करनेसे आदमी मर जाते हैं; पर फिर भी उसे बहुतसा ऋण चुकाना था, इसलिये वह बराबर परिश्रम करता ही जाता था। जब उसका रोग बराबर बढ़ने लगा, तब उसने भ्रमण प्रारम्भ किया। लेकिन उसका भी कुछ फल न हुआ; क्योंकि साथ ही साथ वह काम भी करता जाता था। उनसठ वर्षकी अवस्थामें उसे लकवा मार गया, पर तब भी उसने लिखना न छोड़ा। डाक्टरोंका कहना भी उसने नहीं माना। दूसरे वर्ष उसे लकवेका दूसरा दौरा हुआ। पर फिर भी उसका काम बराबर उस समय तक जारी रहा, जब तक कि मृत्युने आकर उसे सब कामोंसे रोक न दिया।

स्काटका दामाद लॉकहार्ट भी बहुत अधिक मानसिक श्रम करनेके कारण ही मरा था। सूदे भी बहुत अधिक मानसिक श्रम करता था, इसलिये उसका दिमाग खराब हो गया था। स्काटकी तरह वह भी बिना काम किये रह ही न सकता था। वह जब टहलनेके लिये निकलता, तब भी कुछ न कुछ पढ़ता या नोट करता रहता था। आगे चल कर उसका दिमाग बिलकुल खराब हो गया था और वह कुछ भी काम करने योग्य न रह गया था। जान गाल्ट, जिसने इतिहास और अर्थ-शास्त्रके

बहुतसे ग्रन्थ और लेख आदि लिखे हैं, हरदम लिखता ही रहता था। लकवेके कारण जब वह स्वयं लिखनेमें असमर्थ हो गया, तब दूसरोंसे बोलकर लिखाने लगा। उसे चौदह बार लकवेके दौरे हुए और अन्तमें वह मर ही गया। कवि हेन भी बहुत अधिक श्रम करनेके कारण बीमार हो गया था और आठ वर्ष तक बहुत बीमार रह कर मरा था। पर अन्त समय तक उसने भी काम नहीं छोड़ा था। सन् १८५५ में पेरिसमें एक बहुत बड़ी प्रदर्शिनी हुई थी। उस समय रास्तेमें एक आदमीने उससे उसकी तबीयतका हाल पूछा। उसने कहा—“मेरे ज्ञान-तन्तु इस समय ऐसी बढ़िया दशामें हैं कि मुझे दृढ़ विश्वास है कि यदि मैं उन्हें प्रदर्शनीमें दिखला सकूँ, तो पीड़ा और दुःखके लिये उन्हें एक बढ़िया पदक मिलेगा।” अपने रोगके सम्बन्धमें वह बहुतसी डाक्टरी किताबें पढ़ा करता था और कहता कि “इन पुस्तकोंके पढ़नेसे इसके सिवा और क्या लाभ होगा कि मैं स्वर्गमें यह व्याख्यान दे सकूँगा कि मृत्युलोकमें डाक्टर लोग इस रोगके सम्बन्धमें बहुत ही अज्ञान हैं।”

पादरी राबर्टसन लिखता भी था और उपदेश भी देता था। उसके सिरमें बहुत दर्द होता था, दिमाग़में चक्कर आता था और रातभर उसे नींद न आती थी। एक बार एक व्याख्यान देनेके समय उसके दिमाग पर इतना जोर पड़ा कि जब वह व्याख्यान समाप्त करके दूसरे स्थान पर व्याख्यान देनेके लिये जाने लगा, तब रास्तेमें ही बेहोश होकर गिर पड़ा। लोग उसे उठा कर एक दवाखानेमें ले गये। ज्योंही उसकी तबीयत कुछ ठहरी, त्यों ही वह दूसरा व्याख्यान देनेके लिये चल पड़ा। उसने एक स्थान पर लिखा है—“मैं जो विचार करता हूँ या जो सतर

लिखता या पढ़ता हूँ, उससे मेरे दिमागमें बहुत सख्त और कभी कभी मामूली दर्द होता है।" कई डाक्टरोंने उसका इलाज किया, पर फल कुछ भी न हुआ; क्योंकि वह काम नहीं छोड़ता था। सिरके दर्दके कारण वह कभी-कभी पागल हो जाता था। पर ज्योंही उसका दर्द कम होता था, त्योंही वह फिर पढ़ने या काम करने लग जाता था। अन्तमें सैंतीस वर्षकी अवस्थामें उसका देहान्त हो गया।

मानसिक श्रम करनेवालोंका जीवन बड़ी बड़ी कठिनाइयोंसे भरा होता है। एक स्त्रीने लिखा है—"जो मनुष्य किताबें लिख कर अपनी जीविका-निर्वाह करता हो, वह बड़ा ही अभागा है। मोचीको तो उसकी मजदूरी अवश्य मिलेगी; पर ग्रन्थकारके लिये कुछ भी मिलना निश्चित नहीं है।" कालेरिजने लिखा है—"साहित्य-सेवाको कभी व्यवसाय न बनाओ; इसमें मनुष्य न तो सुखी रहता है और न नीरोग।" पर मेकालेकी सम्मति साहित्य-सेवाके पक्षमें थी। पाइनेलने कहा है कि जो लोग बहुत अधिक बुद्धिमान् या प्रतिभाशाली होते हैं, वे अपने मानसिक श्रमके कारण ही मरते हैं। फिर भी लोग प्रतिभाशाली और बुद्धिमान् होनेकी प्रबल इच्छा रखते हैं। साहित्यमें महत्त्व प्राप्त करनेके लिये लोगोंको बदलेमें बड़े बड़े दण्ड—बड़ी बड़ी विपत्तियाँ सहनी पड़ती हैं। उसके लिये मनुष्यको मानसिक और शारीरिक श्रम करना पड़ता है, आत्म-त्याग करना पड़ता है, सुख-चैन छोड़ना पड़ता है और प्रायः विपत्तियाँ भी झेलनी पड़ती हैं। प्रतिभाके कारण जहाँ मनुष्यकी कीर्ति होती है, वहाँ उसे दुःख भी सहना पड़ता है।

संसारकी सभी चीजें जल्दी नष्ट हो जाती हैं। जीवन बहुत

शीघ्र व्यतीत हो जाता है, मृत्यु अवश्य और बहुत शीघ्र आती है। साहित्य-क्षेत्रमें लोग क्यों उतरते हैं? क्या यश और कीर्त्तिके लिये? इतने बड़े संसारके एक छोटेसे कोनेमें यदि किसीका कुछ नाम हो ही जाय, तो उससे क्या होता है? किसी बहुत बड़ी झीलके एक कोनेमें यदि एक कंकड़ी गिरनेके कारण कुछ क्षोभ ही हो जाय, तो उससे क्या होता है? सौन्दर्य्य क्या है? वह एक ऐसा गुलाब है जो एक ही दिन रहता है। स्वास्थ्य क्या है? वह एक ऐसी ईश्वरीय देन है, जिसे तुम क्षण भरमें खो सकते हो। यौवन और बल क्या है? दोनों ऐसे खजाने हैं, जिन्हें काल नित्य खाली करता रहता है। मनुष्यके सभी सुख नश्वर हैं। इतने बड़े विश्वमें मनुष्य कैसा तुच्छ पदार्थ है? इस अनन्त कालके सामने उसका छोटासा जीवन क्या चीज है? ज्ञानके इतने विशाल और अनन्त भाण्डारमें भी एक मनुष्यके पल्ले कितना थोड़ा ज्ञान पड़ता है? ये सब बातें ऐसी हैं, जिन पर थोड़ा सा विचार करते ही बड़े बड़े समझदार उदास और दुखी हो जाते हैं—उनकी अक्ल कुछ भी काम नहीं करती।

लेकिन इसके साथ ही एक बात और भी है। अपनी सभी शक्तियोंकी वृद्धि और उपयोग करना भी प्रत्येक मनुष्य और स्त्री का परम कर्तव्य और धर्म्म है। मन और शरीरका प्रत्येक कार्य पूरा पूरा और बहुत ही अच्छी तरह होना चाहिए। हमें सब बातोंका ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए और हमें अपने कर्तव्यों का पालन भी करना चाहिये, पर इस बातका सदा ध्यान रहना चाहिए कि किसी काम या किसी बातमें अति न हो, क्योंकि अतिका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। जो मनुष्य

किसी काममें अति नहीं करता, सब शक्तियोंका समान-रूपसे उपयोग करता है, वह बड़े ही सुखसे अपनी पूरी आयु तक जीवित रहता है और इस प्रकार अपने जीवनको बढ़ाकर उसका सदुपयोग कर सकता है।

दार्शनिक तथा धनवान् और जमींदार आदि ऐसे लोग जिनकी आय निश्चित होती है और जिन्हें उसके लिये चिन्ता नहीं करनी पड़ती, प्रायः अपनी पूरी आयु भोगते हैं। उनसे कम उमर व्यापारियों और देहातियों या मालियों आदिकी होती है और उनसे भी कम चिकित्सकों और कसाइयोंकी। कल-कारखानों और खानों आदिमें काम करनेवालों और सङ्गतराशों आदिकी आयु उनसे भी कम होती है। स्त्रियोंको जीविकाकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती, इसलिये उनकी आयु पुरुषोंसे अधिक होती है। व्याहे हुए आदमी बिना व्याहे हुए आदमियोंसे अधिक जीते हैं। सदाचारी और परोपकारी मनुष्य भी अपेक्षाकृत अधिक दिनों तक जीवित रहते हैं। नैतिक शुद्धता और शारीरिक स्वास्थ्यका प्रायः उतना ही घनिष्ठ सम्बन्ध है, जितना कि आत्मा और शरीरका है। इसके अतिरिक्त चित्तकी शान्ति और सुखका भी दीर्घ जीवनके साथ बहुत कुछ सम्बन्ध है।

आज-कल मानसिक श्रम बहुत ही बढ़ता जा रहा है, जिसके कारण लोगोंकी आयु बहुत घटने लग गई है। आज-कल लोग पढ़ाई पर इतना ज्यादा जोर देते हैं कि मानों हमें अपने शरीर और मस्तिष्ककी चिन्ताकी आवश्यकता ही नहीं है। विद्यार्थियोंमें भी खूब प्रतिद्वन्द्विता होती है और शिक्षकोंमें भी। छोटे छोटे बालकोंके कोमल मस्तिष्कसे बहुत अधिक काम लिया जाता है और बहुत ही थोड़ी अवस्थामें उन्हें बहुत अधिक ज्ञान कराने

का प्रयत्न किया जाता है और इसके लिए उन्हें पुरस्कार दिये जाते हैं। पर उस स्वास्थ्यका कुछ भी ध्यान नहीं रखा जाता, जिसके सामने ये पुरस्कार बिलकुल तुच्छ हैं। यही कारण है कि अच्छे अच्छे पुरस्कार पानेवाले बालक आगे चलकर बिलकुल निकम्मे और बे-काम हो जाते हैं। जो बालक बोदे और मूर्ख होते हैं, वे बड़े होकर उन तेज और बुद्धिमान् बालकोंसे कहीं अच्छे निकलते हैं। ज्ञान तो आगे चल कर भी अर्जित किया जा सकता है; पर स्वास्थ्य जब एक बार नष्ट हो जाता है, तब वह फिरसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस लिये स्वास्थ्यको नष्ट करनेकी अपेक्षा मस्तिष्कको खाली छोड़ देना ही कहीं अच्छा है। आज-कलकी परीक्षा एक ऐसी वेदी है, जिस पर माता-पिता अपने बालकोंकी बलि चढ़ाते हैं। बड़ी बड़ी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होनेके उपरान्त उनमें प्रायः कुछ भी तत्त्व नहीं रह जाता। जो फल जल्दी पकता है, वह जल्दी सड़ भी जाता है।

शिक्षाका वास्तविक उद्देश्य यह होना चाहिए कि युवक जिस समय संसारमें प्रवेश करे, उस समय उसे अपने ऊपर तथा अपनी शक्तियों पर पूरा पूरा अधिकार हो। शक्तियोंके नष्ट हो जाने पर शिक्षा प्रायः निरर्थक होती है। सन् १८८२ के अन्तमें टाइम्स पत्रमें निकला था कि सिविल-सर्बिस-परीक्षामें उत्तीर्ण,जो सौ सिविलियन बम्बई प्रान्तमें नियुक्त हुए थे, उनमें नौ मर गये और दोको अपनी दुर्बलताके कारण काम छोड़ देना पड़ा। दस सिविलियन उनमेंसे ऐसे निकले जिनकी शारीरिक अवस्था देखकर डाक्टरोंने उन्हें कामके अयोग्य ठहरा दिया। दो आदमी जीन-सवारी अच्छी तरह न कर सकनेके कारण अलग कर दिये गये और आठ करीब करीब पागल हो गये! जब शासक-वर्गमें पहुँचे हुए लोगों

का यह हाल है, तब और वर्गोंकी क्या दशा होगी ? आज-कल जिधर देखो उधर स्त्री-शिक्षाकी ही धूम है। सब लोग बालिकाओं और स्त्रियोंको पढ़ानेकी ही धुनमें लगे हैं। पर उन्हें यह नहीं मालूम कि अधिक मानसिक श्रमका बालकों और पुरुषोंकी अपेक्षा बालिकाओं और स्त्रियों पर और भी बुरा परिणाम होता है। पाश्चात्य देशोंमें स्त्री-शिक्षाके कारण जो अनेक दोष उत्पन्न हुए हैं, उनमें स्त्रियोंके स्वास्थ्यकी हानि भी एक है। बड़े बड़े विद्वान् अब इस बातको मानने लगे हैं कि पुरुषोंके जिन कामोंमें स्त्रियाँ आजकल लगाई जाती हैं, उनमेंसे अधिकांशके लिये वे बिलकुल अयोग्य और असमर्थ होती हैं। जिन स्त्रियोंको लोग पढ़ा-लिखाकर और उनसे तरह तरहके काम लेकर बिलकुल रोगी बना देते हैं, उनकी सन्तानसे भला क्या आशा की जा सकती है। तात्पर्य यह कि आज-कल जिन उपायोंसे लोगोंको शिक्षा देकर उन्नत करनेका प्रयत्न किया जाता है, वास्तवमें वे ही उपाय उनकी अवनतिके कारण होते हैं।

इन दोषों पर बड़े बड़े विद्वानोंका ध्यान बहुत पहले आकृष्ट हुआ था और सन् १८६५ में ब्रिस्टल नगरमें जो Science Congress हुई थी, उसमें कई बड़े बड़े डाक्टरों और विद्वानोंने कहा था कि प्रस्तुत शिक्षा-प्रणाली बालकोंको बहुत कुछ शारीरिक हानि पहुँचाती है और विशेषतः स्त्रियोंके लिये तो वह और भी घातक होती है। आजकल बालकोंके स्वास्थ्यका तो थोड़ा बहुत ध्यान रखा जाता है, पर इस बातका प्रयत्न नहीं होता कि उनके मस्तिष्क पर जोर कम पड़े। स्त्रियोंको मानसिक श्रम करनेसे रोकनेके बदले उलटे उन्हें और अधिक उत्तेजना दी जाती है और इस प्रकार मनुष्य-जातिको हानि पहुँचाई जाती है।

स्त्रियोंका शारीरिक संगठन ऐसा नहीं होता कि वे अधिक श्रम सह सके। अतः उन्हें कभी अधिक-श्रम-साध्य कामोंमें न लगाना चाहिए। यह मत हमारा नहीं; बड़े बड़े डाक्टरों और विद्वानों का है। अतः जो लोग स्त्रियोंको खूब पढ़ा-लिखा मर्दोंकी तरह उन्हें बैरिस्टर और डाक्टर बनाने अथवा जल या स्थल-सेनामें भर्ती होनेके योग्य बनानेकी धुनमें हों, उन्हें उक्त विचारोंसे लाभ उठा कर समय पर ही सावधान हो जाना चाहिए।

सातवाँ प्रकरण

स्वास्थ्य और मनोविनोद

जब बहुत अधिक शारीरिक या मानसिक श्रम करनेसे मनुष्य बिलकुल थक जाता है, तब उसे विश्रामकी आवश्यकता होती। विश्राम करनेसे उसकी नष्ट शक्तियोंकी फिरसे पूर्त्ति होती है और तब मनुष्य फिर पहलेकी तरह ज्योंका त्यों शक्तिशाली हो जाता है। स्वयं निद्रा भी विश्राम ही है और यह निद्रा जितनी ही गाढ़ होगी, शरीरकी नष्टशक्तियोंकी उतनी ही अधिक पूर्त्ति होगी। लेकिन इसके अतिरिक्त मानसिक श्रम करनेवालोंके लिये एक और प्रकारके विश्रामकी आवश्यकता होती है और वह विश्राम कार्य्यके रूपमें होता है। भिन्न भिन्न जातियोंका विश्राम एक दूसरेसे भिन्न प्रकारका होता है। हम भारतवासी प्रायः इधर उधर घूम-फिर कर, जंगलों और देहातोंमें जाकर, भिन्न भिन्न स्थानों और प्रकारोंकी यात्राएँ करके और हममेंसे कुछ लोग सैर-शिकार करके विश्राम करते हैं।

जिस क्रियासे हमारे फेफड़ोंको खूब अच्छी तरहसे फैलनेका अवसर मिले, हम उसीको व्यायाम कह सकते हैं। हमारे जीवनका केन्द्र बहुतसे अंशोंमें हमारी छातीमें ही है। यदि यह बात ठीक हो कि हमारे सारे शरीरका रक्त एक घण्टेमें बारह

बार हमारे कलेजे और फेफड़ोंमें होकर गुजरता है, तो अवश्य ही हमारी श्वास-क्रियाका महत्त्व भली भाँति प्रमाणित हो जायगा। हमारे शरीर तथा मनको स्वस्थ रखने और रग-पट्ठों आदिकी क्षति-पूर्त्तिके लिये श्वास-क्रियाकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। हमारी छाती जितनी ही मजबूत होगी, हमारा दिमाग भी उतना ही मजबूत होगा और हमारे फेफड़ोंमें जितनी ही शक्ति होगी, हममें चिन्तन और विचार करनेकी शक्ति भी उतनी ही अधिक होगी। दृढ़ता-पूर्वक कोई विचार और निर्णय करनेके लिये अच्छी विचार-शक्तिके साथ साथ अच्छी शारीरिक और जीवन शक्तिकी भी आवश्यकता होती है। प्रत्येक मनुष्यकी नैतिक और मानसिक शक्ति उसके शारीरिक संगठन पर ही निर्भर होती है।

मनको ठीक दशामें रखने और उससे पूरा पूरा काम लेनेके लिये शरीरके प्रत्येक अंगका पूरा पूरा ध्यान रखनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। जिन प्राकृतिक नियमोंके अनुसार मानव-शरीरकी सृष्टि और रचना होती है, मनुष्यको उन्हीं नियमोंका पालन करते हुए अपने जीवनका निर्वाह करना चाहिए। नहीं तो वह रोगी और पीड़ित हो जागया। इन नियमोंका न तो कभी विरोध हो सकता है और न होना चाहिए। हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि मनुष्य सदा अपनी प्रत्येक शारीरिक क्रियाका विचार ही करता रहे; क्योंकि यह भी एक प्रकारका रोग ही है। लेकिन प्राकृतिक नियमोंके अनुसार जीवन व्यतीत करनेके लिये इस बातकी आवश्यकता है कि प्रत्येक पूर्णशिक्षा-प्रणालीके अन्तर्गत जीवनके नियमोंका कुछ ज्ञान भी आ जाय; क्योंकि हमारा सारा सुख और शान्ति उसी शरीरके स्वास्थ्य पर निर्भर

है, जिसमें हमारी आत्मा रहती है और जिसके द्वारा हमारा मन काम करता है।

सिडनी स्मिथने कहा है—"बिना स्वास्थ्य, प्रसन्नता असम्भव है; लेकिन उसकी प्राप्ति बहुत ही कठिन है। स्वास्थ्यसे मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि शरीरमें भारी भारी रोग न हो, बल्कि शरीरके किसी अंगमें किसी प्रकारकी त्रुटि या दोष न होना चाहिए। मनुष्यमें पूर्ण बल, उत्साह और कार्य्य करनेके लिये तत्परता होनी चाहिए। इसे युवकोंका दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि उनके माता-पिता उन्हें बल-पूर्वक, समयसे पहले ही और बहुत अधिक मानसिक श्रम करनेके लिये विवश करते हैं और इस प्रकार उनके एक अंग पर बहुत अधिक जोर पहुँचा कर उसे बिगाड़ देते हैं और उन्हें शेष सब अंगोंके समान नहीं रहने देते। उनके ज्ञान-तन्तुओंसे बहुत अधिक काम लिया जाता है और शारीरिक संगठनका कुछ भी ध्यान नहीं रखा जाता। मस्तिष्कको बहुत अधिक कार्य्य करना पड़ता है और शरीरको बहुत कम। मनका तो खूब पोषण होता है; पर भूख मारी जाती है और शरीरका यथेष्ट पोषण नहीं होता। इसीलिये समाजमें अधिकांश लोग रोगी, दुर्बल और पीले दिखाई देते हैं। एक विद्वान्के मतसे यह अवनति और सब प्रकारकी दुर्दशाओंसे बहुत ही बुरी है। डंककी पीड़ाका प्रतीकार या शान्ति, शहदकी मिठाससे नहीं हो सकती। जब तक मनुष्य नीरोग और स्वस्थ न हो, तब तक उसका जीवन वास्तवमें "जीवन" ही नहीं है। कहावत है—"एक तन्दुरुस्ती हजार न्यामत है।"

बालकों और उनसे भी बढ़ कर बालिकाओंको आज-कल जो हानि पहुँचाई जाती है, उसका वर्णन पिछले पृष्ठोंमें हो चुका है;

यहाँ उनके दोहरानेकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ हम केवल इतना ही और कहना चाहते हैं कि युवकोंको उनका प्राकृतिक दृढ़ शारीरिक संगठन तो मानसिक श्रम करनेके योग्य बना देता है, पर युवतियोंका कोमल संगठन उन्हें मानसिक श्रमके लिये बिलकुल ही अयोग्य रखता है।

आज-कलके जमानेका सबसे बड़ा दोष दुर्भाग्य-वश अधिक मानसिक श्रम है और विशेषतः नगरोंमें यह दोष और भी अधिक पाया जाता है। व्यापार, ज्ञानार्जन, राजनीति, साहित्य आदिमें लोग प्रायः बहुत ही लम्बे लम्बे डग बढ़ाते हैं, जिससे जीवन जल्दी जल्दी और बहुत अधिक नष्ट होता है। शारीरिक और मानसिक-श्रमसे हमारी जीवन-शक्ति क्षीण होती है और उस क्षीण अंशकी पूर्त्ति; भोजन, निद्रा और विश्रामसे होती है। पर क्षीण तो प्रायः बहुत अधिक अंश हो जाता है और हमारी दुर्बल पाचन-शक्ति उसकी यथेष्ट पूर्त्ति करनेमें असमर्थ होती है। यद्यपि हम पौष्टिक औषधें आदि खाकर कृत्रिम-रूपसे अपनी जीवन-शक्तिको कुछ जाग्रत कर सकते हैं, तथापि बिना व्यायाम आदिके उसे ठीक दशामें रखना प्रायः असम्भव ही है।

यदि मन या शरीरसे बहुत अधिक कार्य्य न लिया जाय, तो मनुष्य बहुत ही प्रसन्न रह सकता है। पर उस प्रसन्नताका पूरा पूरा उपयोग करनेके लिये विश्रान्तिकी आवश्यकता होती है। मनुष्य अपने जीवन पर बहुत ही अनुराग रखता है; जहाँ तक हो सके, आनन्द-पूर्वक अधिक समय तक जीवित रहनेकी उसकी स्वभाविक प्रवृत्ति होती है। सुकरातने अरिस्टोडीमससे पूछा था कि "ज्यों ही हमें अपने अस्तित्वका ज्ञान होता है, त्योंही हममें अपने जीवनके प्रति जो अनुराग उत्पन्न होता है, उसके सम्बन्धमें

तुम्हारा क्या विचार है ?" उसने उत्तर दिया कि "मेरी समझमें तो महान् और बुद्धिमान् कर्ता (परमेश्वर) ने अपनी कृतिको अधिक समय तक रक्षित रखनेका यह सबसे अच्छा उपाय निकाला है।" इस बातमें आज भी उतनी ही सत्यता है, जितनी आजसे दो हजार वर्ष पूर्व, इसके कहे जानेके सयय, थी। प्राचीन ग्रीक लोग अपने शरीरको ईश्वरके अंश-स्वरूप आत्माका मन्दिर समझते और उसके प्रति बहुत ही पूज्यभाव रखते थे। हमारे यहाँ मनु आदि प्राचीन ऋषियोंने भी शरीर-रक्षाको बहुत ही आवश्यक और परम धर्म्म बतलाया है।

सुकरात बहुत बड़ा बुद्धिमान् था। उसने पुस्तकें नहीं लिखी थीं; वह केवल अपने मित्रों और शिष्योंसे चलते-फिरते बात-चीत किया करता था। उसके उन्हीं मित्रों और शिष्योंने जो कुछ लिख रखा था, उसीसे हमें उसके सम्बन्धकी सब बातें मालूम होती हैं। सुकरातके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि वह अनेक प्रकारसे विश्राम करनेके अतिरिक्त काठके घोड़े पर भी सवारी किया करता था। जिस समय वह कोई शारीरिक व्यायाम नहीं करता था, उस समय अपने चित्तको प्रसन्न करनेके लिये वह एक प्रकारका बाजा बजाया करता था। उसका शिष्य प्लेटो भी खूब विश्राम करता था और अपने समयके व्यायाम करनेमें सब से बढ़ा-चढ़ा था और अरस्तूने लिखा है कि जीवनके आरोग्य के लिये विश्रामकी तरह खेल-कूद और मनोविनोद भी बहुत ही आवश्यक है। प्राचीन यूनानियों तथा आर्योंमें जो शिक्षा-प्रणाली थी, उससे मनुष्यके सारे शरीरकी समान-रूपसे उन्नति होती थी। प्राचीन आर्य्य-महर्षि जहाँ विद्या आदिमें पारंगत होते थे, वहाँ धनुष चलाने और अनेक प्रकारके शारीरिक व्यायाम

करनेमें भी निपुण होते थे और मनोविनोदके लिये तरह तरहकी कलाओंमें बड़े सिद्ध-हस्त होते थे। वे अच्छी तरह समझते थे कि नैतिक और मानसिक शिक्षाका मूल आधार शारीरिक संगठन ही है। वे विद्याका अध्ययन करके मनको संस्कृत करनेके साथ ही साथ शारीरिक संगठनको दृढ़ करनेकी भी आवश्यकता समझते थे। उनका सिद्धान्त था कि बिना शारीरिक दृढ़ताके मानसिक दृढ़ता हो नहीं सकती।

यदि हम यह चाहते हों कि हम सदा प्रत्येक कार्य्यको बड़े ही उत्साह और तत्परतासे करनेमें समर्थ हों,तो हमें बीच बीचमें मनो विनोद और विश्राम भी करते रहना चाहिए। स्वास्थ्यकी रक्षा केवल इसी प्रकार हो सकती है। यदि धनुष पर सदा तीर चढ़ा रहे और उसकी डोरी बराबर खिंची रहे, तो वह बेकाम हो जायगा और उसका बल जाता रहेगा। एकबार एक व्याध कहीं चल जा रहा था। रास्तेमें उसने देखा कि एक महात्मा अपने मकान के दरवाजे पर बैठा हुआ हाथमें एक चिड़िया लेकर उसे बड़ी ही प्रसन्नतासे देख रहा था। उसे यह देखकर बड़ा ही दुःख हुआ कि एक महात्मा इस प्रकार अपना समय व्यर्थ नष्ट कर रहा है। उसका दुःख और आश्चर्य देख कर महात्माने उससे पूछा—'तुम सदा अपना धनुष चढ़ाये क्यों नहीं रहते ?" उसने उत्तर दिया—"जिसमें उसका जोर टूट न जाय।" महात्माने कहा—"बस यही दशा मेरे मनकी भी समझो। यदि मैं उसे विश्राम देकर सुखी न करूँ, तो उसकी शक्ति भी नष्ट हो जायगी।"

इस प्रकार खाली बैठना, कोरा खाली बैठनाही नहीं है। जिन मानसिक कार्य करनेवालोंको रात रात भर नींद न आती हो, दिल धड़कता हो, कमजोरी हो, मिजाज खराब हो गया हो या भोजन

न पचता हो, उनके लिये यही एकमात्र और सबसे अच्छी दवा है। विश्राम-पूर्णविश्रामसे बढ़ कर ऐसे रोगियोंके लिये और कोई नुस्खा ही नहीं है। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो विश्राम नहीं कर सकते और जो खाली बैठनेको नैतिक दृष्टिसे बहुत ही बुरा समझते हैं। लेकिन ऐसे लोगोंको समझ लेना चाहिए कि मनुष्यके सुख और कल्याणके लिये विश्राम भी उतना ही आवश्यक है जितना कि काम करना आवश्यक है।

अनेक महापुरुष ऐसे हो गये हैं,जो अपने कामके साथ साथ व्यायाम या मनोविनोद भी किया करते थे। एक बार अगेसि-लास अपने लड़केका दिल बहलानेके लिये एक छड़ीका घोड़ा बनाकर इधर उधर घूम रहा था। इतनेमें एक आदमी उससे मिलनेके लिये आया। अगेसिलासने उससे कहा कि जब तक तुम भी एक लड़केके बाप न हो जाओ, तब तक यह हाल किसीसे न कहना। फ्रान्सका राजा चतुर्थ हेनरी एक बार अपने कमरेमें घोड़ा बनकर घुटनोंके बल चल रहा था। एक बच्चा उसकी पीठ पर सवार था और बाकी बच्चे हेनरी घोड़ेको जल्दी जल्दी चलनेके लिये कह रहे थे। इतनेमें कहींसे अचा-नक एक राजदूत आ पहुँचा। हेनरीने पूछा—"क्या आपके भी लड़के-बाले हैं?" उसने कहा—"हाँ श्रीमान्।" राजाने कहा—"मैं तो इन लोगोंके साथ इसी तरह खेला करता हूँ।" इंगलैण्डके प्रसिद्ध प्रधान मंत्री मि० ग्लैडस्टन भी एक बार इसी तरह घोड़े बनकर पीठ पर अपने पोतेको चढ़ाये हुए इधर उधर घूम रहे थे। इतनेमें एक आदमी उनसे मिलनेके लिये आया। उन्होंने कहा—"भाई, जरा ठहर जाओ। मैं इसे एकबार और घुमा लूँ तो तुमसे बातें करता हूँ।" इसी प्रकार और भी

अनेक महापुरुष हो गये हैं, जो इसी तरहके और और कामोंसे अपना मन बहलाया करते थे।

एक विद्वान्‌की सम्मति है कि जो मनुष्य अपना स्वास्थ्य बनाये रखना चाहता हो, उसे अपने मुख्य कार्य्यके अतिरिक्त समय समयपर और भी अनेक प्रकारके ऐसे कार्य्य करने चाहिए, जिनसे उसका मनोविनोद हो और तरह तरहके कामोंमें सैर, शिकार, तैरना, दौड़ना, जीन-सवारी और व्यायाम आदि सभी सम्मिलित हैं। एक दूसरे विद्वान्‌का मत है कि लगातार किसी कामको दो घण्टे तक करनेके उपरान्त मनुष्यको उचित है कि थोड़ी देरके लिये वह किसी दूसरे हलके काममें लग जाय, जिसमें उसे कुछ विश्राम मिले। इस प्रकार मनको थोड़ी देरके लिये दूसरे काममें लगाना बहुत ही लाभदायक होता है। सीजर ने एक स्थान पर लिखा है—"जिस समय घोर युद्ध होता रहता है, उस समय भी रण-क्षेत्रमें अपने खेमेमें बैठे बैठे मुझे बहुतसी दूसरी बातों पर विचार करनेका अवसर मिल जाता है!" बहुतसी दूसरी बातों पर विचार करना ही कदाचित् बलका मूल-मंत्र है।

खाली रहना या बेकारी दो प्रकारकी होती है। एक बेकारी तो वह है, जिसमें मनुष्य अपने अस्तित्व और समय आदिका नाश करता है और दूसरी बेकारी वह है, जिसमें मनुष्य अपने अस्तित्व और समय आदिका सदुपयोग करता है। जो लोग बचे हुए समयको किसी दूसरे काममें लगा कर अपना जी बह-लाते हैं, उन्हींकी फ़ुरसत हमेशः कद्र करनेके काबिल होती है। लिखने-पढ़नेवाले लोग कभी अपना समय व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहते और व्यायाम आदिकी ओर भी उनकी प्रवृत्ति नहीं होती;

इसलिये वे एक प्रकारकी पढ़ाई-लिखाई छोड़कर दूसरे प्रकारकी पढ़ाई-लिखाईमें लग जाते हैं। फ्रान्सके एक चैन्सलर थे, जो अध्ययनको बदल देनेको ही विश्राम समझते थे। एक न्यायाधीश थे, जो फुरसतके समय बीजगणितके प्रश्न निकाला करते थे। एक बैरिस्टर साहब जब अपनी गृहस्थीके झगड़ोंसे बहुत तंग आ जाते थे,तब बैठ कर हिसाब करने लग जाते थे और कहते थे कि इससे मेरी सारी चिन्ताएँ मानों सो जाती हैं। एक जर्मन विद्वान् जब मानसिक श्रम करता करता थक जाता था, तब वह खिड़की के पास खड़ा होकर अपने पड़ोसीकी छतकी ईंटें गिना करता था। स्पिनोजा थक कर मित्रोंसे बात-चीत करने लगता था और कभी कभी मकड़ियोंकी लड़ाई देखने लग जाता था। यह लड़ाई देख कर वह इतना हँसता था कि उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगते थे। फ्रेडरिक दी ग्रेट वास्तवमें केवल योद्धा ही था; पर वह अपना जी बहलानेके लिये ऐसी तुकबन्दी करता था, जिसे ठीक करनेके समय उसका भद्दापन देखकर वाल्टेयरको हँसी आती थी। एक बहुत बड़ा दार्शनिक कठपुतली नचानेमें बड़ा सिद्ध-हस्त था। उसने थियेटर भी खड़ा किया था, जिसका वह स्वयं प्रबन्ध करता था और स्वयं ही जिसके लिये नाटक लिखता था। इसी प्रकार अनेक ऐसे वैज्ञानिक, योद्धा और शासक आदि हो गये हैं, जो फुरसतके वक्त अच्छी अच्छी कविता किया करते थे और इस प्रकार अपना जी बहलाया करते थे।

बड़े बड़े राजनीतिज्ञ और शासक जब राज्य-सम्बन्धी चिन्ताओंसे घबरा जाते हैं, तब साहित्य उनके उद्विग्न चित्तको शान्त करनेमें बहुत बड़ी सहायता देता है। उनके लिये राज-नीतिका द्वार तो कभी कभी बन्द हो जाता है, पर साहित्यका

द्वार सदा खुला रहता है। एडिसन जब बहुत दुखी या चिन्तित होता था, तब अनुवाद करने लग जाता था। पिटने अपना पद छोड़ने पर लैटिन और ग्रीकका अध्ययन आरम्भ किया था। लार्ड कैनिंग और वेलेसली भी अनुवादमें अपना समय बिताया करते थे। लार्ड नारमनबीने एक उपन्यास लिखा था और अर्ल-रसालने बहुत ही निम्न कोटिका एक उपन्यास और एक नाटक लिखा था। लार्ड ब्रूहमने तो अनेक विषयों पर अच्छे अच्छे ग्रन्थ और लेख लिखे थे। लार्ड डरबी और मि० ग्लैडस्टन प्राचीन साहित्यका अध्ययन किया करते थे। इन दोनोंके दो ग्रन्थ ऐसे हैं, जो बहुत दिनोंतक साहित्य-क्षेत्रमें इनकी कीर्त्ति और स्मृति बनाये रखेंगे। बहुतसे राजनीतिज्ञ ऐसे भी हो गये हैं, जो कभी चिन्तित या दुखी रहना जानते ही न थे। स्वयं सदा प्रसन्न रहते थे और साथ ही दूसरेको भी खूब हँसाया करते थे। सर राबर्ट वालपोल और लार्ड मेलबोर्न ऐसे ही लोगोंमें से थे। लार्ड एलथार्प जब सन् १८३२ में अपने पदसे च्युत हो गये, तब वे तनिक भी चिन्तित या दुखी नहीं हुए। इस्तीफा देनेके दूसरे ही दिन वे बहुतसे पौधे आदि खरीद लाये और अपने मालीको उनके सम्बन्धमें आवश्यक बातें लिखने बैठ गये थे।

एक महात्माने कहा था—"मेरे पास बहुत अच्छी अच्छी पुस्तकें हैं और एक बहुत बढ़िया बाग है, जिसमें पौधे आदि बड़ी ही प्रसन्नतासे मैं अपने ही हाथ लगाता हूँ। भला इससे बढ़ कर शुद्ध मनोविनोद और कौनसा हो सकता है कि हम अपने बोये हुए बीजोंसे ही पृथ्वीको फूलते देखें?" और वास्तवमें अपने कृत्योंका इससे अच्छा और कौनसा शुभ और सुखदायक फल हो सकता है! डायोक्लीशियनने जब अपना राज्याधिकार

छोड़ दिया, तब कुछ लोगोंने उसे फिरसे ग्रहण करनेके लिये उसके पास प्रार्थना-पत्र भेजा। प्रार्थना-पत्र लानेवालेसे उसने कहा—"मैंने जो पेड़ लगाये हैं और जो बढ़िया तरबूज तैयार किये हैं, उन्हें यदि तुम देखते तो कभी मुझसे इस बातकी प्रार्थना न करते!" प्रसिद्ध विद्वान् वरजिलकी पहली कामना अच्छे दार्शनिक होनेकी और दूसरी कामना अच्छे खेतिहर होनेकी थी। केटो कहा करता था कि बुढ़ापेमें जितना आनन्द खेती-बारी और पौधे लगानेसे होता है उतना और किसी बातसे नहीं होता। यदि उपयोगिता, निर्दोषिता, प्राचीनता और प्रतिष्ठा आदिके विचारसे देखा जाय, तो दर्शनके उपरान्त इसीका नम्बर आता है।

लार्ड बेकनने अपने निबन्धमें लिखा है—"सर्वशक्तिमान् परमेश्वरने पहले पहल एक बाग लगाया और वास्तवमें मनुष्यके मनोविनोदोंमेंसे यह सबसे अधिक शुद्ध और पवित्र है। मनुष्यकी आत्माको यही सबसे अधिक प्रफुल्लित और सुखी करता है। इसके बिना बड़ी बड़ी इमारतों और महलोंकी शोभा ही नहीं होती और जब सभ्यताका विकाश होता है, तब मनुष्य अच्छी इमारतें बनाना पहले सीखता है और अच्छे बाग लगाना पीछे। मानों बाग लगानेकी विद्या अधिक कठिन और उत्तम है।" वह स्वयं बागबानीका काम बहुत अच्छी तरह जानता था। पोप कविने भी अपने मकानके चारोंओर स्वयं अपने हाथसे तरह तरहके पेड़-पौधे लगाये थे। काउपर भी स्वयं अच्छा माली था। जार्ज स्टेफेन्सन सदा इस बातसे परेशान रहता था कि उसकी लगाई हुई ककड़ियाँ सदा टेढ़ी होती थीं। तब उसने शीशेकी बड़ी बड़ी लम्बी बोतलें बनवाई। जब उनमें रखे हुए फल बढ़ाकर सीधे होने लगे, तब कहीं जाकर उसका समाधान

हुआ। सर वाल्टर स्काटको भी पेड़ लगानेका बहुत शौक था और वह अपने हाथसे फावड़ा और कुल्हाड़ी भी खूब चलाता था।

इंगलैण्डका प्रधान मंत्री पिट छुट्टीके दिन अपने गाँव पर चला जाता था और वहीं पेड़ोंके बीचमेंसे फ़ावड़ा चला कर नई नई पगडंडियाँ निकालता था। डा० व्हाटेलेको जब दवाखानेकी जरूरत होती थी, तब वह उसके बदलेमें एक पेड़ काट डालता था। जब जब उसकी तबीयत खराब होती थी, तब तब वह कुल्हाड़ी लेकर जंगलकी तरफ निकल जाता था। मि० ग्लैड-स्टनके वृद्धावस्था तक भी पहुँच कर स्वस्थ और नीरोग रहनेका मुख्य कारण यही था कि उन्होंने अपने जीवन-कालमें बहुतसे पेड़ काट गिराये थे। स्काटका कथन है—"व्यायाम चाहे शारी-रिक हो चाहे मानसिक, उसका परिणाम सदा बहुत ही अच्छा होता है। उससे हमें नींद भी बहुत अच्छी तरह आती है और हमारा जागनेका समय भी बड़ी प्रसन्नतासे बीतता है और पुस्तकका समय सुखसे बितानेके लिये थोड़ा श्रम करना भी बहुत ही आवश्यक है।" लार्ड कालिंगउड जल-सेनाकी नौकरी छोड़ने पर अपने बागमें मामूली मजदूरोंकी तरह खाइयाँ खोदा करता था। न्यूबरने वृद्धावस्थामें एक खेत खरीदा था, जिसे वह अपने हाथसे जोता करता था। इतिहासका अध्ययन करते समय वह गाजर बोता और जानवरोंको चारा खिलाता था और सत्तर वर्षकी अवस्थामें वह दस फुट चौड़ी खाई कूदकर पार कर जाता था। सिडनीस्मिथ, एडिनबरा रिव्यूके लिये लेख लिखते समय उठकर दरवाजे पर आ खड़ा होता था और वहींसे बड़े भोंपूमें मुँह लगा कर अपने हरवाहेको काम बतलाया करता था।

जब लूथरको बदहजमी हो गई, तब उसके एक मित्रने उसे सम्मति दी कि तुम नित्य खूब व्यायाम किया करो। उस समय लूथरने जंगलमें दो दिन तक शिकार खेला था और खूब दौड़-धूप कर दो खरगोश और दो तीतर पकड़े थे। जब वह जान-वरोंके पीछे दौड़ता या पेड़ों पर चढ़ता था, तब उसे बहुत आनन्द आता था। वालटेयरको भी जब बदहजमी होती थी, तब वह शिकार खेलने निकल जाता था। इससे उसका भोजन पच जाता था और खूब भूख लगती थी। लार्ड एलडन भी शिकार के बहुत शौकीन थे। शेरिडन बहुत अच्छा निशानेबाज था। पिटका मन तो शिकारमें नहीं लगता था, पर वह केवल व्यायाम के विचारसे ही शिकार खेला करता था।

सब प्रकारके व्यायामोंसे घोड़ेकी सवारीको लोग बहुत अच्छा व्यायाम मानते हैं। जीन मानों स्वास्थ्यका आधार है। जीन सवारोंसे रग-पट्ठों और फेफड़ों पर जोर पहुँचता है और साँस लेनेके लिये खूब अच्छी साफ हवा मिलती है। खून खूब साफ होता है और शरीरके बाहरी और भीतरी सभी भागोंमें बहुत अच्छी तरह हवा पहुँचती है। जीन सवारी करनेवालेको कभी पित्त या वातकी कोई बीमारी नहीं होती। कारलाइलसे किसीने पूछा— "तुम्हारा डाक्टर कौन है?" उसने उत्तर दिया—"घोड़ा!" सिडेनहम जीन सवारीको इतना अच्छा समझता था कि उसने अपनी एक चिकित्सा-सम्बन्धी पुस्तकमें लिखा है कि "यदि किसीको कोई ऐसी दवा मिल जाय, जिससे मनुष्यके शरीरको उतना ही लाभ पहुँचे, जितना कि दिनमें दो बार घोड़े पर सवार होकर घूमनेसे होता है, तो समझना चाहिए कि उसे पारस पत्थर मिल गया।" पोपने लिखा है कि लार्ड रसल नामके एक आदमी

थे, जिन्हें बिलकुल भूख नहीं लगती थी और जिनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया था। वे घोड़े पर सवार होकर और अपने कुत्तों को साथ लेकर जंगलमें शिकार खेलने निकल जाते थे। थोड़ी ही देर बाद उन्हें खूब भूख लगती थी और वे घर लौट आते थे। इसी तरह और भी बहुतसे ऐसे लोग हो गये हैं, जिन्हें किसी प्रकारके व्यायाम या औषधि आदिसे कोई लाभ नहीं हुआ और जिनका स्वास्थ्य केवल जीनसवारी करनेसे ही सुधरा।

लार्ड वेलिंग्टन जिस समय स्पेनमें भागते हुए फ्रान्सोसियोंका पीछा कर रहे थे, उस समय भी उन्होंने लोमड़ीका शिकार नहीं छोड़ा था। एक बार इसी लोमड़ीके शिकारमें लगे रहनेके कारण ही उन्हें अपने एक मित्रको एक बहुत ही आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण सार्वजनिक प्रश्नका उत्तर भेजनेमें बहुत अधिक विलम्ब हो गया था। लार्ड पामर्स्टन नित्य कई घण्टे जीन-सवारी किया करते थे। जब सर फ्रान्सिस बरडटसे हेडन चित्रकारने पूछा कि इतनी वृद्धावस्था तक भी आपका स्वास्थ्य किस प्रकार बना रहा, तब उन्होंने उत्तर दिया कि 'मैं प्रायः स्नान किया करता हूँ, भोजनके समयको छोड़ कर और कभी शराब नहीं पीता और जहाँ तक हो सकता है, खूब शिकार किया करता हूँ।

लेकिन सवारीके लिये घोड़ा रखने और बन्दूक लेकर शिकार करनेमें बहुत खर्च पड़ता है और ये दोनों काम केवल सम्पन्न लोग ही कर सकते हैं। लेकिन सर्व साधारण इन बातोंसे लाभ नहीं उठा सकते। ऐसे लोगोंके लिये भी मनोविनोदके साथ साथ अपना स्वास्थ्य सुधारनेके बहुतसे उपाय हैं, जिनमेंसे टह-लना सर्वश्रेष्ठ है। यह एक ऐसा काम है, जिसे सब लोग बहुत ही सहजमें और बिना किसी प्रकारके व्ययके कर सकते हैं। यदि

ईश्वर सामर्थ्य दे, तो आदमी बाइसिकिल भी रख सकता है। खाली टहलनेमें कुछ विशेष खर्च नहीं होता; केवल थोड़ासा समय लगता है और जरा जूता घिसता है। नाव खेने या जीन-सवारी करनेकी तरह इसके लिये किसी प्रकारकी तैयारीकी भी आवश्यकता नहीं होती। जब जी चाहे तभी आदमी टहलनेके लिये निकल सकता है। इसमें एक विशेषता यह भी है कि मस्तिष्कके काममें इससे कोई बाधा नहीं पहुँचती। जिस प्रकार पढ़नेके समय मनुष्यका मस्तिष्क काम करता है, उसी प्रकार टहलनेके समय भी करता है। ऐसे बहुतसे महात्मा, विद्वान् और धनवान् हो गये हैं, जो समय समय पर पैदल किसी देहात या जंगलकी तरफ निकल जाते थे और बड़े बड़े चक्कर लगा कर अपने मनको शान्त और प्रसन्न करनेके साथ ही अपना स्वास्थ्य भी सुधार लेते थे। सिसरोने दो ऐसे महात्माओंका जिक्र किया है, जो सांसारिक चिन्ताएँ छोड़ कर प्रायः देहात चले जाते थे और वहाँ छोटे छोटे लड़कोंसे खेला करते थे; या समुद्रके किनारे जाकर घोंघे चुनते थे। उसने एक स्थान पर लिखा है कि "जो मनुष्य कभी कभी अपने सब काम नहीं छोड़ देता, मेरी सम्मतिमें वह वास्तवमें कभी स्वतंत्र नहीं है।" एक और स्थान पर उसने लिखा है—"एक ऐसा स्वर्ग अवश्य होना चाहिए जहाँ, सुस्ती और अकर्म्मण्यताके कारण नहीं, बल्कि अच्छी तरह विश्राम करनेके लिये समय समय पर हम पहुँच जाया करें।"

प्राचीन आर्य्य लोग टहलनेके महत्त्व और लाभसे भली भाँति परिचित थे। हमारे यहाँ चारों धाम तथा अन्यान्य अनेक प्रकारकी यात्राओंका जो विधान है, उससे सिद्ध होता है कि वे

लोग पैदल चलने फिरनेके ही नहीं, बल्कि लम्बी लम्बी यात्राएँ करनेके भी बहुत बड़े पक्षपाती थे। पैदल चलनेकी उपयोगिता उनकी समझमें इतनी अधिक थी कि उन्होंने उसे धर्म्मका एक प्रधान अंग बना दिया था और उन्हींकी कृपासे अब भी भारतवर्षमें ऐसे हजारों आदमी मौजूद हैं, जिन्होंने पैदल भारतके चारों कोनों तक यात्रा की है। इन बड़ी बड़ी यात्राओंके अति-रिक्त प्रत्येक तीर्थके आसपासकी अनेक छोटी यात्राएँ और उनकी परिक्रमाएँ आदि भी हैं। जो लोग ये यात्राएँ और परिक्रमाएँ करते हैं, उन्हें पैदल चलनेका उत्तम फल भी होता है और प्रकृतिके निरीक्षण तथा देशका ज्ञान प्राप्त करनेका भी बहुत अच्छा अवसर मिलता है।

पाश्चात्य देशोंमें भी बहुतसे ऐसे महात्मा हो गये हैं, जो प्रायः बड़ी बड़ी यात्राएँ किया करते थे अथवा यों ही नित्य मीलोंका चक्कर लगाया करते थे। प्रसिद्ध दार्शनिक हाब्स वृद्धावस्थामें भी नित्य बहुत तड़के उठ कर पासकी किसी पहाड़ी पर चढ़ जाता था। इमेनुअल कैण्ट बारहों महीने चाहे कड़ा-केका जाड़ा पड़ता हो और चाहे मूसलधार पानी बरसता हो—बराबर टहलता था। आरम्भमें वह बहुत ही दुबला पतला और कमजोर था; पर संयम-पूर्वक रहने और नित्य टहलनेकी बदौलत ही उसने अस्सी वर्षकी आयु पाई थी। हाब्सकी अवस्था तो मरनेके समय बानबे वर्षकी थी। इन दोनों दार्शनिकोंके उदाहरणसे सिद्ध है कि यदि मनुष्यका शरीर नीरोग रहे, तो उसका मन भी काम करनेमें खूब समर्थ होगा और यदि वह बहुत ही वृद्ध हो जाय, तो भी उसमें गहन विषयों पर बहुत अच्छी तरह विचार करनेकी शक्ति बनी रहेगी।

प्रसिद्ध अमेरिकन ग्रन्थकार टियोथी डवाइटका मस्तिष्क बहुत अधिक काम करनेके कारण खराब हो गया था। सत्रह वर्षकी अवस्थामें ही उसने एक स्कूलमें पढ़ानेका काम आरम्भ कर दिया था। वह नित्य छः घण्टे तक लड़कोंको पढ़ाता था और नौ घण्टे तक स्वयं पढ़ता था। किसी प्रकारका व्यायाम वह बिलकुल न करता था। उसके इस पागलपनका परिणाम यह हुआ कि कुछ दिनोंमें उसका दिमाग बिलकुल कमजोर और खराब हो गया और उसमें लगातार पन्द्रह मिनट तक पढ़नेकी भी शक्ति न रह गई। धीरे धीरे उसकी आँखोंने भी जवाब देना शुरू कर दिया और उसे लिखना-पढ़ना छोड़ देना पड़ा। लेकिन उसका मन तब तक बराबर काम करता था। तब बहुत सोच समझ कर अन्तमें उसने टहलनेकी ठानी। उसने पैदल लम्बी लम्बी यात्राएँ कीं, जिससे उसका स्वास्थ्य भी सुधर गया और आँखें भी ठीक हो गईं और तब उसने कई खण्डोंमें अमेरिकाके संयुक्त राज्योंकी यात्राका बहुत ही उत्तम वर्णन लिखा।

बरमिंघमके प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता विलियम हट्टनने जब सत्तर वर्षकी अवस्थामें अपना सब काम छोड़ दिया, तब उसे इस बातकी चिन्ता लगी कि मैं अपना समय किस प्रकार बिताऊँ। बहुत कुछ सोच-विचार कर उसने पैदल भ्रमण करना निश्चय किया और थोड़े ही दिनोंमें इस प्रकार सारे इंगलैण्डकी यात्रा कर डाली। अठहत्तर वर्षकी अवस्थामें उसने पैंतीस दिनोंमें छः सौ एक मीलकी यात्रा की थी! उसने अपने भ्रमणके सम्बन्धमें अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित की थीं और पचासी वर्षकी अवस्था तक और भी अनेक छोटे बड़े भ्रमण किये थे। अट्ठासी वर्षकी अवस्थामें उसने अपनी डायरीमें लिखा था—"बयासी वर्षकी

अवस्थामें मैं अपने आपको बिलकुल जवान समझता था। मैं बिना किसी प्रकारकी थकावटके एक दिनमें चालीस मील चल सकता था।" उसकी डायरीके अन्तमें लिखा हुआ था—"आज ११ अक्तूबर मेरा जन्म दिन है। आज मेरा नव्वेवाँ वर्ष आरम्भ होता है और मैंने आज दस मीलका चक्कर लगाया है।" उसकी कन्याने उसकी जो जीवनी लिखी है, उसमें उसने बतलाया है कि वह सदा अपनी चलाईको ही अपनी जीवनी-शक्तिका प्रमाण समझता था और उसका विश्वास था कि जिस दिन मेरा चलना बन्द होगा, उसी दिन मेरे जीवनका भी अन्त होगा और वास्तवमें हुआ भी यही। बानवे वर्षकी अवस्थामें उसका चलना-फिरना बन्द हुआ और तभी उसकी मृत्यु भी हुई।

बीथोवेन मरनेसे कुछ दिनों पहले बहुत कमजोर और बहरा हो गया था। उसमें दो विशेषताएँ थीं। एक तो यह कि वह सदा देहातोंमें चक्कर लगाया करता था और दूसरी यह कि वह सदा अपने रहनेका मकान बदला करता था। उसके न तो स्त्री थी और न कोई रहनेका निश्चित स्थान। जो मकान वह लेता था, उसमें उसे एक न एक दोष दिखलाई देता था और वह उसे छोड़ कर दूसरे मकानमें चला जाता। इसके अतिरिक्त वह देहातोंमें खूब घूमता था। वह कहा करता था कि चलनेसे मेरे दिमागकी बेचैनी दूर होती है और मुझे खूब नींद आती है। स्काट लंगड़ा होने पर भी खूब चलता था। डिकेन्स, विलसन, सूदे और वर्ड्स्वर्थ भी खूब चलनेवाले थे। विलसन सिर्फ चलनेवाला ही नहीं था, बल्कि तेज दौड़नेवाला, कूदनेवाला और मुक्केबाज भी था। उसका शरीर खूब हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ था। उसने फुरसतके समय ही सारे इंगलैण्ड, स्काटलैण्ड और आयर्लैण्डकी यात्रा कर डाली थी।

जब राजा चतुर्थ जार्ज एडिनबरा पहुँचे, तब वह वहाँसे बावन मील दूर केलसो नामक स्थान पर था। उसने बग्घी पर जानेका विचार किया, पर उसे जगह नहीं मिली। दूसरे दिन सबेरे चार बजे वह उठा और नहा धोकर चल पड़ा और बावन मील चल कर दो पहरको भोजनके समय वह एडिनबरा पहुँच गया!

डा० आर्नल्ड अपने शिष्योंके साथ खूब दौड़ा, तैरा और कूपा करता था और जो समय बचता था, उसमें वह पेड़ लगाया और टहला करता था। वह ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर भी चढ़ा करता था और वहाँकी हवासे उसकी सारी थकावट मिट जाती थी और चित्त प्रफुल्लित हो जाता था। वास्तवमें पहाड़परकी हवा होती भी बहुत ही लाभदायक और पुष्टकर है। अधिक मानसिक श्रम करनेसे जो लोग बहुत ही दुर्बल हो गये हैं, उनके लिये पहाड़की हवाको अक्सीर ही समझिए।

पर कभी-कभी अच्छी बातोंमें भी कुछ दोष मिलते हैं। युरोपका पहाड़ी प्रदेश स्विजरलैण्ड बड़ा ही रमणीक है और बड़ी दूरसे लोग वहाँ सैर करने और पहाड़ों पर चढ़नेके लिये जाते हैं। बहुत अधिक ऊँचाई पर चढ़ जानेसे कभी-कभी रक्त-संचालन बहुत बढ़ जाता है, जिससे मनुष्यको बहुत कष्ट होता है, उसे नींद भी नहीं आती। इसलिये उसे पहाड़से कुछ नीचे उतर आना पड़ता है। हमारे यहाँ जो बदरी-केदारकी यात्रा करने जाते हैं, लौटने पर उनमेंसे बहुतोंको दस्त आने लगते हैं। इसलिये पहाड़ों पर बहुत अधिक ऊँचाई तक नहीं जाना चाहिए। साधारण ऊँचाई पर ही रह जाना चाहिए। पर इसमें सन्देह नहीं कि पहाड़ी हवा बहुत ही लाभदायक होती है और विशेषतः मानसिक पीड़ाओंके लिये वह बहुत ही अच्छी है।

बहुतसे लोग जब फुरसत पाकर सैर करनेके लिये बाहर निकलते हैं, तब इतनी जल्दी मचाते हैं कि मानों कोई उनके पीछे पड़ा हो, वे दौड़ते हुए एक स्थानसे दूसरे स्थान तक पहुँचते हैं और वहाँसे भी आगे बढ़ कर तीसरे स्थानकी खबर लेते हैं। मानसिक श्रम करनेवालोंको जिस विश्राम और शान्तिकी आवश्यकता होती है, वह उन्हें बिलकुल प्राप्त नहीं होती। उनकी शक्ति और भी नष्ट हो जाती है और वे अच्छे होनेके बदले और भी बीमार होकर घर पहुँचते हैं। यह बड़ी भारी मूर्खता है। जब आदमी सैर और आराम करनेके लिये बाहर निकले, तब उसे उचित है कि वह बहुत ही शान्ति और स्वस्थता-पूर्वक यात्रा करे, मार्गके सुन्दर दृश्य देख कर अपना जी बहलावे और सैरसे होनेवाले लाभ पूरी तरहसे उठावे। डाँकके हरकारोंकी तरह कहीं दौड़ते हुए जाने और उलटे पाँव उसी तरह वहाँसे वापस आनेसे कहीं न जाना ही अच्छा है।

अगर कोई सुस्ताना चाहे, तो वह एक काम छोड़कर और किसी दूसरे काममें लग कर भी सुस्ता सकता है। किसी दूसरे काममें लगना भी सुस्तानेसे कम नहीं है। प्रत्येक पदार्थके अधिक सेवनमात्रसे ही उसका आनन्द जाता रहता है। अधिक समय तक आराम करते रहने या सुस्तानेसे भी जी ऊब जाता है। बड़े बड़े विद्वान् अपना उच्च श्रेणीका कार्य छोड़कर जी बहलानेके लिये बहुत ही साधारण कोटिके काममें लग जाते हैं। जिस प्रकार बढ़िया बढ़िया भोजन करके उनसे जी ऊब जाता है और तब केवल दाल चावल ही सबसे अधिक स्वादिष्ट जान पड़ता है, उसी प्रकार बड़े कामोंको छोड़ कर साधारण काम करनेमें आनन्द मिलता है। ऐसे साधारण

काम दूसरोंकी दृष्टिमें भले ही तुच्छ और निरर्थक हों, पर उनसे करनेवालेका जी खूब बहलता है और उसे पूर्ण विश्राम मिलता है। अगर कोई वैज्ञातिक थोड़ासा गाने-बजानेका अभ्यास कर ले, कोई सम्पादक थोड़ी चित्र-कला सीख ले, कोई इंजीनियर फोटोग्राफीका शौक कर ले या कोई राजनीतिज्ञ बढ़ई या लोहारका कुछ काम जान ले,तो उसका फुरसतका समय बड़े ही सुखसे बीत सकता है और उसका ज्ञान भी बढ़ सकता है। अनेक विद्वान्, लेखक, राज्य-संचालक आदि ऐसे हो गये हैं, जो फुरसतके समय कुछ गा-बजा कर या कुत्ते बिल्लियोंसे खेल-कूद कर ही अपना जी बहला लेते थे। क्रेबिलन नामका एक विद्वान् हो गया है, जो बहुत ही दरिद्रावस्थामें भी अपने यहाँ आठ कुत्ते और पन्द्रह बिल्लियाँ रखता था। उसी दरिद्रावस्थामें एक दिन जब वह अपने साथ दो और कुत्ते ले आया, तब उसकी स्त्री उस पर बहुत बिगड़ी थी। हेलवीटियस नामका एक और लेखक हो गया है, जो प्रायः एक कोड़ी बिल्लियाँ अपने यहाँ रखता था। वह उन्हें बहुत बढ़िया चीज़ें खिलाता था और उन्हें मखमल, साटन तथा रेशम के कपड़े पहनाता था। एक महात्मा बत्तकों और मुर्गियोंके बहुत शौकीन थे। उनका कथन था—"जब आदमी बुड्ढा हो जाय, तब उसे उचित है कि वह कुछ जानवर पाले और उन्हींसे अपना जी बहलावे।"

लार्ड अर्सकिन, सर वाल्टर स्काट और लार्ड बाइरन आदि सभी कुत्तोंके बहुत शौकीन थे। लार्ड अर्सकिनके पास तो और जानवरोंके सिवा दो जोंकें भी थीं! वे कहा करते थे कि वे दोनों जोंकें मुझसे बहुत परची हुई हैं! लार्ड बाइटरका घर तो बिलकुस चिड़ियाखाना ही था। एक आदमीने

अपने एक मित्रको एक पत्रमें लिखा था—"नौकरोंके अतिरिक्त यहाँ दस घोड़े, आठ बड़े-बड़े कुत्ते, तीन बन्दर, पाँच बिल्लियाँ, एक गिद्ध, एक कौवा और एक बाज था।" पत्र समाप्त कर चुकने के उपरान्त नीचे एक कोनेमें उसने फिर लिखा था—"मेरी गिन्ती में भूल हो गई; क्योंकि जब मैं बड़ी सीढ़ियाँ चढ़ रहा था, तब मैंने पाँच मोर, दो मुर्गियाँ और एक सारस भी देखा था।" रैम्बाराटने एक बन्दर पाला था, रिचरने गिलहरियाँ रखी थीं, काउपरने खरगोश पाले थे, गाथेके पास एक साँप था, लैट्यूके पास चूहे थे और पैलिनसके पास एक मकड़ी थी!

बहुतसे महात्माओं और विद्वानोंको लड़कोंके साथ खेलनेमें बड़ा आनन्द मिलता है। रिचरने कहा है कि जिस मनुष्यको बच्चोंके साथ प्रेम न हो, कभी उसका साथ न करना चाहिए। केटो जब तक देख नहीं लेता था कि स्त्रीने लड़केको नहला-धुला कर कपड़े पहना दिये हैं, तब तक वह, चाहे राज्यका कितना ही आवश्यक कार्य्य क्यों न हो कभी घरसे सबेरे बाहर नहीं निकलता था। सिसरो भी अपने बच्चोंसे खूब खेलता था। पिट भी छोटे छोटे लड़कोंके साथ खूब खेला करता था, प्रायः खेलमें उनसे लड़ने-झगड़ने भी लगता था। सर विलियम नेपियर जब बहुत छोटे थे, तब वे प्रायः पिटके यहाँ खेलने जाया करते थे। एक बारका जिक्र है कि खेलके समय बहुतसे लड़कोंने मिल कर इंगलैण्डके प्रधान मंत्रीके मुंह पर कालिख मलना निश्चय किया। मन्त्री महाशय लड़कोंसे लड़ने लगे। इतनेमें नौकरने आकर खबर दी कि दो लार्ड आपसे मिलनेके लिये आये हैं। पिटने कहा—"उन्हें दूसरे कमरेमें बैठाओ।" लड़कोंसे फिर लड़ाई आरम्भ हुई। लड़के बहुत थे। दस मिनटमें सबने मिल कर किसी

तरह प्रधान मंत्री महाशयको जमीनपर पटक ही दिया और थोड़ीसी कालिख भी उनके मुँह पर लगा ही दी! तब आपको लड़कोंसे पीछा छुड़ानेकी सूझी। आपने कहा—"ठहरो, हो गया। मैं तुम लोगोंको दुरुस्त तो कर देता, पर इन दो बड़े आदमियोंको अधिक समय तक बैठाना ठीक नहीं होगा।" तब लड़कोंने उन्हें एक तौलिया और थोड़ा पानी लाकर दिया। मुँह धोकर पिटने लार्डोंसे भेंट की और उनके बिदा होते ही फिर लड़ाई-झगड़ा आरम्भ हो गया। यदि पिटके घर भी कोई बाल-बच्चा होता, तब तो उसके इस कृत्यका उतना महत्त्व न होता। पर सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उसने आजंन्म विवाह ही नहीं किया था।

लेबनिज प्रायः लड़कोंको पढ़ते समय देखा करता था और बड़े ध्यानसे उनकी बातें सुना करता था। बहुत देर तक इसी तरह बैठा कर वह लड़कोंको मिठाई देकर बिदा कर देता था और तब फिर अपने काममें लग जाता था। रोसियो रास्ता चलते समय खड़ा होकर लड़कोंका खेल-कूद और उत्पात देखने लग जाता था और इसमें उसे बहुत आनन्द मिलता था। नेपोलियन और वेलिंगटनको भी लड़कोंसे बहुत शौक था। नेपोलियन रोमके शिशु-राजाको गोदमें लेकर शीशेके सामने खड़ा हो जाता था और उसे दिखला कर खूब मुँह चिढ़ाता था। वेलिंगटन्न लड़कोंके साथ खेला करता था और उन्हें तरह तरहकी चीजें दिया करता था।

जो लोग फुरसतका समय आनन्द-पूर्वक बिताना चाहते हों, उन्हें इस प्रकारके किसी छोटे-मोटे विनोदमें लग जाना चाहिए। साधारणतः सब लोग सदा ऐसे बड़े काम नहीं कर सकते जिनमें

उन्हें आनन्द मिलता हो ; क्योंकि अधिक समय तक उन्हीं कामों को करके मन बहलाना उनकी बित्तके बाहर होता है। पर इस प्रकारके छोटे-मोटे शौक बिना खर्चके और सब जगह पूरे किये जा सकते हैं। और वास्तविक सुख भी इन्हीं छोटी छोटी बातों से ही मिलता है। बहुत लोग आनन्द प्राप्त करनेके लिये "बगलमें लड़का, शहरमें ढिंढोरा" वाली कहावत पूरी करते हैं और जी बहलानेके लिये बहुत कष्ट उठाते और बड़े-बड़े प्रपंच रचते हैं। ऐसे लोग यदि इस प्रकारके छोटे-मोटे कामोंका शौक करें, तो उन्हें इतना आनन्द मिले कि वे बड़े बड़े मेले तमाशे आदि भूल जायँ। प्रत्येक मनुष्यके लिये एक ऐसे ही साधारण, पर सुखदायक कामकी आवश्यकता है, जिसमें वह जब जी चाहे तब लग सके और तुरन्त अपना जी बहला सके।

जिस मनुष्यका सारा समय तरह-तरहके कामोंमें बँटा रहता है, उसके दिन बड़े ही आनन्दसे बीतते हैं। जिस समम परिश्रम करता-करता मनुष्य थक जाय, उस समय किसी साधारण काममें लग कर अपना जी बहला ले; उसकी सारी थकावट दूर हो जायगी और उसमें काम करनेकी नई शक्ति आ जायगी। इस प्रकार फुरसतका समय साधारण विद्या-विनोदमें लगा कर बहुतसे लोगोंने बड़े-बड़े आविष्कार तक कर डाले हैं। चार्ल्स व्हीटस्टोन पहले बाजे बनाया करता था; पर फुरसतके समय शब्दकी उत्पत्ति और गति आदि पर विचार करते-करते उसने तारके द्वारा समाचार भेजनेकी तरकीब ढूँढ़ निकाली। नाइप, फौजमें नौकर था; पर उसे भौतिक विज्ञानका शौक था। इस लिये उसने फोटोग्राफीका आविष्कार किया। मि० लैसलका असली काम अत्तारीका था; पर उसे ज्योतिषका भी शौक था। उसने एक

बहुत बढ़िया दूरबीन बनाई थी, जिसकी सहायतासे उसने छः सौसे अधिक नीहारिकाओं, आरोयनके नये तारे, नेपचून या वरुणके उपग्रह, शनिके आठवें उपग्रह और भूरेनस या वारुणीके दो और उपग्रहोंका पता लगाया था। इन सब उदाहरणोंसे सिद्ध होता है कि मनुष्य प्रत्येक अवस्था और परिस्थितिमें रह कर अपनी उन्नति तथा मानव-जातिका कल्याण कर सकता है। जान्सनने कहा है कि "यदि वृद्धावस्था में किसी मनुष्यका मन मर जाय और कोई काम करनेके योग्य न रह जाय, तो इसमें स्वयं उस मनुष्यका ही दोष है।"

बहुतसे लोगोंने तो बीमारीकी दशामें ही बहुत बड़े-बड़े आविष्कार और कार्य्य कर डाले हैं। बात यह है कि विद्या और ज्ञानका प्रेम सदा मनुष्यको उन्नत ही करता है। इसके अतिरिक्त जिस मनुष्यमें विद्याके प्रति अनुराग होता है, वह कभी स्वार्थी या नीच नहीं हो सकता और जिन लोगोंमें किसी विद्या या कलाके प्रति अनुराग नहीं होता, वे प्रायः निकम्मे रहते, बल्कि तरह-तरहसे लोगोंका अपकार करते फिरते हैं। इस प्रकार लोगोंको हानि पहुँचानेकी अपेक्षा मनुष्यके लिये यह कहीं अच्छा है कि वह किसी बिलकुल ही निरर्थक विद्या या ज्ञानके सम्पादनमें लग जाय।

बहुतसे लोगोंको पुरानी किताबें, चित्र या सिक्के आदि जमा करने का शौक होता है। कोई सिर्फ दोस्तोंके साथ गप लड़ाने का शौकीन होता है। राजा पंचम चार्ल्स फुरसतके समय बहुत-सी घड़ियोंमें चाबी देकर उन्हें मिला दिया करता था। उसे यह देखकर बहुत ही आश्चर्य्य होता था कि उनमेंसे कोई दो घड़ियाँ बराबर साथ साथ नहीं चलती थीं; उन सबमें कुछ न कुछ

अन्तर अवश्य पड़ जाता था। साम राजर्सने एक ऐसे भले आदमीकी जिक्र की है, जिसने एक प्रकारका ऐसा बोरा निकाला था, जिसमें बैठ कर वह अपनी खिड़कीके रास्ते चटपट गलीमें पहुँच जाता था। एक-बार रातके समय उसकी स्त्री कहींसे तमाशा देखकर लौटी। उस समय वह सोया हुआ था। उसकी गाड़ीकी खड़-खड़ाहट सुनकर उसने समझा कि मकानमें आग लगी है और उसे बुझानेके लिये लोग पम्प लाये हैं। उसने चट अपना बोरा उठाया और खिड़कीके रास्ते वह गलीमें पहुँच गया, जहाँ सामने ही उसे गाड़ी परसे उतरती हुई उसकी स्त्री मिली।

ऊपर जितनी बातें बतलाई गई हैं उनसे सिद्ध होता है कि प्रत्येक मनुष्यको और विशेषतः मानसिक श्रम करनेवालोंको सदा संयम और नियम-पूर्वक रहना चाहिए और कभी अध्ययन, व्यायाम, भोजन, पान और यहाँ तक कि विश्राममें भी अति न करनी चाहिए। लार्ड बेकनने कहा है—"प्रकृति पर विजय पानेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि उसकी आज्ञा मानें।" प्रकृतिका सर्व-प्रधान नियम यह है कि हम कभी किसी काममें अति न करें। जीवनको सुख-पूर्ण और फलतः दीर्घ बनानेका सबसे अच्छा उपाय यही है।

मनुष्यके लिये संयमकी भी बड़ी भारी आवश्यकता है। बहुतसे प्राचीन विद्वानोंका तो यहाँ तक मत है कि प्रतिभाका पालन-पोषण संयमसे ही होता है। सबसे पहला संयम तो भोजनमें होना चाहिए। अन्न न मिलनेके कारण उतने अधिक लोग नहीं मरते जितने अधिक भोजन करनेके कारण मर जाते हैं। प्रायः मानसिक श्रम करनेवालोंकी पाचन-शक्ति बहुत ही दुर्बल होती है; अतः जो कुछ वे खाते हैं वह उनके लिये बहुत

अधिक होता है और बहुत अधिक भोजन दिमागको खराब करता और उसका बल घटाता है। संसारमें जितने बड़े-बड़े महात्मा हो गये हैं, वे सब बहुत ही परिमित आहार-विहार आदि करते थे। एक महात्माका उपदेश है—"यदि तुम अपने मनसे पूरा और ठीक काम लेना चाहते हो, तो सदा अपने शरीरका ध्यान रखो।" ठीक तरहसे काम करनेके लिये दोनोंकी जीवनी-शक्तिको बनाये रखनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। बहुतसे दुर्बल मनुष्योंने भी केवल संयमके कारण ही दीर्घ-जीवन प्राप्त किया है। ऐसे मनुष्योंके लिये मृत्यु भी कभी कष्टदायक नहीं होती। अन्त समय वे मानों लम्बी यात्रा करके सोनेके लिये जाते हैं। एक महापुरुषका नियम था कि जब तक उसे भूख नहीं लगती थी, तब तक वह कभी भोजन नहीं करता था; जब उसका जी नहीं चाहता था, तब वह कभी अध्ययन नहीं करता था। नित्य वह कुछ न कुछ काम करता था, पर कभी बहुत अधिक काम न करता था और उसमें सबसे बढ़ कर यह बात थी कि वह सदा प्रसन्न रहता था। भोजनके विषयमें सिडनी स्मिथने लार्ड मेरेको एक पत्रमें लिखा था कि यदि आप सदा प्रसन्न और सुखी रहना चाहते हों, तो आप जितना भोजन और पान कर सकते हों, सदा उसका आधा करें। अधिक भोजनसे होनेवाली हानियाँ और अल्प भोजनसे होनेवाले लाभ इतने अधिक हैं कि सहजमें उनकी गणना नहीं हो सकती; हाँ विचार-वान् पाठक स्वयं उनका अनुमान कर सकते हैं।

मिताहारी होनेके अतिरिक्त इस बातकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि मनुष्य कभी किसी प्रकारके नशे या मादक द्रव्यका व्यवहार न करे। साधारणतः लोग अधिक पुष्ट होनेके लिये

नशेका व्यवहार करते हैं; पर शरीर पर उसका परिणाम उलटा ही पड़ता है; किसी प्रकारका मादक द्रव्य सेवन करनेके थोड़ी देर बाद तक शरीरमें अवश्य कुछ अधिक बल और फुर्ती मालूम होती है, पर वह बल और वह फुर्ती शीघ्र ही नष्ट हो जाती है और उसके स्थान पर आलस्य और शिथिलता आ जाती है। मादक द्रव्यके सेवनका अभ्यास हो जानेका मुख्य कारण यही है कि उस समय मनुष्यको फिर नये बल और फुर्तीकी आवश्यकता होती है, जिसकी प्राप्तिके लिये उसे फिर उस मादक द्रव्यका सेवन करना पड़ता है। इस प्रकार मानों हम अपने बल और जीवन-शक्तिकी जल्दी-जल्दी आहुति देने लग जाते हैं और बराबर मृत्युके समीप होते जाते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्यको सब प्रकार के मादक द्रव्योंसे सदा बचना चाहिए।

अब सोनेको लीजिए। साधारणतः यही माना जाता है कि अधिक सबेरे सोकर उठना बहुत ही लाभदायक है और वास्तवमें बहुतसे अंशोंमें यही ठीक भी है। प्रातःकाल उठनेसे मनुष्य नीरोग और प्रसन्न रहता है और दिन भर बहुत अच्छी तरह अपने सब काम करता है। पर कुछ लोगोंका मत है कि मनुष्यको देर तक सोना चाहिए। डाक्टर फाउलरने कहा है कि जब तक शरीर स्वस्थ न हो जाय, तब तक बराबर सोये रहो। अधिक सोना अवश्य लाभदायक है; पर हमारी समझमें सूर्य्योदयके उपरान्त अधिक देर तक सोना कभी लाभदायक नहीं हो सकता। जो लोग सूर्य्योदयके उपरान्त अधिक देर तक सोते हैं, उनके शरीरमें प्रायः दिन भर आलस्य मानों भरा रहता है। मनुष्यको अधिक अवश्य सोना चाहिए, पर उस आधिक्यकी पूर्ति जल्दी सोकर की जानी चाहिए। रातको नौ बजे सो जाना और प्रातः-

काल पाँच बजे उठ बैठना ही अधिक लाभदायक है। एक मनुष्यके लिये आठ घण्टेकी नींद यथेष्ट है।

जो लोग संयम-पूर्वक रहते, थोड़ा भोजन करते, मादक द्रव्योंसे बचते और यथेष्ट सोते हैं, वे तो दीर्घ-जीवी होते ही हैं; पर कुछ विशिष्ट विषयोंका अध्ययन और मनन करनेवाले लोग भी दीर्घ-जीवी होते हैं। प्रकृति-सम्बन्धी विषयों और सिद्धान्तोंका अध्ययन करनेवाले तथा राजनीतिज्ञ लोग अपेक्षाकृत दीर्घ-जीवी होते देखे जाते हैं। बात यह है कि प्रकृति और सत्यका अन्वेषण कठिन भले ही हो, पर वह बहुत ही आनन्ददायक होता है। हफलैण्डने "दीर्घ-जीवी होनेकी कला" नामक जो पुस्तक लिखी है, उसमें उसने बतलाया है—गूढ़ विचार करनेवाले दार्शनिक सदा दीर्घ-जीवी होते हैं। विशेषतः वे दार्शनिक भी और दीर्घ-जीवी होते हैं, जो प्रकृतिका अध्ययन और मनन करते हैं। नवीन महत्त्व-पूर्ण सत्य-सिद्धान्तोंके अन्वेषणसे उन्हें स्वर्गीय सुख मिलता है और यही स्वर्गीय सुख मनुष्यके जीवन को दीर्घ करनेका सर्व-प्रधान साधन है।" तात्पर्य्य यह कि जो मनुष्य सदा सुखी और प्रसन्न रहता है, वह अवश्य दीर्घ-जीवी होता है। दीर्घ-जीवी होनेका दूसरा साधन सदाचार और श्रेष्ठ जीवन है। डा० मालिसने प्रसिद्ध दीर्घ-जीवी मनुष्योंकी एक तालिका बनाई है और उसके अन्तमें लिखा है—"मैंने चाहा था कि इसमें दुराचारी मनुष्योंके भी नाम रखूँ, पर मुझे एक भी दुराचरी दीर्घ-जीवी न मिला।" इससे सिद्ध होता है कि सदाचार और दीर्घ जीवनका भी घनिष्ट सम्बन्ध है। साथ ही इसी सदाचार पर ही मनकी प्रसन्नता भी निर्भर करती है; क्योंकि दुराचारी मनुष्य कभी प्रसन्न और सुखी रह ही नहीं सकता। दार्शनिकों आदि

के अतिरिक्त राजनीतिज्ञ और राज्य-संचालक आदि भी दीर्घ-जीवी होते हैं। जो लोग दूसरोंके जीवनको सुख-पूर्ण बनानेका प्रयत्न करते हों, स्वयं उनके जीवनका सुख-पूर्ण और फलतः दीर्घ होना बहुत ही स्वाभाविक है। वकील, बैरिस्टर और जज आदि भी प्रायः दीर्घ-जीवी होते हैं। इसका कारण कदाचित् यही है कि वकीलों और जजों आदिको बीच-बीचमें विश्राम करनेका भी यथेष्ट अवसर मिलता है। पर दुर्भाग्य-वश लेखक और कवि आदि प्रायः अल्प-जीवी होते हैं और इसका कारण यही है कि साहित्य-सेवा उनके लिये नशेसे भी बढ़कर हो जाती है। परोपकार तो अवश्य करते हैं; पर परोपकारीके मनको जो प्रसन्नता होनी चाहिए, उस प्रसन्नताका वे भोग नहीं करते। वे सदा काममें लगे रहते हैं और कभी विश्राम नहीं करते। और यही प्रसन्नता तथा विश्रामका अभाव, जीवनके दीर्घ होनेमें बाधक होता है।

आठवाँ प्रकरण

शहर और देहात

यह आवश्यक नहीं कि बड़े-बड़े शहरोंमें बड़े-बड़े लोग उत्पन्न हों ही, बल्कि शहरका जीवन और निवास तो बहुतसे अंशोंमें छोटे आदमियोंको उत्पन्न करनेके लिये ही अधिक उपयुक्त और अनुकूल है। शहरमें या तो व्यापार अधिक होता है या ऐश आराम और ये ही दोनों बातें मानसिक उन्नतिमें बहुत बाधक होती हैं। शहरमें रहनेवाले बालकोंकी मानसिक उन्नति नियमित और स्वाभाविक नहीं होती, बल्कि अनियमित और अस्वाभाविक होती है। शहरमें रहनेवाले लड़के बहुत तेज और चलते हुए होते हैं और बड़े होने पर जब वे अपने काममें लग जाते हैं, तब उनकी मानसिक उन्नति वहीं रुक जाती है।

नागरिक जीवनको मानसिक कार्य्यका शत्रु ही समझना चाहिए। नगरोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाली बातें बहुत अधिक होती हैं और शान्ति तथा विश्रामके साधन बहुत कम होते हैं। नगर-निवासी दिन भर अपने काम-धन्धेमें ही लगे रहते हैं; बहुत हुआ तो उन्होंने कोई अखबार पढ़ लिया या आधीरात तक जाग कर थिएटर-सरकस या और कोई मेला-तमाशा देख लिया। ऐसे मनुष्योंकी कभी मानसिक या आत्मिक उन्नति नहीं हो सकती; वे लखपती और करोड़पती भले ही बन जायँ।

प्रायः सभी देशोंके सभी महापुरुष देहाती होते हैं। इसका कारण भी बहुत ही स्पष्ट है। शहरमें बहुतसे लोग रहते हैं; कोई एक दूसरेको जानता-पहचानता नहीं। सब अपने अपने काममें लगे रहते हैं। बहुत बड़े बड़े शहरोंमें तो यहाँ तक होता है कि एक ही मकानमें रहनेवाले बहुतसे लोग एक दूसरेको नहीं जानते। शहरमें रहनेवाले लोग या तो अपना काम-धन्धा करना जानते हैं और या अपनी जरूरतें पूरी करना और ऐश-आराम करना। आगे बढ़ने की उत्तेजना उन्हें मिलती ही नहीं। पर देहातियोंका जीवन इससे बहुत भिन्न होता है। उनमेंसे प्रत्येकका कुछ व्यक्तित्व और कुछ उत्तर-दायित्व होता है। इसके अतिरिक्त उन्हें बहुतसे ऐसे काम स्वयं करने पड़ते हैं, जो शहरवालोंके लिये दूसरोंको करने पड़ते हैं। देहातमें मनको क्षुब्ध करने और बहकाने-वाली बातें भी नहीं होती, जिनसे मनुष्यको उन्नति करनेका यथेष्ट अवसर मिलता है। हर एक देहाती अपने पड़ोसियों को जानता है और उसके पड़ोसी उसे जानते हैं। उसके मित्र प्रायः ऐसे होते हैं, जिनका साथ आजन्म रहता है और किसी युवकके लिये बहुतसे लोगोंके साथ जान-पहचान पैदा करनेकी अपेक्षा, किसी एक भले आदमीसे गाढ़ी मित्रता कर लेना बहुत अच्छा है। उसे अपने साथियोंके साथ बराबर काम पड़ता है। उस पर सब बातोंका अच्छा प्रभाव पड़ता है और यदि उसका मन शुद्ध हो, तो वह पूर्ण सदाचारी हो जाता है। केवल उसकी भाषामें ही देहातीपन नहीं होता, बल्कि आचार-विचार और व्यवहार आदिमें भी देहातीपन होता है, जो कि शहराती-पनसे कहीं अधिक शुद्ध और श्रेष्ठ होता है।

देहाती बालकको देखनेके लिये चाहे थोड़ीही चीजें मिलें, पर वह उनका निरीक्षण बहुत ही अच्छी तरह करता है। इसका कारण यह है कि एक तो वे चीजें अधिक मनोहर और आकर्षक होती हैं और दूसरे यह कि वे उसके सामने अधिक समय तक रहती हैं। यह एक साधारण नियम है कि जो चीज जल्दीसे हमारी आँखोंके सामनेसे निकल जाय, वह न तो हमारे लिये अधिक मनोरंजक होती है और न अधिक समय तक हमें उसकी स्मृति रहती है। इसीलिये देहात में रहनेवालोंकी प्रकृति और मनुष्यों का पूरा-पूरा ज्ञान होता है। देहातों और गाँवोंमें सब लोग एक दूसरेको जानते हैं। देहाती बालकों को प्रत्येक मनुष्यके अच्छे और बुरे कामों का पूरा पूरा पता रहता है। उन्हें अपने वंशका इतिहास भी अच्छी तरह मालूम रहता है। पर बड़े-बड़े शहरोंमें जहाँ कि बहुतसे लोग रहते हैं, कोई एक दूसरेको नहीं जानता। इसीलिये उनमें पारस्परिक सहानुभूति और प्रेम-भावका भी अभाव ही रहता है। गाँवोंकी अपेक्षा नगरोंमें सामाजिक सम्बन्ध बहुत दूर जा पड़ता है।

शहरके लड़के अवश्य ही जल्दी सयाने हो जाते हैं; पर देहाती लड़कोंमें सयाने होनेके समय उनकी अपेक्षा कई विशेषताएँ होती हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि देहाती सब काम अपने ही बल पर करता है और उसे अपने बहुत काम स्वयं ही करने पड़ते हैं। इस प्रकार उसे स्वावलम्बनकी बहुत ही आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण शिक्षा मिलती है। अब जब वह किसी नगरमें पहुँच जाता है, तब कुछ तो चकित और कुछ प्रसन्न होता है। वह अपने आपको एक नये संसारमें पाता है; उसमें

आकांक्षाएँ उत्पन्न होती हैं, जिनकी पूर्त्तिके प्रयत्न में वह लगता है और तब वह बहुधा उन्नति करता हुआ बहुत ही अच्छे दरजे तक पहुँच जाता है। इस प्रकार शहरवाले बालककी अपेक्षा देहातका बालक अच्छी उन्नति कर लेता है। एक विद्वान्का मत है—"ज्ञान और राजनीतिके बड़े-बड़े क्षेत्रोंमें प्रायः महापुरुष उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं होती। जहाँ माता-पिताकी शक्ति आप ही क्षीण होती रहती हो, वहाँके बालकोंमें शक्तिका अभाव होना बहुत ही स्वाभाविक है। इसीलिये राजनीति, विज्ञान या कला आदिके जितने बड़े-बड़े पण्डित हुए हैं, उनमेंसे बहुत ही कम ऐसे हैं, जिनका जन्म किसी बहुत बड़े नगरमें हुआ हो।"

देहातमें रहनेवाले लोगोंको प्रकृतिके भिन्न भिन्न अंगोंके निरीक्षणका बहुत अच्छा अवसर मिलता है। वे पशु-पक्षियों और कीट-पतंगों आदिके सम्बन्धमें बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और वनस्पतियों आदिके विषयमें बहुत-सी बातोंसे परिचित हो सकते हैं। एकान्त-वासका सुख भी वे बहुत अच्छी तरह भोग सकते हैं और फलतः वे बहुत कुछ काम भी कर सकते हैं। बहुत उच्च श्रेणीका कार्य्य, विचार या मनन आदि करनेके लिये यह बात बहुत ही आवश्यक है कि मनुष्य किसी ऐसे एकान्त स्थानमें रहे, जहाँ उसे पूर्ण शान्ति मिले और जहाँ मनको विचलित या क्षुब्ध करनेवाला कोई साधन न हो और ऐसा एकान्त स्थान केवल देहातोंमें ही मिल सकता है। नगरोंमें तो स्वप्नमें भी उसके दर्शन नहीं हो सकते। एकान्त-वास कभी मनुष्यकी शिक्षा और ज्ञान-वृद्धि आदिमें बाधक नहीं हो सकता; बल्कि उससे इन बातोंमें बहुत कुछ सहायता मिलती है। अच्छी

तरह विचार और मनन केवल एकान्तमें ही हो सकता है। एकान्तमें ही मनुष्यको सब वस्तुओंके निरीक्षणका अवसर मिलता है। एकान्तमें ही वह शान्त, सन्तुष्ट और अपने आपमें लीन रहता है और एकान्तमें ही वह सत्य सिद्धान्तोंका अन्वेषण कर सकता है। इसी लिये बड़े-बड़े महात्मा विद्वान् और वैज्ञानिक एकान्तवासमें ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करते हैं और वहीं उन्हें स्वर्गीय सुख मिलता है। अपने उस एकान्त-वासके और उसमें मिलनेवाले स्वर्गीय सुखके सामने, वे जनपदोंके निवास और राज-सुखको भी तुच्छ और हेय समझते हैं। टीकेका आविष्कार करनेवाला डा० जेनर गाँवमें ही रहता था। एक बार उसके एक मित्रने उससे आग्रह किया था कि तुम मेरे साथ चल कर लण्डनमें रहो; पर उसने अपना गाँव छोड़नेसे इन्कार कर दिया था। जब उसने जेनरसे कहा कि भला हमें वह अंगूठी तो दिखलाओ, जो रूसके सम्राट्ने तुम्हें भेजी है, तब उसने उत्तर दिया—"उसे छोड़ो, आओ, चलो बागमें चलें और वहाँ तितलियोंकी गुनगुनाहट सुनें।"

वर्ड्स्वर्थ और सूदे देहातमें ही रहते थे। सूदेकी तबीयत तो लण्डनके ब्रिटिश म्यूजियमके पुस्तकालयमें बैठे बैठे भी घबराती थी और उसे अपना गाँव याद आया करता था। सिडनी स्मिथने अपने एकान्त-वास के सम्बन्धमें एक मित्रको लिखा था—"मैं आजकल प्रायः एकान्तमें रहता हूँ और मेरा विश्वास है कि मैं इस प्रकार रह कर अपने दोष दूर करता और अपने आपको सुधारता हूँ।" उसे पशुओं आदिसे इतना प्रेम था कि उसने अपने खेतमें काठका एक बड़ा चौखटसा लगा रखा था, जिसके साथ सब तरहके जानवर—मेमनोंसे लेकर बैल तक—आकर

अपना शरीर रगड़ते और खुजलाते थे। अपने प्रायः सभी सर्व-श्रेष्ठ लेख उसने देहातमें ही बैठ कर लिखे थे। कारलाइलका जन्म तो देहातमें हुआ ही था। उसका अधिकांश जीवन भी देहातमें ही बीता था। जिस समय सन् १८३३ में, एमर्सन उससे मिलने गया था, उस समय वह ऐसे एकान्त स्थानमें रहता था, जहाँ किरायेकी गाड़ी भी न जा सकती थी और जहाँ पन्द्रह मीलके घेरेमें बात-चीत करनेके लिये एक पादरीके सिवा और कोई आदमी ही नहीं था। जी बहलानेके लिये उसके पास पुस्तकोंके अतिरिक्त और कोई साधन ही नहीं था। गोल्डस्मिथ-का ग्राम-प्रेम उसके कई ग्रन्थोंसे खूब झलकता है। वाल्टर स्काट तो सभी बातोंमें पूरा पूरा देहाती था। बाल्यावस्थामें ही उसमें ग्राम-प्रेम उत्पन्न हुआ था। उसने अपने घरके चारों तरफ बहुतसे पेड़ अपने हाथसे लगाये थे। उसने अपने उपन्यासोंमें स्काटलैण्डके गाँवोंका जो सुन्दर और हृदय-ग्राही वर्णन किया है, केवल उसी वर्णनको पढ़ कर युरोप और अमेरिका आदिके बहुतसे लोग स्काटलैण्डकी शोभा देखनेके लिये जाते थे। उसकी कलममें मानों जादू भरा था। स्काटलैण्डके उन पहाड़ी स्थानोंमें जहाँ पहले कभी कोई झाँकता भी न था, सिर्फ उसकी कलमकी कृपासे वहाँ पहुँचनेवाले यात्रियोंके लिये बहुतसी रेलें, सड़कें और होटल बन गये हैं। रिचरने अपने आत्म-चरितमें जन्मभूमिका महत्त्व बतलाते हुए लिखा है कि "कोई कवि किसी बड़े शहरमें जन्म न ले और न वहाँ पाला-पोसा जाय। यदि हो सके तो उसका जन्म और पालन किसी गाँव, देहात या छोटे कसबेमें ही हो।" उसकी सम्मतिमें बड़े नगरोंका बालकके कोमल मन पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है, बाल्यावस्थामें ही

उसमें बहुत कुछ शिथिलता आ जाती है। वह पहलेसे ही बड़ी बड़ी चीजें देखता रहता है, जिसके कारण उसके मनमें कोई उच्चाकांक्षा नहीं रह जाती और प्रायः वह किसी छोटेसे गाँवमें जानेकी इच्छा करता है। शेक्सपियर, बर्न्स, काउपर और थामसन सभी देहाती थे और इसीलिये उन लोगोंने ग्राम्य-जीवनके बहुत ही सुन्दर चित्र खींचे हैं। वर्ड्स्वर्थ तो प्रकृति देवीका बहुत ही बड़ा भक्त था। वह सदा जंगलों और पहाड़ोंमें घूमा करता था। सर फिलिप सिडनी, वालर, वर्क, डिसराइली, पोप, शेन्सटन और वाइरन आदि सभी देहातोंमें रहा करते थे।

यह तो हुई अँगरेजी कवियों और विद्वानों आदिकी बात। अब अपने देश भारतवर्षको लीजिए, जो सदासे कृषि-प्रधान रहा है और जहाँका ग्राम्य-जीवन संसारके प्रायः सभी देशोंके ग्राम्य-जीवनसे कहीं अच्छा माना जाता है। ग्राम्य और प्राकृतिक शोभाका जितना अच्छा वर्णन हमारे यहांके प्राचीन कवियोंने किया है, उतना अच्छा वर्णन कदाचित् ही और किसी देशके कवियोंने किया हो और एकान्त-वासका जितना अधिक महत्त्व हमारे यहाँके विद्वानों और महात्माओंने समझा है, उतना कदाचित् ही किसी अन्य देशके विद्वानों और महात्माओंने समझा हो। बहुत प्राचीन और इतिहास-पूर्व वैदिक कालमें तो लोगोंका ग्रामीण और ग्रामप्रेमी होना स्वाभाविक ही था; पर उसके उपरान्त निरन्तर उन्नति होने पर भी और बड़े बड़े नगरोंके बस जाने पर भी यहाँके महात्माओंका ग्राम-प्रेम नहीं छूटा था। हमारे यहाँके आदिकवि वाल्मीकि और व्यासने रामायण और महाभारतमें स्थान-स्थान पर जिस सुन्दर प्राकृतिक शोभाका वर्णन

किया है, उसी सुन्दर प्राकृतिक शोभाका वे लोग आजन्म बहुत ही सूक्ष्म दृष्टिसे निरीक्षण किया करते थे। वाल्मीकि-कृत पम्पा-सरका वर्णन पढ़कर आँखोंके सामने मानों चित्र-सा खिंच जाता है। महाकवि कालिदासने रघुवंश, कुमारसम्भव और सबसे बढ़ कर मेघदूतमें प्राकृतिक, ग्राम्य, पर्वतीय और वन-शोभाका जैसा अच्छा वर्णन किया है, वैसा अच्छा सटीक, सूक्ष्म, मनोहर और आँखोंके सामने चित्र खड़ा कर देनेवाला वर्णन संसारके किसी साहित्यमें कदाचित् ही मिले। कालिदासके जीवनका अधिकांश यदि देहातों, जंगलों और पहाड़ोंकी शोभा अच्छी तरह निरखनेमें न बीता होता, तो वे कभी इतनी उच्च कोटिका वर्णन हमारे सामने उपस्थित न कर सकते। कुमारसम्भवके पहले सर्गमें हिमालयका और तीसरे सर्गमें वसन्तऋतुका जो सुन्दर और समीचीन वर्णन है, वह क्या कभी बिना सूक्ष्म दृष्टिसे निरीक्षण किये हो सकता है? रघुवंशके तेरहवें सर्गमें जहाँ महाकविने पुष्पकविमान पर चलते हुए रामचन्द्र के मुँहसे सीताको नीचेके सागर, वन, पम्पासर, गोदावरी और अगस्त्य सुतीक्ष्ण, ऊर्ध्वबाहु, शरभंग तथा अत्रिके आश्रम आदि, गंगा-यमुनाका संगम और सरयूनदी आदि दिखाते हुए जो वर्णन कराया है, वह कितना अद्भुत और अभूत-पूर्व है उससे कविके प्रकृति-प्रेमका परिचय मिलता है? मेघदूतमें तो मानों इस प्रकारके वर्णनका अन्त ही कर दिया है। बल्कि यह कहना चाहिए कि कालिदासने प्रकृति-देवीका भली भाँति निरीक्षण करके जो आनन्द और अनुभव प्राप्त किया था, सर्व-साधारणको वही आनन्द और अनुभव प्राप्त कराने तथा अकाशा-मार्गसे जाने-वालेको नीचेके वनों, पर्वतों, नदियों और प्रदेशों आदिकी दिखाई

पड़नेवाली शोभाका वर्णन करनेके उद्देश्यसे ही मेघदूतकी रचना की थी। महाकवि माघका तो प्रकृति-निरीक्षण और वर्णन और भी बढ़-चढ़ कर है। इसके अतिरिक्त संस्कृतके प्रायः जितने छोटे बड़े कवि, हैं सबको प्रकृतिसे बहुत प्रेम था, जिसका परिचय उन्होंने अपने अपने काव्योंमें दिया है। इस स्थान पर कदाचित् यह बतलानेकी आवश्यकता न होगी कि प्रकृतिकी पूरी पूरी शोभा गाँवोंमें रहने और जंगलों-पहाड़ोंमें घूमनेवालोंको ही दिखाई पड़ती हैं; बड़े-बड़े नगरोंमें रहनेवालोंके भाग्यमें उसके दर्शन नहीं होते और न कदाचित् यह कहनेकी आवश्यकता है कि प्राकृतिक शोभाका वर्णन, बिना आँखों देखे करना असम्भव नहीं, तो बहुत कुछ दुस्साध्य अवश्य है। हम उसे असम्भव इस लिये नहीं कह सकते कि कुछ प्रतिभाशाली कवि ऐसे भी हो गये हैं, जिन्होंने बिना प्राकृतिक शोभा देखे ही उसका वर्णन कर डाला है। मिलटनका जन्म लण्डनमें हुआ था और उसका अधिकांश जीवन भी वहीं बीता था। पर केवल पुस्तकें पढ़ कर ही वह प्राकृतिक दृश्योंका अच्छा वर्णन करनेमें समर्थ हो सका था। इससे भी बढ़ कर हमारे सूरदासने, जो जन्मान्ध माने जाते हैं, गोचारण आदिके सम्बन्धमें वन-शोभाका बहुत कुछ वर्णन किया है।

हिन्दी-कवियोंमें चन्द वरदाईका प्रकृति-प्रेम और वर्णन बहुत बढ़ा-चढ़ा है। उसका मृगया, यात्रा, वन, उपवन, वर्षा, शरद और बसन्त आदि सभीका वर्णन बहुत ही मनोहर और सजीव है। जायसीने भी केवल देहाती होनेके कारण ही "पद्मावत" में प्रकृतिकी शोभाका थोड़ा बहुत वर्णन किया है। उसका षट् ऋतु, दुर्ग और समुद्र आदिका वर्णन भी बुरा नहीं है। गोस्वामी

तुलसीदासका जन्म तो गाँवमें हुआ ही था; इसके अतिरिक्त वे मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्रकूट पुरी आदि स्थानोंमें भी भ्रमण किया करते थे, जिससे उन्हें प्रकृतिके निरीक्षणका अच्छा अवसर मिलता था। महाकवि केशवदास, पद्माकर, महाराज छत्रसाल, लाल कवि, बोधा, ठाकुर, कल्याणदास, काले, बकसी हँसराज, नवलसिंह आदि प्रसिद्ध कवियोंने बुन्देल-खण्डमें ही, जिसे बहुतसे अंशमें प्रकृति-देवीका एक मन्दिर ही समझना चाहिए, जन्म लिया था। सेनापति, बिहारीलाल, मतिराम, सबलसिंह, भूषण, भिखारीदास, तोष, रसलीन आदि सभी बड़े बड़े कवियोंने गाँवमें ही जन्म लिया था और इनमेंसे बहुतोंने अपना अधिकांश जीवन भी वहीं बिताया था तथा ग्रामीण शोभाने ही इन लोगोंकी प्रतिभाकी स्फूर्त्ति की थी।

गाँवमें केवल प्रतिभाशाली लोग ही नहीं रहना पसन्द करते, बल्कि बड़े-बड़े महात्मा, धर्म्म-प्रचारक और सिद्ध पुरुष भी एकान्त-वास ही पसन्द करते हैं। महात्मा बुद्धसे लेकर शंकराचार्य्य, कबीर, नानक, गोरखनाथ दादू दयाल, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ आदि सभी महापुरुषोंने अपना बहुत-सा समय एकान्त-वासमें ही बिताया था और वहीं बहुत कुछ चिन्तन मनन किया था। उक्त महात्माओंमेंसे अनेक, समय-समय पर जंगलों और पहाड़ों की तरफ़ निकल जाते थे और वहीं परमानन्दमें लीन हो जाते थे। लोगोंको उपदेश देनेमें और उन्हें सन्मार्ग पर लानेमें तो उन्हें आनन्द मिलता ही था; पर यदि यह कहा जाय कि उनका एकान्त-वास ही बहुतसे अंशोंमें उन्हें इतने बड़े-बड़े

काम करनेमें समर्थ बना सका और सहायक हुआ तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

गाँव-देहात आदिमें रहनेसे केवल प्रतिभा आदिकी ही स्फूर्ति नहीं होती, बल्कि मनुष्यका शारीरिक बल भी बहुत बढ़ता है। देश और जातिकी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिये हट्टे-कट्टे और मजबूत आदमियोंकी जरूरत होती है और ऐसे आदमी सिवा गाँव-देहातके या पहाड़ों और जंगलोंके और कहीं मिल नहीं सकते। कठिन शारीरिक श्रम कर सकनेके योग्य मनुष्य नगरोंमें भला कहाँ मिलेंगे? वहाँ तो केवल दुबले-पतले, नाजुक और रोगी बाबुओंके ही दर्शन होंगे। सभ्य और संस्कृत जीवनके सब काम तो इन्हीं गँवारों और देहातियों पर ही निर्भर करते हैं।

महाराज रामचन्द्रने जिस समय लंका पर चढ़ाई की थी, उस समय उनकी सहायता इन्हीं जंगली और पहाड़ी लोगोंने की थी और उन्हींकी सहायतासे वे लंका पर विजय प्राप्त कर सके थे। जिस समय शहाबुद्दीन महम्मद गोरीने भारत पर अनेक आक्रमण किये थे, उस समय देहातियों और गँवारोंने ही उसका साथ दिया था और यहाँ भारतमें भी देहातियों और गँवारोंने ही उसका सामना भी किया था। देहातियोंने ही अनेक बार मुसलमानोंसे राजपूतानेके अनेक राज्यों और दुर्गोंकी रक्षा की थी। देहातियों ने शिवाजीके साथ मिल कर महाराष्ट्र साम्राज्य की तथा महाराज रणजीतसिंहके साथ मिल कर सिख-साम्राज्य की स्थापना की थी।

स्वयं बड़े-बड़े विजयी और वीर सम्राटों तथा सेना-नायकों आदि ने भी देहातमें ही जन्म लिया था उन लोगों ने अपना अधिकांश प्रारम्भिक जीवन गाँवों, देहातों, पहाड़ों और जंगलोंमें ही बिताया

था। छत्रपति शि ाजी, महाराज रणजीतसिंह, सम्राट् अकबर आदि देहाती ही थे। वर्त्तमान युरोपीय महायुद्धमें जितने योद्धा जूझ रहे हैं, उनमेंके लगभग तीन चतुर्थांश देहाती और गँवार ही हैं।

बात यह है कि युद्ध आदि कामोंके लिये देहाती, गँवार और खेतिहर आदि ही उपयुक्त होते हैं। शहरवाले तो अपनी सभ्यताके विचारसे ही जहाँके तहाँ पड़े रह जायँगे। जिन लोगोंका सारा जीवन बढ़िया-बढ़िया सड़कों पर घूमने, कोठी, कारखाने या दूकानमें काम करने अथवा मौज-शौकमें ही बीतेगा, वे भला बीहड़ जंगलों और पहाड़ोंमें जाकर तलवार या बन्दूक चलानेमें क्यों कर समर्थ होंगे?

ज्यों-ज्यों नागरिकता बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों वीरता घटती जाती है। अंगरेज़ों और फ्रान्सीसियों आदिमें वीरताकी कमी होनेका मुख्य कारण यही है कि या तो उनमेंसे अधिकाँश व्यापारी हैं या शौकीन। कुछ दिन पहले डा० बिडो नामक एक बहुत बड़े वैज्ञानिकने ग्रेट ब्रिटेनके निवासियोंके शारीरिक संगठनके सम्बन्धमें एक जाँच की थी। जाँच करनेके उपरान्त उन्होंने यह परिणाम निकाला था कि प्राचीन कालमें अँगरेज़ जातिकी प्रधानता का मुख्य कारण यह था कि उस जातिमें बहुतसे हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ लोग हुआ करते थे। जिस जातिके लोग दुर्बल होते हैं, वे अपना सैनिक और साथ ही साथ व्यापारिक तथा वैज्ञानिक महत्त्व भी खो बैठते हैं। अँगरेज जातिके इस शारीरिक ह्रास या अधःपतनका मुख्य कारण उन्होंने यह बतलाया था कि उसके अधिकांश लोग खेती छोड़ कर शिल्प और व्यापार आदिमें लग गये हैं और इसीलिये उनका यह अधःपतन पैतृक

होकर बढ़ता जा रहा है। उन्होंने यह भी बतलाया था कि इस अधःपतनकी वृद्धिका मुख्य कारण यह है कि कल-कारखानों आदिमें काम करनेवाले लोगोंको अधिक मजदूरी या तनख्वाह मिलती है, जिसके कारण वे खूब शराब और तम्बाकू पीते हैं, जिनसे उनकी सन्तान क्षयी या गरमी आदि रोगोंसे पीड़ित होनेके योग्य हो जाती है, जिससे यह अधःपतन और बढ़ता जाता है। एक स्थल पर उन्होंने कहा है—"यदि हम किसी एक जातिके सम्बन्धमें जाँच करें, तो हमें ज्ञात होगा किजो जाति अपनी शारीरिक उन्नति करती है,वही अधिक कर्म्मण्य और नैतिक दृष्टिसे उन्नत होती है।" इसके उदाहरणस्वरूप डाक्टर महाशयने पंजाबियों और बंगालियोंको उपस्थित किया है। उन्होंने कहा है कि पंजाबी लोग बंगालियोंसे जितने अधिक बलिष्ठ होते हैं, उतने ही वे उनसे अधिक साहसी भी होते हैं। ग्रेट ब्रिटेनके लिये उन्होंने कहा है कि स्काटलैण्डके लोग अधिक बलिष्ठ होते हैं और वे ही सबसे अधिक जातीय सेवा भी करते हैं। वास्तवमें बात भी यही है। अंगरेजी जल और स्थल सेनामें काम करनेवाले सिपाहियों और अफसरोंमेंसे प्रायः आधे आयरिश ही हैं। इसी प्रकार डा० मार्गनने भी एक लेख द्वारा भलीभाँति यह प्रमाणित किया है कि देहातोंकी अपेक्षा शहरोंमें रहनेवालोंका शारीरिक अधःपतन बहुत अधिक होता है।

सम्भव है कि इस अवसर पर किसीके मनमें यह प्रश्न उठे कि भारतवर्ष तो कृषि-प्रधान देश है; फिर यहाँके निवासियोंकी इतनी अधिक दुर्दशा क्यों है? वे क्यों इतने दुर्बल और निर्जीवसे दिखाई देते हैं? तो इसका उत्तर यही है कि शारीरिक अधःपतनके इसके अतिरिक्त और भी दो एक कारण हैं। सबसे

पहला कारण तो भोजनकी न्यूनता है। जिस देशके निवासियों को भरपेट भोजन न मिलता हो, वे केवल गाँवकी हवा ही खाकर हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ नहीं हो सकते। दूसरी बात यह है कि जो लोग अपनी शारीरिक शक्तियों और अंगोंका यथेष्ट उपयोग नहीं करते, उनका भी शारीरिक अधःपात हो जाता है। इस अधःपातका एक तीसरा कारण स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमोंके ज्ञान का अभाव भी होता है। इसमें सन्देह नहीं कि अधिकांश भारत-वासी अवश्य दुर्बल होते हैं। पर तो भी यह मानना ही पड़ेगा कि जो भारतवासी उक्त तीनों कारणोंकी कृपासे मुक्त होते हैं, वे शारीरिक बल, वीरता और साहस आदिमें किसी देशके वीरोंसे कम नहीं होते। इस गिरी हुई दशामें भी जिन भारतवासियोंने युरोपीय रण-क्षेत्रमें जाकर बड़े-बड़े वीरों और योद्धाओंसे टक्कर ली है, वे ही हमारे उक्त कथनके स्पष्ट और जगत्प्रसिद्ध प्रमाण हैं। आप कह सकते कि डा० बिडोके सिद्धान्तके अनुसार कम से कम इन्हीं वीर भारतवासियोंको व्यापार और शिल्प आदिमें उन्नति करनी चाहिए, पर इसमें बहुतसे अंशोंमें स्वतंत्रताका अभाव बाधक होता है। अस्तु।

बड़े-बड़े नगरोंमें बड़े-बड़े कल-कारखाने आदि भले ही हों, पर स्वास्थ्य और शक्तिकी दृष्टिसे बड़े नगर कौड़ी कामके नहीं होते। नगरोंमें आकर तो शारीरिक बलकी अन्त्येष्टि हो जाती है। लार्ड शेफ्ट्सबरीने एक अवसर पर कुछ युवकोंको उपदेश देते हुए कहा था—"आज-कल बहुतसे लोग देहात छोड़ कर शहरोंमें दौड़े चले आते हैं; इसका परिणाम यह हो रहा है कि ये शहर हमारे देहातकी जीवनी-शक्ति और शारीरिक बलको चूसे लेते हैं। एक तो शहरोंकी आब-हवा यों ही

खराब होती है । दूसरे लोग वहाँ जाकर तरह तरहके दुर्व्यसनोंमें फँस जाते हैं, जिससे उनका शारीरिक अधःपात और भी बढ़ जाता ।"

आप पूछेंगे कि शहरकी इतनी निन्दा तो आपने कर डाली और इतने दोष भी दिखला दिये; तब शहरोंमें ऐसी क्या मिठाई है जिसके लिये लोग शहरोंमें दौड़े जाते हैं ? तो इसका उत्तर यह है कि शहरोंमें कुछ गुण और कुछ विशेषता भी अवश्य है। सबसे पहली बात तो यह है कि मनुष्यकी प्रवृत्ति मिल-जुल कर रहनेकी होती है। मिल-जुल कर रहनेसे बहुत कुछ लाभ भी होता है। इस प्रकार लाभ उठानेके जितने अधिक साधन शहरोंमें होते हैं, उतने गाँवों और देहातोंमें नहीं होते। विज्ञान और साहित्य आदिका केन्द्र बहुधा नगरोंमें ही होता है। डा० गथ्रीका कथन है कि बड़े नगरके सामाजिक प्रभावोंमें पड़ कर मनुष्य अपनी परम उन्नत अवस्थाको प्राप्त होता है। वहाँ उसकी बुद्धि खूब तीव्र होती है, वहीं उसकी प्रतिभाको यथेष्ट रूप से विकसित होनेका अवसर मिलता है और वहीं उसकी मानसिक शक्तियोंकी बृद्धि होती है।" लेकिन यह बात इन डाक्टर महाशयको भी माननी पड़ी है कि नगरोंमें लोगोंका स्वास्थ्य अवश्य बिगड़ जाता है; वे बहुत दुर्बल हो जाते हैं और उनका चेहरा पीला पड़ जाता है।

इधर कुछ दिनोंमें संसारने जहां और बहुतसी बातोंमें उन्नति की है, वहाँ इस सम्बन्धमें भी उसने कम उन्नति नही की है। बड़े-बड़े नगरोंके निवासियोंकी पहले जितनी आयु होती थी, अब प्रायः उससे अधिक होने लगी है। अब म्यूनिसिपैलटियां आदि नगरोंके स्वास्थ्य और सफाई आदि पर विशेष ध्यान देने लगी हैं

और यथासाध्य स्वच्छता आदिका प्रबन्ध करने लगी हैं। तो भी अभी इस सम्बन्धमें बहुत कुछ उन्नतिकी आवश्यकता है। नगरोंमें स्वास्थ्यके नष्ट होनेके अनेक कारण हैं, जिनकी यदि किसी प्रकार निवृत्ति हो सके, तो लोगोंका बहुत उपकार हो। पहली बात तो यह है कि नगरोंमें लोगोंके रहनेके लिये बहुत ही थोड़ा स्थान मिलता है और स्वास्थ्य-सम्बन्धी यह एक निश्चित नियम है कि आबादी जितनी ही घनी हो, रोग और मृत्यु-संख्याकी उतनी ही वृद्धि होती है। मनुष्य एक दूसरेके साथ जितना ही अधिक सट कर रहेंगे, उनका जीवन उतना ही कम होगा। दूसरी बात यह है कि कल-कारखानोंके धूएं और बहुतसे पेशेवरोंके कारण भी नगरोंकी वायु दूषित रहती है, जिससे वहाँके निवासियोंका स्वास्थ्य खराब होता है।

बहुतसे लोग शहरोंमें रहना पसन्द करते हैं और बहुत से लोग देहातमें रहना अच्छा समझते हैं। पर बहुत अधिक संख्या ऐसे ही लोगोंकी है, जो देहातमें ही रहना पसन्द करते हैं, अथवा कमसे कम जो देहातमें ही रहते हैं। नगरोंमें रहनेवालोंकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत ही कम है। हम ऊपर कह आये हैं कि बड़े-बड़े विद्वान्, कवि, महात्मा आदि ऐसे हो गये हैं, जो शहर छोड़कर गाँव या देहातमें किसी एकान्त स्थानपर रहा करते थे। इसी प्रकार कुछ ऐसे विद्वानोंके नाम भी लिये जा सकते हैं, जिन्हें नगर-निवास बहुत प्रिय था और जो कभी नगर छोड़ कर देहातमें जाना पसन्द ही न करते थे। प्रसिद्ध डा० जान्सन यद्यपि देहाती थे, तथापि लण्डनको छोड़कर और कहीं उनका मन ही नहीं लगता था। इसका कारण वे यह बतलाते थे कि यहाँ मेरे बड़े-बड़े मित्र हैं, मुझे अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़नेको मिलती हैं और

मेरे मनोविनोदके यहाँ अनेक साधन हैं। सर जोशआरेनाल्डका यद्यपि देहातमें एक बहुत अच्छा मकान था, पर वे भी सदा लण्डनमें ही रहते थे। चार्ल्स लेम्बका सारा जीवन लण्डनमें ही बीता था, उसे लण्डनकी सभी बातें भली मालूम होती थीं। एक बार वर्डस्वर्थ उसे अपने मकान पर ले गया था, जो पहाड़ पर था। उस मकानमें रहना चार्ल्स लैम्बके लिये पहाड़ हो गया! वहाँ उसे हर दम लण्डनका ही ध्यान बना रहता था।

इसी प्रकार बहुतसे ऐसे नागरिक मिलेंगे, जो देहातमें जातेही घबरा जाते हों और जिनकी वहाँ तबीयत ही न लगती हो। साथ ही ऐसे देहातियोंकी भी कमी नहीं है, जो शहरका नाम सुनते ही घबरा जाते हों और शहरमें पैर रखते ही जिनकी अक्लखप्त हो जाती हो।

अधिकांश देहाती ऐसे ही होते हैं, जिन्हे शहरमें रहना बड़ा भारी जंजाल मालूम पड़ता है। साथ ही कुछ देहाती ऐसे भी होते हैं, जो कभी-कभी शहरमें घूम आना पसन्द करते हैं और कुछ शहराती ऐसे भी होते हैं, जो अपने काम-धन्धेसे फुरसत ले कर कभी-कभी देहातमें जाकर रहना पसन्द करते हैं। लेकिन स्थायी-रूपसे रहनेके सम्बन्धमें शहरोंमें ही आकर्षण-शक्ति अधिक है। देहाती तो बहुतसे खिंच कर शहरमें आ जाते हैं, पर देहातमें खिंच कर जानेवाले शहरातियोंकी संख्या बहुत कम होती है। बात यह कि मनुष्यकी साधारण शक्तियोंके विकासके लिये नगर ही अच्छा क्षेत्र होता है और वहीं वह अधिक धन और प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है। छोटे-छोटे गाँवों और देहातोंसे लोग शहरमें जाकर अच्छे कोठीवाल, महाजन, विद्वान्, वकील, बैरिस्टर, जज, डाक्टर आदि बन जाते और बहुत कुछ यश प्राप्त

करते हैं। सीधी-सी बात तो यह है कि पार्थिव विषयोंमें उन्नति करनेके लिये सबसे अच्छा स्थान नगर है और आत्मिक उन्नति करने तथा प्रकृतिकी सात्त्विकता बढ़ानेके लिये सबसे अधिक उपयुक्त स्थान देहात है। इन दोनोंमेंसे एक स्थानसे दूसरे स्थान पर प्रायः अपनी रुचि और प्रवृत्तिके अनुसार ही लोग आते जाते हैं।

नवाँ प्रकरण

विवाहित और अविवाहित—सहायक अर्द्धांग

जीवन-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातोंका उल्लेख करते समय उस सम्बन्धकी भी कुछ बातें बतला देना बहुत आवश्यक है जो पुरुष और स्त्रीमें होता है। प्रेम और विवाहके पाशमें अधिकांश लोग फँस जाते हैं। उनमेंसे कुछ लोगोंको तो उससे सहायता और सुख मिलता है और कुछ लोगोंको केवल दुःख और क्लेश। एक विद्वान्‌का कथन है—"हम लोग इसी लिये प्रेम करते हैं कि हम अमर नहीं हैं। हम अपने प्राण देकर प्रेमका सौदा करते हैं।" लार्ड बेथनने कहा है—"विवाह-सम्बन्धी प्रेमसे मानव-जातिकी सृष्टि होती है, मित्रोंके प्रेमसे वह पूर्णताको प्राप्त होती है; पर केवल पाशविक वृत्तियोंको चरितार्थ करनेके लिये जो प्रेम किया जाता है, उससे उसकी दुर्दशा और अवनति होती है।

प्राचीन आर्य्य, प्रेम और स्त्रियोंका महत्त्व बहुत अच्छी तरह समझते थे; इसीलिये उन्होंने सदा स्त्रियोंको सन्तुष्ट और प्रसन्न रखने तथा कभी किसी प्रकार उनका निरादर न करनेके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी आज्ञाएँ दी थीं और बहुतसे विधान किये थे। भारतकी तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, नैतिक तथा आत्मिक उन्नति भी बहुतसे अंशोंमें केवल इसी लिये थी कि लोग स्त्रियोंकी उपयोगिता, महत्त्व और मर्य्यादा आदि भली भाँति

समझते थे। पर जबसे हमलोग स्त्रियोंका महत्त्व भूल गये, तभीसे हमारी बहुत कुछ अवनति हो भी चली।

समाजको रक्षा, वृद्धि और उन्नतिके लिये विवाह कितना आवश्यक है, यह प्रायः हर एक समझदार बहुत अच्छी तरह समझ सकता है, पर बहुतसे देशोंमें आजकल विवाह-बन्धन कुछ ढीला हो चला है। पाश्चात्य उन्नत देशोंमें बहुत-सी स्त्रियाँ और पुरुष ऐसे हैं, जो आजन्म विवाह नहीं करते, सदा कुँवारे रहते हैं। तो भी अधिकांश लोग विवाह करते हैं; क्योंकि बिना उसके मानव-जातिका कल्याण ही नहीं हो सकता। जिस प्रकार हमारे देशमें कुछ लोग आजन्म ब्रह्मचारी रहकर श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करते हैं, उसी प्रकार युरोप, अमेरिका आदि देशोंमें भी बहुतसे ऐसे लोग आजन्म ब्रह्मचारी ही रहते हैं, जो अपनी इन्द्रियोंको पूर्ण-रूपसे अपने वशमें रख सकते हैं और विवाहकी कोई आवश्यकता नहीं समझते। संसारके बहुत बड़े-बड़े और श्रेष्ठ कार्य्य प्रायः ऐसे ही लोगोंके द्वारा होते भी हैं। बात यह है कि अविवाहित मनुष्य ज्ञान-विज्ञान आदिके कार्य्योंमें अपना बहुत अधिक समय लगा सकते हैं और उन्हें अपने परिवारके भरण पोषण आदिकी कोई चिन्ता नहीं होती। संसारकी बहुत-सी झंझटों आदिसे वे लोग मुक्त और पूर्ण स्वतंत्र रहते हैं, पर साथ ही वे उन अनेक साधनों—स्त्री, पुत्र, पौत्र आदि-से बंचित भी रहते हैं, जिनसे मनुष्यको जीवनमें सुख, उत्साह और बल प्राप्त होता है और आत्मा तथा मस्तिष्कको शान्ति मिलती है। डा० आर्नल्डका तो इस सम्बन्धमें यहाँ तक कथन है कि साधारण स्थितिका मनुष्य जब तक गृहस्थ न हो, तब तक वही कुछ कर ही नहीं सकता। साधारण लोगोंके लिये यह

बात ठीक भी है। बड़े-बड़े ज्ञानी और प्रतिभाशाली तो अविवाहित रह कर ही अच्छे काम कर सकते हैं, पर साधारण लोगोंको कार्य्यमें प्रवृत्त करानेकी शक्ति केवल गृहस्थीमें ही है।

बड़े-बड़े ज्ञानियों और प्रतिभाशालियोंकी ज्ञान-पिपासा ही उनकी शेष सब कामनाओंको नष्ट कर देती है। प्राचीन आर्य्य ऋषि इसी लिये जंगलोंमें अकेले रहा करते थे। महात्मा बुद्धकी ज्ञान-पिपासाने ही उनसे पुत्र-कलत्र और राज्य आदि सब छुड़ा दिया था। शंकराचार्य्य केवल इसी कारण विवाह-बन्धनमें नहीं फँसे थे। दयानन्द केवल इसीलिये विवाहका नाम सुन कर घरसे भाग निकले थे। न्यूटन स्त्री प्रेमका नाम भी नहीं जानता था। हाब्सने इसीलिये विवाहका विचार छोड़ दिया था। एडमस्मिथ इसीलिये सदा कुँवारा ही रहा। चैम्फर्टने तो यहाँ तक कह डाला कि "जो आदमी समझदारीसे काम लेगा वह विवाह क्यों करेगा? मैंने केवल इसी डरसे विवाह नहीं किया कि मेरी बराबरीका एक लड़का भी हो जायगा।" गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

फूले फूले फिरत हैं, आज हमारो ब्याय।
तुलसी गाइ बजाइके, बेड़ी पहिनो जाय॥

गेलीलियो, डेस्कार्टस, लाक स्पिनोजा, काराट, ब्लैक, डाल्टन और कैवेरिडश आदि सभी आजन्म अविवाहित रहे। कैवेरिडश तो स्त्रियोंसे यहाँ तक बचता था कि उसने अपने मकानके पिछवाड़े अपने आने जानेके लिये सिर्फ इस वास्ते एक और सीढ़ी बनवाई थी कि जिसमें उसका, घरकी मजदूरनियों और दायियोंसे सामना न हो जाय! जो मजदूरनी मकानमें उसके सामनेसे भी होकर निकल जाती थी, वह बरखास्त कर दी जाती थी। उसमें झझक

बहुत ज्यादा थी; यहाँ तक कि उस झझकको आप रोग भी कह सकते हैं। वह कभी अपनी तसवीर नहीं बनवाता था और अजनबी आदमीके सामने होनेसे भी झझकता था। विथलके जीवनीकारने लिखा है,—"उसने कभी प्रेम नहीं किया, कभी घृणा नहीं की, कभी आशा नहीं की और कभी भय नहीं किया।" उसमें किसी प्रकार प्रवृत्ति या कामना ही नहीं थीं, वह बिलकुल निस्पृह बल्कि एक तरहसे मुर्दादिल था। यदि वह विवाह कर लेता, तो सम्भव था कि वह कुछ और अच्छी स्थितिमें हो जाता। इसी प्रकार अनेक बड़े-बड़े इतिहासज्ञोंने भी कभी विवाह नहीं किया। ह्यूम, गिबन, मेकाले, थर्लवाल, बल्क और कैलडेन आदि सदा कुँवारे ही रहे। इतिहासज्ञ होनेके लिये इस बातकी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है कि मनुष्यका ध्यान संसारकी ओर किसी बात की तरफ न रहे। ह्यूमने प्रेम पर जो निबन्ध लिखा है, वह उतनी ही उदासीनतासे लिखा है जितनी उदासीनतासे ज्यामितीके किसी प्रश्न पर कुछ लिखा जाता है। गिबनने बीस वर्षकी अवस्थामें एक पादरीकी लड़कीसे प्रेम किया था। पर उसके पिताने जब विरोध किया, तब उसने विवाहका विचार छोड़ दिया।

जरमी बनथमने यद्यपि विवाह नहीं किया था, तथापि जिस स्त्री पर आरम्भमें उसका अनुराग था, उसका वह अनुराग सदा उसके हृदयमें बना रहा। वह जब बुढ़ापेमें भी अपनी पुरानी प्रेम-कथाका स्मरण करता था, तब उसकी आंखोंसे आँसुओंकी झड़ियाँ लग जाती थीं। साठ वर्षकी अवस्थामें जब वह अपनी प्रेमिकासे मिला, तब उसने फिर उससे प्रेम-भिक्षा की। पर उसके हृदयमें इसके प्रति अनुराग न था। पर विशेषता यह थी

कि इसकी तरह उसने भी आजन्म विवाह नहीं किया था। बुढ़ापेमें बेनथमका प्रेम और भी बढ़ गया था। अस्सी वर्षकी अवस्थामें उसने अपनी प्रेमिकाको जो प्रेम-पत्र लिखा था, उसे पढ़कर जी भर आता है। उस पत्रके अन्तमें उसने लिखा था—"मैं भी कितना पुराना बेवकूफ हूँ कि . . . ." जिससे मालूम होता है कि वह स्त्री उसे सचमुच "पुराना बेवकूफ" ही समझती थी; क्योंकि उसने उसे पत्रका उत्तर तक न दिया था। लेकिन इसने भी एकतरफा प्रेम खूब ही निबाहा। प्रेमिकाका ध्यान उसे सदा--दिन और रात—बना रहता था। उसकी निशानीके तौर पर इसने उसका बजाया हुआ एक बहुत पुराना और टूटा-फूटा बाजा और उसे देनेके लिये एक अँगूठी मरते दम तक अपने पास रखी। यही जरमी बेनथम राजनैतिक दर्शनका बहुत अच्छा पण्डित था।

पिट और फाक्सने भी कभी विवाह नहीं किया। पिटको लोग बिलकुल नीरस और संग-दिल समझते हैं; पर उसका हृदय कोमल और प्रेम-पूर्ण था। उसका गार्हस्थ्य जीवन बिलकुल निष्कलंक था और मन भी शुद्ध तथा श्रेष्ठ था। आयर्लैण्डके साथ उसने जो कुछ बुरा-भला किया, वह उसका राजनीतिक हथकण्डा था। पिछले पृष्ठोंमें बतलाया जा चुका है कि लड़कोंमें मिलकर वह किस तरह लड़का हो जाता था। एक बहुत ही सुन्दर स्त्री पर एक बार उसकी तबीयत बहुत आई थी। पर यही समझ कर उसने उसका विचार छोड़ दिया कि गृहस्थीकी झंझटें सार्वजनिक सेवामें बाधक होंगी। अपने कर्त्तव्य और प्रतिष्ठाका इस प्रकार ध्यान रखनेके कारण वह प्रशंसनीय है।

राइफल एन्जेलो आदि अच्छे-अच्छे चित्रकारोंने भी कभी विवाह नहीं किया। एन्जेलो तो कहा करता था कि चित्र-कला एक ऐसी घरवाली है जो और किसी सौतको देख ही नहीं सकती। वह यह भी कहता था कि मेरे चित्र ही मेरे बाल-बच्चे होंगे। फ्लैक्समैन नामक एक दूसरे चित्रकारका जब विवाह हो गया, तब उसने उससे कहा कि अब तुम चित्रकारीके कामसे गये। पर फ्लैक्समैनकी स्त्री बड़ी ही बुद्धिमती और सुयोग्य थी और उससे फ्लैक्समैनको बहुत अधिक सहायता मिली थी। वह विवाह करके घाटे में नहीं, बल्कि लाभमें ही रहा। टरनर एक ही बार प्रेम करके ऐसा निराश हुआ कि फिर कभी उसने किसीसे प्रेम नहीं किया। पर एटीने बहुत-सी स्त्रियोंसे प्रेम तो किया, पर विवाह किसीसे नहीं किया।

बहुतसे गवैये भी सदा कुँवारे ही रहे। हैण्डेल सदा गाने बजाने में ही मस्त रहता था, उसे स्त्रियोंकी परवा ही नहीं होती थी। बिथोलन बहुत-सी स्त्रियों पर आसक्त हुआ, पर उसे कभी किसी स्त्री ने पूछा भी नहीं। इसी प्रकार और भी बहुतसे प्रसिद्ध लोग हो गये हैं, जिन्होंने जन्म भर विवाह नहीं किया। पाश्चात्य देशोंकी आजन्म अविवाहिता रहनेवाली स्त्रियोंकी संख्या तो और भी अधिक है। पुरुष शक्तिशाली होता है। उसका काम-काज, उठना-बैठना, सोचना विचारना सब अकेले ही होता है। वह भविष्यकी आशासे सन्तुष्ट रहता है। पर स्त्रीको सदा घरमें ही रहना पड़ता है; चाहे वहाँ वह सुखी रहे और चाहे दुखी। प्रेम, सेवा और दुःख-सहन आदि ही उसके भाग्यमें होता है। तथापि उसका आचार बहुत सी सुन्दरताओं और अच्छी बातोंसे युक्त होता है। पाश्चात्य

देशकी स्त्रियाँ जब एक बार किसी पुरुषसे प्रेम करके निराश हो जाती हैं, तब वे बहुधा किसी दूसरे पुरुषके फेरमें नहीं पड़तीं; वे बहुधा ज्ञान और विद्याके सम्पादनमें ही लगी रहती हैं और उन की इच्छा स्वतंत्र और अविवाहित रहनेकी ही होती है। ऐसी स्त्रियोंको अपने निर्वाहके लिये तरह-तरहके काम भी सीखने और करने पड़ते हैं। ऐसी स्त्रियोंमें बहुत सी विदुषियाँ होती हैं, जो लोकोपकारके बहुत बड़े-बड़े कार्य्य कर डालती हैं। फ्लोरेन्स नाइटिंगेल, कैथराइन स्टैनले और भगिनी दोरा आदि ऐसी देवियाँ हो गई हैं, जिनकी कीर्त्ति सारे संसारमें छाई हुई है।

अविवाहिता स्त्रियाँ रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा और दीन-दुखियों की सहायता करनेके लिये बहुत ही उपयुक्त होती हैं। उनमें असहायोंके प्रति बहुत अधिक सहानुभूति होती है। सबसे बड़ी विशेषता उनमें यह होती है कि वे पुरुषोंकी तरह अपने कामका डङ्का नहीं पीटतीं; बल्कि बहुत ही शान्ति-पूर्वक और चुप-चाप अपना काम करती हैं। उन्हें न नामकी चिन्ता होती है और न प्रशंसाकी परवा। जो स्त्रियाँ किसी प्रकारके लोकोपकारी कामोंमें नहीं लगतीं, वे गृहस्थीमें रह कर उसका सारा प्रबन्ध बहुत उत्तम-तासे करती हैं और आपत्तिके समय बड़े-बड़े काम कर जाती हैं। दरिद्र परिवारोंकी ऐसी स्त्रियाँ बहुत ही उत्तमता-पूर्वक गृहस्थीको सँभाले रहती हैं। धनवानोंकी अपेक्षा उनका पारस्परिक व्यव-हार कहीं अधिक उदारता और सुजनता-पूर्ण होता है। ऐसी स्त्रियोंके पास यदि आधी रोटी भी हो और उनके सामने कोई ऐसा आदमी आ जाय, जिसके पास एक दाना भी न हो, तो वे अपनी आधी रोटीमेंसे चौथाई रोटी उसे अवश्य दे देंगी। और मजा यह कि भविष्यमें वे कभी उससे किसी प्रकारके प्रत्युपकार

की आशा भी नहीं रखेंगी। वे भूखों मरना पसन्द करेंगी, पर अपनी मर्यादा कदापि भंग न होने देंगी। यदि अभाग्य-वश कठिनसे कठिन परिश्रम करनेपर भी उन्हें खानेको न मिले, तो वे कभी किसीके आगे हाथ न पसारेंगी। आजन्म अविवाहिता रहनेवाली स्त्रियाँ इस देशमें तो कदाचित् ही मिलेंगी, पर ऐसी बाल-विधवाएँ अवश्य बहुत-सी मिलेंगी, जो अपने भाई या बहिनके सारे परिवारका जन्म भर बहुत ही उत्तमता-पूर्वक सारा प्रबन्ध करती हैं और विपत्तिके समय यथासाध्य उनकी रक्षा आदिमें भी कोई बात उठा नहीं रखतीं। ऐसी स्त्रियाँ जब तक परिवारमें रहती हैं, तब तक उस परिवारके दिन बड़े ही सुखसे बीतते हैं और उनके मरते ही परिवारकी दुर्दशा फिर आरम्भ हो जाती है।

पाश्चात्य देशों में और उनकी देखा-देखी हमारे देशमें भी कुछ स्त्रियाँ ऐसी होने लगी हैं, जो अपनी ज्ञान-शक्तिकी वृद्धि करके संसारमें पुरुषोंकी तरह उन्नति करना चाहती हैं। उनकी यह आकांक्षा अवश्य ही प्रशंसनीय है; परन्तु उसकी पूर्तिका प्रयत्न ऐसा होना चाहिए, जिसमें उनके स्वास्थ्य तथा स्त्रैण गुणोंका नाश न हो। यदि हृष्ट-पुष्ट और दृढ़ मनोबलवाली स्त्रियाँ ज्ञान-सम्पादनमें पुरुषोंके साथ प्रतिद्वन्द्विता करें, तो कोई हानि नहीं है; पर साधारण स्त्रियोंके लिये मानसिक श्रम और विशेषतः अधिक मानसिक श्रम बहुत ही हानिकारक होता है। और इसके परिणाम-स्वरूप मानव-जातिके शारीरिक संगठनका बहुत अधःपात होता है।

एक उच्च कुलकी युरोपियन महिलाने सारे युरोपका प्रवास करके अपनी यात्राके सम्बन्धमें दो पुस्तकें लिखी थीं। उन

पुस्तकोंको पढ़ कर लण्डनकी एक साधारण युवतीके मन पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि जब वह लेखिका लण्डन आई, तब वह युवती जाकर उसके पैरों पर गिर पड़ी और उससे कहने लगी कि तुम मुझे अपनी दासी बनालो। इस पर उस महिलाने उत्तर दिया—"तुम समझती हो कि सारे युरोपमें प्रवास करना बड़े सौभाग्यकी बात है; लेकिन गृहस्थीका सुख इससे भी कहीं कहीं बढ़ कर है। ख्यातिकी अपेक्षा गृहस्थीमें कहीं अधिक सुख मिलता है। तुम्हारे पिता हैं; मेरे पिता नहीं हैं। तुम्हारा घर मौजूद है; पर मैं इस लिये यात्रामें प्रवृत्त हुई थी कि लोगोंने मुझे घरसे निकाल दिया था। तुम जिस दशामें हो, उसी दशामें सन्तुष्ट रहो; यदि तुम मेरी अवस्था जान लोगी तो फिर उसे प्राप्त करनेकी इच्छा न करोगी।" इसपर उस युवतीकी आँखें खुल गईं और वह घर जाकर अच्छी तरह गृहस्थीका कार-बार देखने लगी। एक तो स्त्रियोंके लिये गृहस्थीसे बढ़कर सुख और कहीं नहीं है और दूसरे यह कि यदि कोई स्त्री गृहस्थीके सुप्रबन्धके अतिरिक्त मानवजातिके उपकारके लिये कोई और बड़ा काम करना चाहती हो, तो वह गृहस्थीमें रह कर ही बड़े मजेमें काम कर सकती है।

यह तो हुई अविवाहित पुरुषों और स्त्रियोंकी बात। अब विवाहित पुरुषों और स्त्रियोंको लीजिए। संसार में बहुत अधिक संख्या विवाहित पुरुषों और स्त्रियोंकी ही है; अविवाहित पुरुष और स्त्रियाँ बहुत कम होती हैं। हिन्दुओंमें तो विवाह एक धार्मिक बन्धन ही है और बिना पाणि-ग्रहण तथा सन्तान-उत्पन्न किये कोई मनुष्य देव, ऋषि और पितृ-ऋणसे मुक्त

ही नहीं हो सकता। पर जिन जातियोंमें विवाह धार्मिक नहीं, बल्कि केवल सामाजिक बन्धन-सा माना जाता है, उन जातियोंमें कोई तो प्रेमके लिये, कोई सौन्दर्यके लिये, कोई धनके लिये और कोई सुखके लिये विवाह करता है। कुछ लोगोंमें विवाह-की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है और कुछ लोगोंका विवाहके लिये यों ही जी चाहता है। पर खूब ही सोच समझ कर विवाह करनेवाले लोग बहुत ही कम होते हैं। मनुष्य या स्त्रीके जीवन में विवाह ही सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण घटना अथवा संस्कार है। विवाह करके हम स्वर्ग-सुख भी प्राप्त कर सकते हैं और नरक-यातना भी। पर दुःख है कि बहुतसे लोग ऐसे महत्व-पूर्ण कामके लिये तनिक भी सोच-विचार नहीं करते। भारतवर्षमें तो यह सोच-विचारका काम माता-पिताके हाथमें रहता है और दूसरे देशोंमें स्वयं बर और बधूके हाथमें। बहुतसे अंशोंमें भारत-वर्षकी प्रथा अच्छी है; क्योंकि साधारणतः बीस पचीस वर्ष तकके युवकोंको संसारके ऊँच-नीच आदिका विशेष अनुभव नहीं होता और न बारह-पन्द्रह वर्षकी बालिकाओंको ही उसका कुछ विशेष ज्ञान होता है। ऐसी दशामें यदि माता-पिता ही सब बातोंका भली भाँति विचार करके यह बन्धन स्थिर कर दें, तो इसमें कोई हानि नहीं हैं, उलटे इससे कुछ लाभकी सम्भावना है पर दुःख तो इस बातका है कि माता-पिता इन बातों पर तनिक भी विचार नहीं करते। कहीं केवल धनके लालचसे साठ वर्षके बूढ़ेके साथ दस वर्षकी अबोध बालिकाका विवाह करके उसका जीवन जान-बूझ कर नष्ट किया जाता है और कहीं केवल बहूको देखनेकी साध ही साल दो सालके लड़के-लड़कियों-का ब्याह करा देती है। इन सब दशाओंमें पति-पत्नीको जितना

कष्ट होता है और उनकी जो जो दुर्दशा होती है, वह किसीसे छिपी नहीं है।

सभ्य देशोंमें बहुधा युवक और युवतियाँ परस्पर प्रेम उत्पन्न करते हैं और तरह-तरहसे उस प्रेमकी परीक्षा करके तब विवाह करते हैं। बहुत दिनोंसे उन देशोंमें प्रायः यही विश्वास बराबर दृढ़ होता आया है कि प्रेम एक ऐसी चीज है, जिस पर मनुष्यका कोई अधिकार ही नहीं है; वह मनमें आप ही आप उत्पन्न होता है। इसलिये वे लोग उसपर अधिकार रखनेकी अपेक्षा उसके अनुसार काम करना ही अधिक उत्तम समझते हैं। विवाहको भी वे लोग बिलकुल "दैवी-गति" ही समझते हैं और इसलिये उसके सम्बन्धमें विशेष सोच-विचारकी आवश्यकता नहीं समझते। इसलिये उनका अधिकांश जीवन बहुत ही कष्ट-पूर्ण होता है। प्रेमके लिये कुछ दिनों तक नये-नये पात्र ढूँढ़े जाते हैं और तरह-तरहसे उनकी परीक्षाएँ होती हैं। इन सब परीक्षाओं और अन्वेषणोंके उपरान्त भी पति-पत्नीमें आगे चल कर प्रायः नहीं बनती; खटकी ही रहती है। अन्तमें विवाह—सम्बन्ध—तोड़ दिया जाता है और दूसरेसे विवाह होता है और ये सब बातें इसीलिये होती हैं कि युवकों और युवतियोंको प्रेम-पात्रोंकी परीक्षा करने, बल्कि यों कहिए कि प्रेमका व्यापार करनेका चसका पहलेसे ही पड़ा होता है। इस कुप्रथाके कारण सभ्य देशोंका गार्हस्थ्य जीवन जितना दुःख-पूर्ण होता है, उतना और कोई जीवन नहीं होता। इसीलिये मानटेन और कालेरिजका मत है कि "यदि सबसे अधिक सुख-पूर्ण विवाह-सम्बन्ध किसीका हो सकता है, तो वह केवल बहरे आदमी और अन्धी औरतका हो सकता है।" मर्द जो कुकर्म्म करेगा, वह औरत

देख न सकेगी और औरत जो गालियाँ देगी, वह मर्द सुन न सकेगा!

बहुतसे लोग सौन्दर्य्य पर मुग्ध होकर विवाह करते हैं। शरीर और चेहरे आदिकी सुन्दर बनावट तो अवश्य पुरुषको आकृष्ट कर लेती है, पर यदि स्त्री सुघर और समझदार हो तो उसकी ओर पुरुष और भी अधिक आकृष्ट होता है। संसारमें सौन्दर्य्य का बहुत महत्त्व है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ होती भी अधिक सुन्दर हैं और स्त्रियोंमें सौन्दर्य्यकी आकांक्षा भी और सब आकांक्षाओंसे बढ़-चढ़ कर होती है। पर एकमात्र सौन्दर्य्यसे ही विवाह सुखद नहीं हो सकता। केवल रूप पर मोहित होकर ही पहले तो बहुतसे लोग विवाह कर लेते हैं; पर साल दो साल बाद ही स्त्रीके रूपमें किसी प्रकारकी आकर्षण-शक्ति नहीं रह जाती। उस समय लोग स्वभाव और आचार आदिका सौन्दर्य्य ढूँढ़ते हैं। युवावस्थामें केवल अपने सौन्दर्य्यके कारण पत्नी अपने पतिको उतनी अच्छी नहीं लगती, जितनी वह प्रौढ़ या वृद्धावस्थामें अपने सद्‌गुणों और सुस्वभावके कारण भली जान पड़ती है।

पुरुषोंमें सौन्दर्य्य, अपेक्षाकृत कुछ कम होता है, पर तो भी अधिकांश महापुरुष और योद्धा आदि सुन्दर ही होते आये हैं। मनुष्यकी आकृति आदिका औरों पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। अधिकांश महापुरुषोंका स्वरूप ही, सबसे पहले औरोंके सामने उन्हें श्रद्धेय बना देता है। किसी उच्च पद तक पहुँचनेमें भी बहुधा रूप ही लोगोंका सहायक होता है; उस पद पर बना रहना उसके गुणोंपर अवलम्बित होता है। यदि उसमें

योग्यता होती है, तो वह बहुत कुछ उन्नति कर लेता है और नहीं तो निकाल बाहर किया जाता है।

कोरा सौन्दर्य्य किसी कामका नहीं होता। हाँ, यदि उसके साथ सुजनता और सुस्वभाव भी हो, तो वह अवश्य बड़े कामका है। कोरा सौन्दर्य्य केवल आँखोंको ही अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है। मन वहीं खिंच कर जायगा, जहाँ शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक सौन्दर्य्य होगा और इसीलिये प्रेम-बन्धनको दृढ़ करनेके लिये मानसिक सौन्दर्य्यकी आवश्यकता होती है। जो स्त्रियाँ केवल अपने रूप पर ही भूली रहती हों, उन्हें अपना भ्रम छोड़ देना चाहिए और सबसे बढ़ कर मानसिक सौन्दर्य्यके सम्पादनके लिये प्रयत्न करना चाहिए। केवल रूपके कारण पति-पत्नीमें जिस व्यवहारकी धूम होती है, वह व्यवहार तो साल छः महीनेमें ही समाप्त हो जाता है। शेष जीवनमें तो पुरुषको जीविकाके लिये कठिन परिश्रम करना पड़ता है और स्त्रीको ऐसा प्रयत्न करना पड़ता है, जिसमें गृह-स्वामीको सच्चा गृह-सुख मिले। जिस प्रकार पुरुषको अपने निर्वाहके लिये किसी तरहका रोजगार या काम-धंधा सीखनेकी आवश्यकता होती है, उसी तरह स्त्रीको गृह-प्रबन्ध सीखनेकी आवश्यकता होती है। जो घर साफ-सुथरा होगा, जिसमें सब चीजें करीनेसे रखी होंगी, जिसमें व्यर्थ कोई चीज नष्ट न होगी और जिसमें कभी किसी प्रकारका मनो-मालिन्य या कुभाव उत्पन्न न होगा उसी घरमें आकर पुरुष का चित्त प्रसन्न हो सकता है और ऐसे ही घरके दम्पति सदा सुखी भी रह सकते हैं। जिस घरमें इन बातोंका अभाव होता है, वह प्रत्यक्ष नरक बन जाता है।

गृहस्थी ही स्त्रियोंका संसार है और पति ही सर्वस्व। लेकिन

स्त्रीका केवल अपने पतिके व्यक्तित्वके साथ ही सम्बन्ध रहता है, उसकी योग्यता, कीर्त्ति या गुणों आदिके साथ उसका विशेष सरोकार नहीं होता। यदि पति बड़ा भारी महात्मा, राजनीतिज्ञ चित्रकार, कवि या लेखक हो, तो स्त्रीको इन सब बातोंसे क्या मतलब ? पतिके नातेसे उसे जो सुख मिलता है, वही उसके लिये सब कुछ है। इसीलिये स्त्रियोंको कभी कभी बहुत दुखी होना पड़ता है। पति तो सदा अपने काममें लगा रहता है—दिन-रात व्यापार अथवा गूढ़ विचारोंमें मग्न रहता है। उसे ऐसे कार्य्य करनेकी फुरसत ही नहीं मिलती, जिनसे स्त्रियाँ प्रसन्न होती हैं। ऐसी दशामें यदि स्त्री अधिक समझदार न हो, तो गृहस्थीमें दुःख और कभी कभी कलहका भी आरम्भ हो जाता है, क्योंकि कुछ स्त्रियाँ स्वभावतः ऐसी भी होती हैं, जो यही चाहती हैं कि पति सदा हमारे अनुराग और मनोविनोदमें ही लगा रहे और किसी दूसरी बातकी ओर ध्यान न दे। ऐसी दशामें पतिको उचित है कि वह पत्नीको भी अपने साथ साथ किसी ऐसे काममें लगा ले, जिसमें उसका जी बहला रहे और पतिका काम-काज करना उसे न खटके।

कवि स्वभावतः प्रेमी और रसिक हुआ करते हैं। अधिकांश कवि ऐसे ही हुए हैं, जिनका विवाह बहुत ही बाल्यावस्थामें हुआ है। भारतवर्षमें तो भला माता-पिता ही बचपनमें अपने लड़कोंका विवाह कर देते हैं और उन लड़कोंमें कवि तथा मूर्ख सभी आ जाते हैं। पर पाश्चात्य देशोंमें जहाँ पुरुष और स्त्रियाँ दोनों अपना विवाह करनेमें पूर्ण-रूपसे स्वतंत्र होते हैं, कवि युवक बहुत ही थोड़ी अवस्थामें अपना विवाह कर लेते हैं। चर्चिल का विवाह सत्रह वर्षकी अवस्थामें, शेक्सपियरका अठारह वर्षकी

अवस्थामें और शेलीका उन्नीस वर्षकी अवस्थामें हुआ था। कीट्स जब स्कूलमें पढ़ता था, तभी वह सौन्दर्य्योपासक था और सुन्दर स्त्रियोंको देखनेका उसे बहुत शौक था। यहाँ तक कि वह सुन्दरियोंको स्वर्गीय समझता था।

कवियोंके विचार जिस संसारमें चक्कर लगाया करते हैं, वह संसार हमारे और आपके इस संसारसे बिलकुल भिन्न होता है। उनका संसार बहुत ही सुन्दर और आदर्श होता है। वे जब चाहते हैं, तब उस संसारका दृश्य अपनी आँखोंके सामने उपस्थित कर लेते हैं और जब चाहते हैं, तब उसे हटा देते हैं। इस संसारकी तरह उनका संसार न तो कठिन होता है और न सदा उनके सामने उपस्थित रहता है। न उसमें इतनी चिन्ताएँ होती हैं और न विपत्तियाँ। इसीलिये स्त्रियोंके सम्बन्धके उनके विचार भी बहुत ही उच्च कोटिके होते हैं। उनके हृदयमें आदर्श स्त्रीकी प्रतिमा स्थापित रहती है और उसके प्रति उनमें शुद्ध और आदर्श प्रेम होता है। डाएटेका बिएट्रिसके साथ; पेट्रार्कका लारा के साथ और टस्सोका लियोनोराके साथ जो प्रेम था, वह बहुतसे अंशोंमें आदर्श था। बिएट्रिसके प्रेममें डाएटे अपनी स्त्री और बच्चोंको भूल गया था। पेट्रार्क अपनी लड़कीको घरमें नहीं रखता था और टस्सो बहुत दिनों तक पागलखानेमें पड़ा रहा था।

डाएटे यदि जन्मसे प्रेमी नहीं था, तो भी कमसे कम उसके जीवनका आरम्भ प्रेमसे ही हुआ था। नौ वर्षकी अवस्थामें वह आठ वर्षकी बालिका बिएट्रिस पर सदाके लिये आसक्त हो गया। उसने कभी अपना प्रेम प्रकट नहीं किया और एक दूसरी स्त्रीके साथ विवाह भी कर लिया। चौबीस वर्षकी अवस्थामें बिएट्रिस मर गई, जिसके दुःखमें वह इतना कृश और क्षीण हो गया था

कि उसके मित्र भी उसे बड़ी ही कठिनतासे पहचान सकते थे। उस समय उसका जीवन और भविष्य मानों घोर अन्धकारमय हो गया। केवल बिएट्रिसका ध्यानही उसके जीवनका आधार रह गया। मृत्युने बिएट्रिसको संसारसे उठा लिया, डाण्टेने स्वर्ग तक उसकी आत्माका पीछा किया और उसकी आँखोंसे उसने सारा विश्व देखा और उसीके प्रेमसे उत्तेजित होकर उसने अपने सबसे बड़े काव्य DiVirna Comεdia की रचना की। इस काव्यमें उसने बिएट्रिसको मानों देवी बना कर उसकी पूजा की है। उसका प्रेम, आदर्श और स्थायी था और इसका कारण बहुतसे अंशोंमें उसका विरह ही था। यदि बिएट्रिससे उसका विवाह हो जाता, तो वह कभी इतनी सुन्दर कविता न कर सकता। अपनी विवाहिता स्त्रीके साथ उसका विशेष प्रेम नहीं था; क्योंकि उसके लिये उसने एक पंक्ति भी नहीं लिखी! इसके अतिरिक्त जब डाण्टेको देश-निकाला मिला, तब उसकी स्त्री उसके साथ भी नहीं गई थी, बल्कि फ्लोरेन्समें ही रह गई थी।

पेट्रार्क और लाराकी प्रेम-कथा भी बहुत दिनों तक लोगोंको स्मरण रहेगी। लाराके प्रेममें पेट्रार्क इधर उधर मारा मारा फिरता था और प्रायः एकान्तमें भी जाकर उसका ध्यान किया करता था। कभी-कभी अपनी प्रेमिकाकी दूरसे एक झलक देखनेके लिये वह उसके मकानके आस-पास भी आ निकलता था। लाराका पति पेट्रार्कके प्रेम और भावसे दुखी रहा करता था। जब चालीस वर्षकी अवस्थामें लाराका प्लेगसे देहान्त हो गया, तब पेट्रार्कने लिखा था कि वह एक ऐसा दीपक था, जो चिकनेके अभावके कारण बुझ गया। उसकी मृत्युका समाचार सुनते ही सारा संसार उसके लिये बिलकुल अन्धेरा हो गया

था। इसके बाद पेट्रार्क बीस वर्ष तक जीता रहा। उसका सारा जीवन उसीके सम्बन्धमें कविता करते बीता।

पेट्रार्ककी कविताका इटलीमें बड़ा आदर था। उसी कविताको पढ़कर टस्सो भी उसके ढंग पर चलने और कविता करने लगा। पहले वह एक स्त्री पर आसक्त हुआ, पर जब उस स्त्रीने दूसरेसे अपना विवाह कर लिया, तब उसने एक राजकुमारीकी मूर्ति अपने हृदय-मन्दिरमें स्थापित की। यह राजकुमारी एक ड्यूककी बहिन थी। उसीके प्रेममें वह कविता करने लगा। उस कवितासे यह झलकता था कि वह राजकुमारी भी उस पर कुछ कृपा रखती है; यद्यपि वास्तवमें यह बात नहीं थी। उसको कुछ कविताएँ किसीने चुरा कर ड्यूकको दिखलाईं, जिससे चिढ़ कर ड्यूकने उसे एक मठमें बन्द करा दिया। किसी तरह वह वहाँसे निकल भागा और साल भर तक इधर उधर मारा-मारा फिरा। सालभर बाद उसे फिर वहीं आना पड़ा, जहाँ उसका हृदय रमता था। वहां पहुँच कर उसने ड्यूक और राजकुमारीसे मिलना चाहा, पर उन लोगोंने उसके साथ मिलनेसे इन्कार कर दिया। इस पर वह पागल हो गया और उनको तथा उनके घरवालोंको बुरा-भला कहने लगा। वह फिर पकड़ कर एक अस्पतालमें भेज दिया गया, जहाँ पागलोंकी तरह सात वर्ष तक उसकी चिकित्सा होती रही। पर कुमारीका ध्यान उसके हृदयसे कभी न निकला और वह सदा उसके सम्बन्धमें कविता करता रहा।

कवि मेटासटासियो जिस गानेवाली पर आशिक था, उसके और उसके पतिके पीछे पीछे वह दिन रात घूमा करता था। उसकी प्रेमिकाने मरते समय लिख दिया था कि मेरी मृत्युके उपरान्त मेरी सारी सम्पत्ति मेटासटासियोको मिले। पर उसने

वह सम्पत्ति नहीं ली और उसके पतिको ही दे दी। एक और कविने अपनी प्रेमिकाको अपने ऊपर अनुरक्त कर लेने पर भी केवल इसीलिये दूसरी स्त्रीसे विवाह कर लिया था कि वह विरह-दशाको सर्वोत्तम और उपयुक्त समझता था और उसी विरह-दशामें उसने बहुत अच्छी कविता भी की थी। वैलैण्डकी प्रेमिका भी उसे चाहती थी; पर वैलैण्ड दरिद्रताके कारण उससे विवाह न कर सका था। जब उसकी प्रेमिकाने दूसरेसे विवाह कर लिया, तब भी वह बराबर उसकी मुहब्बतका दम भरता रहा और बराबर कविता करता रहा। इवैल्डकी प्रतिभा तो मानों उसी समय जाग्रत् हुई थी, जब उसकी प्रेमिकाने उसे निराश करके दूसरेसे विवाह कर लिया था। गाथेका अनुराग बहुत-सी स्त्रियों पर था, पर केवल अपनी स्वतंत्रताकी रक्षाके विचारसे ही उसने किसीके साथ विवाह नहीं किया। 'इसी प्रकार और भी अनेक ऐसे कवि हो गये हैं, जिन्होंने अपनी प्रेमिकाके विरहमें अच्छी अच्छी कविताएँ की हैं। यदि उनकी प्रेमिका उन्हें मिल जाती, तो वे कभी वैसी अच्छी कविता करनेमें समर्थ न होते।

युरोपके अन्यान्य देशोंमें तो कवियों और साहित्य-सेवियोंका प्रेम बहुतसे अंशोंमें उच्च और आदर्श था; पर विगत शताब्दीमें फ्रान्समें प्रेमकी बड़ी ही दुर्दशा थी। उन दिनों वहाँ बड़े छोटे सभी दुराचारी हो गये थे। विवाहसे बहुत पहले स्त्री और पुरुषमें अनुचित सम्बन्ध हो जाता था, जिसे छिपानेके लिये उन्हें विवाह करना पड़ता था। उनका अधिकांश साहित्य इसी प्रकारके गन्दे प्रेमसे भरा पड़ा है।

वहाँ दुराचारिणी स्त्रियाँ ही अच्छी समझी जाती थीं और उन्हींका सब जगह आदर होता था। स्त्रियाँ केवल पुरुषों

के मनोविनोदकी सांगग्री समझी जाती थीं। इसमें सारा दोष वहाँके तत्कालीन साहित्य और साहित्य-सेवियोंका था। क्रान्तियोंसे तो समाजकी रक्षा की जा सकती है, पर स्त्रियोंकी दुराचारितासे समाजकी रक्षा नहीं हो सकती। इससे समाजका प्रत्येक अंग दूषित हो जाता है। इस दोषसे समाजकी रक्षा साहित्य-सेवी ही कर सकते हैं। सभ्य देशोंमें स्त्रियोंकी उपमा बैंककी हुण्डियोंसे दी जाती है और कहा जाता है कि साहित्य-सेवी महाजन हैं; उन्हींकी इच्छानुसार सर्व-साधारणकी दृष्टिमें स्त्रियोंका आदर-रूपी भाव घटता और बढ़ता रहता है। यदि यह बात ठीक मान ली जाय, तो कहना पड़ेगा कि विगत शताब्दीमें फ्रान्सका नैतिक दृष्टिसे बहुत अधिक अधःपतन हो गया था। कारण यही है कि उस समयके वहाँके अनेक बड़े-बड़े कवि और लेखक स्वयं दुराचारी थे। डिडेरटने, जिसने योग्यता और सद्गुण पर एक बहुत अच्छा निबन्ध लिखा है, पहले अपनी एक प्रेमिकासे विवाह किया और तब एक दूसरी रखी हुई प्रेमिकाके व्ययके निर्वाहके लिये एक बहुत ही अश्लील उपन्यास लिखा। रोशियोका बहुत-सी सुन्दरियोंके साथ अनुचित सम्बन्ध था। प्रसिद्ध लेखक वाल्टेयरने कभी विवाह ही नहीं किया; क्योंकि बिना विवाह किये और यों ही उसका काम निकलता रहता था। वह अपनी अन्तिम प्रेमिकाके साथ एक ही मकान में रहा करता था और लोगोंको दिखलानेके लिये उसे अँगरेजी और इटालियन भाषा सिखलाया करता था। इस प्रकार प्रेमी और प्रेमिका दोनों एक साथ छः वर्ष तक रहे। अन्तमें प्रेमिका अचानक मर गई और प्रेमी पर मानों दुःखका पहाड़ टूट पड़ा। भला जहाँ इतने बड़े बड़े विद्वानों

और लेखकोंकी यह हालत हो वहाँ समाजकी दुर्दशाका क्या पूछना है !

अँगरेज कवियोंमें भी बहुतसे लोग बड़े-बड़े आशिक-मिजाज हो गये हैं। स्विफ्टका तीन स्त्रियोंके साथ बहुत ही गुप्त-रूपसे अनुचित सम्बन्ध था। पोप पहले बार एक स्त्री पर आसक्त हुआ था; पर जब उस स्त्रीने उसका कुछ भी ध्यान न किया, तब वह युरोपकी सबसे बढ़ कर सुन्दर स्त्री लेडी माण्टेग पर आसक्त हुआ; जब पहले पहल लेडी पर उसने अपना प्रेम प्रकट किया, तब वह खिल-खिला कर हँस पड़ी। तबसे वह उससे बहुत ही घृणा करने लगा। काउपर बाल्यावस्थामें अपनी चचेरी बहन पर आसक्त हुआ था और उससे निराश होकर ही वह कविता करने लगा था। ड्राइडनने बहुत ही ठीक कहा—"प्रेम यदि मनुष्यको कवि नहीं तो कमसे कम तुकबन्द अवश्य बना देता है।" इसके उपरान्त वह एक और स्त्री पर आसक्त हुआ था और वह उसके पुत्र और पतिके साथ रहा करता था। पहले तो उसकी प्रेमिकाका पति मरा और तब उसकी प्रेमिका लकवे की बीमारीमें मरी। प्रेमिकाके मरनेसे वह अत्यन्त दुखी हुआ था। गोल्डस्मिथ भी एक बार एक स्त्रीके प्रेममें फँस गया था। कीट्स तो बहुत बड़ा आशिक-मिजाज था। उसे हर जगह इश्क ही सूझता था। फ्रान्सीसी कवि बेरैंजरने युवावस्थामें तो बहुत-सी स्त्रियोंके साथ प्रेम किया ही था, पर वृद्धावस्थामें भी वह एक अँगरेज युवती पर आसक्त हो गया था। बुढ़ापेमें वह उसके प्रेममें बिलकुल पागल हो गया था। जब उसने अपनी प्रेम-कथा और उससे होनेवाली व्यथा अपने एक मित्रको सुनाई, तब वह उसे लेकर एक देहातमें चला गया। वहाँ वे दोनो कई सप्ताह

तक रहे। बहुत कुछ जी बहलानेके बाद तब कहीं जाकर बुड्ढेके कलेजेका घाव पूजा। इसीलिये एक समझदारने कहा है कि प्रेम भी चेचकके रोगसे कम नहीं है; यदि यह कहीं बुढ़ापेमें हो जाय, तो फिर आफत ही ढाता है।

हमारे यहाँ हिन्दी-साहित्यके कवियोंमें भी बहुतसे कवि रसिक और स्त्री-प्रेमी हो गये हैं। पर सच्चे प्रेमियोंमें बिजावरके ठाकुर कवि (सवैयावाले) का नाम विशेष उल्लेख योग्य है। बिजावरमें एक सुनार था, जिसकी एक विवाहिता कन्या महल्ले के एक कुएँ पर पानी भरनेके लिये नित्य सन्ध्याके समय जाया करती थी। एक दिन ठाकुर उसे देखकर उस पर मोहित हो गये और तबसे वे नित्यप्रति सन्ध्या समय उसे देखनेके लिये वहाँ जाया करते थे। पर विशेषता यह थी कि वे कभी उससे एक शब्द भी न बोलते थे, क्योंकि वे जानते थे कि वह कन्या विवाहिता है और उसके साथ किसी प्रकारकी बात-चीत या छेड़-छाड़ करना उचित नहीं है। पर वे सौन्दर्यके उपासक थे, उसका सौन्दर्य उन्हें बहुत भला मालूम होता था और इसीलिये वे नित्य एकबार उसके दर्शनके लिये उस कुएँ पर जाया करते थे और नित्य उसके रूपकी प्रशंसामें एक नया सवैया पढ़कर उसे सुनाया करते थे। वह कन्या भी उनका सवैया सुनकर बहुत ही प्रसन्न होती थी। पहले तो कुछ दिनों तक यह क्रम इसी प्रकार चलता रहा, पर जब उस कन्याके पिताको यह बात मालूम हुई, तब उसने उसका कुएँ पर पानी भरने जाना बन्द कर दिया। तब वह कन्या भी बीमार पड़ गई और ठाकुर कवि भी। दोनोंको ज्वर आने लगा। उस अवसर पर वे दोनों ही एक दूसरेको देखनेके

लिये बहुत ही व्याकुल रहा करते थे। कई दिन बाद ठाकुर कविने उठ कर नित्य उसके मकानके आस-पास चक्कर लगाना आरम्भ किया। उस समय उनके एक मित्रने उन्हें समझाया कि तुम क्यों व्यर्थ चक्कर लगाते हो; तुम्हारी प्रेमिकाको तुम्हारी कुछ खबर भी है। इस पर उन्होंने उसके मकानके नीचे एक सवैया कहा था जिसका अन्तिम पद था—

"आवत हैं नित, मेरे लिये इतनो तो विशेष कै जानत हो रहैं।"
तबसे उस कन्याको मालूम हो गया कि ये नित्य मुझे देखनेके लिये यहाँ भी आया करते हैं। तबसे वह नित्य झरोखे-खिड़की आदिसे उन्हें दर्शन देने तथा उनके दर्शन करने लगी। पर फिर भी दोनों रोगी ही रहे; रोग-मुक्त कोई न हुआ। अन्तमें उस कन्या ने अपनी मातासे कहा कि यदि तुम चाहती हो कि मैं अच्छी हो जाऊँ, तो तुम मुझे कुएँ पर पानी भरनेके लिये जाने दिया करो। माताने उसकी बात मान ली और उसे कुएँ पर जानेकी आज्ञा मिल गई। तब कहीं जाकर दोनों अच्छे हुए और फिर नित्य एक दूसरेके दर्शन करने लगे। कुछ दिनों बाद उस कन्याकी ससु-रालवालोंको यह बात मालूम हुई और उनके डरसे पिताने फिर कन्याको कुएँ पर जानेसे रोक दिया और बिजावरके तत्कालीन महाराजसे इस बातकी शिकायत की। महाराजने ठाकुरको अपने दरबारमें बुला कर पूछा तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि महाराज मैंने उसे तनिक भी पाप-दृष्टिसे नहीं देखा; मेरा उस पर बहुत ही सात्त्विक और पवित्र प्रेम है। पर पिताका इन बातोंसे सन्तोष नहीं हुआ और उसने कन्याको घरसे बाहर न निकलने दिया। तब एक दिन बहुत ही दुखी होकर ठाकुरने उसी कुएँ पर जाकर एक सवैया पढ़ा, जिसमें उन्होंने जल-देवताकी प्रार्थना की और

कहा कि यदि मेरा प्रेम सच्चा और शुद्ध हो, तो आप किसी प्रकार फिर उस सुन्दरीको यहाँ बुलाइए। कहते हैं कि वह कुआँ उसी दिन सूख गया, जिसके कारण महल्लेमें बड़ी ही हलचल मची। तब फिर उस कन्याने अपने माता-पितासे कहा कि ठाकुरने आज तक मुझसे कभी एक भी बात नहीं की और न मुझे कभी छेड़ा। ऐसी दशामें यदि आप लोग चाहते हों कि कुएँमें फिरसे पानी आवे, तो मुझे वहाँ पानी भरनेके लिये जाने दीजिए। लाचार माता-पिताने इसे जानेकी आज्ञा दी, ठाकुर भी पता लगा कर वहाँ पहुँचे। उसी समय फिर कुएँमें पानी आ गया। विजावरमें अब तक वह कुआँ भी मौजूद है और उस कन्या तथा ठाकुरका मकान भी और इस बातको वहाँके प्रायः सभी लोग जानते हैं।

प्रसिद्ध कवि आलम जब पहले ब्राह्मण थे, तब उन्होंने एक बार एक दोहेका एक चरण बनाया था; पर उसका दूसरा चरण उनसे न बन सका था। उस एक चरणको कागज पर लिख कर उन्होंने अपनी पगड़ीके पल्लेमें बाँध लिया था। एक दिन उन्होंने वह पगड़ी रँगनेको दी और उसके पल्लेमें भूलसे वह कागज भी बँधा रह गया। रँगरेजकी कन्याने वह कागज देखा और उस दोहेका दूसरा चरण भी बनाकर उस पर लिख दिया और जब पगड़ी रँगी जा चुकी, तब वह कागज भी उसीके साथ रखदिया। आलम वह कागज पढ़ कर बहुत ही विस्मित हुए और पता लगाते हुए उस रँगरेजके घर पहुँचे। वहाँ उन्हें वह लड़की मिली, जिसने दोहेका दूसरा चरण बनाया था। उस लड़कीके रूप और गुण पर वे इतने मोहित हुए कि तुरन्त मुसलमान होकर उन्होंने उसके साथ विवाह कर लिया!

इसी प्रकार और भी बहुतसे ऐसे कवि हो गये हैं जो स्त्री-प्रेमी थे। बोधाका इश्कनामा और बिहारीकी सतसईसे सिद्ध होता है कि ये दोनों ही कवि बड़े सौन्दर्य्य-प्रेमी थे। देवकी कवितासे भी यही बात सिद्ध होती है। केशव तो वृद्धावस्थामें भी नित्य उस स्थान पर जाया करते थे, जहाँ स्त्रियाँ नहातीं और पानी भरती थीं। उन्हें देख कर युवतियाँ "बाबा" कह कर उनकी हँसी उड़ाया करती थीं। उसी अवसर पर उन्होंने यह दोहा कहा था—

केशव केसन अस करी, बैरिहु जस न कराहिं।
चन्द्रबदन मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं॥

आधुनिक कवियों और लेखकोंमें भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र उल्लेख योग्य हैं। आपका दो वेश्याओंसे सम्बन्ध था। उर्दू भाषा-के तो बहुतसे ऐसे कवि हो गये हैं, जो मद्यप भी थे और स्त्री-लोलुप भी। बंगलाके कवि माइकेल मधुसूदन दत्त एक युरोपियन युवतीके प्रेम-पाशमें इतने फँस गये थे कि उससे विवाह करनेके लिये उन्हें ईसाई हो जाना पड़ा था!

पाश्चात्य देशोंमें लोग पहले प्रेम और प्रेम-परीक्षा करते हैं और तब विवाह। लेकिन ऐसे लोगोंमें प्रायः यही देखा जाता है कि विवाह होनेसे पहले तो प्रेमी और प्रेमिकामें बहुत प्रेम होता है, पर विवाहके कुछ ही दिनों उपरान्त वह प्रेम शिथिल पड़ जाता है। पर वास्तवमें परीक्षाका समय विवाहके उपरान्त ही आता है। यदि विवाह होनेके उपरान्त अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ और कष्ट झेल कर भी पति और पत्नी परस्पर एक दूसरेके प्रेममें दृढ़ रहें, तो समझना चाहिए कि वे सच्चे प्रेमी हैं। यौवन और सुखके समय

तो सभी लोग प्रेम कर सकते हैं। सच्चे प्रेमके लिये मनमें सच्ची सहानुभूतिकी आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त पति-पत्नीके लिये यह भी आवश्यक होता है कि वे अपने मन और विचारों को अपने अधीन रखें और अपना उत्तर-दायित्व समझें; यदि एकसे कोई भूल या अपराध हो जाय, तो दूसरा उसे शान्ति-पूर्वक क्षमा कर दे और यदि एकके ऊपर विपत्ति आवे, तो दूसरा उसका कभी साथ न छोड़े। ऐसी अवस्थामें दोनोंका जीवन बड़े ही सुख, बड़े ही आनन्दसे बीतेगा। दोनों ही अपने घरको स्वर्ग और सारे सुखोंका केन्द्र समझेंगे और सब प्रकारके कष्टों तथा आपत्तियोंसे सदा रक्षित रहेंगे।

काम-काजी आदमी जब दिन भरका थका-माँदा घर आता है, तब वह सुखी और शान्त होना चाहता है और यदि घरमें सुशीला स्त्री हो, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसे वहाँ अवश्य सुख और शान्ति मिलती है। सुशीला स्त्रीकी पहचान यह है कि गृहस्थीका सारा प्रबन्ध बहुत ही उत्तमता-पूर्वक करे, बाल-बच्चोंके पालन-पोषणका पूरा-पूरा ध्यान रखे, सास-ससुर, देव-रानी, जेठानी और ननद आदिको कभी रुष्ट या असन्तुष्ट न होने दे, यदि किसी प्रकारका कोई कष्ट आ पड़े, तो यथासाध्य चुप-चाप उसे सह ले और हर-दम अपने पतिकी सेवामें दत्तचित्त रहे। ऐसी ही स्त्रियोंके कारण बहुतसे लोग अच्छे अच्छे काम कर डालते हैं और कभी-कभी महात्माओं तकमें गिने जानेके योग्य हो जाते हैं। पर संसारमें जहाँ ईश्वरकी और अनेक विचित्र लीलाएँ देखी जाती हैं, वहाँ यह भी देखा जाता है कि प्रायः अच्छी स्त्रीको बुरा पति मिलता है और बुरी स्त्री अच्छे पतिके गले मढ़ी जाती है। ऐसे बहुतसे विद्वान् और महापुरुष हो गये हैं, जो अपनी स्त्री

के लड़ाके, चिड़चिड़े या शक्की स्वभावसे सदा दुखी रहते थे और जिन्हें गृहस्थी बिलकुल जंजाल मालूम होती थी। पर साथ ही बहुतसे विद्वान् और महापुरुष ऐसे भी हो गये हैं, जो गृहस्थीके विचारसे बड़े ही भाग्यवान् थे और जिनकी स्त्रियाँ बहुत ही सुशीला, सुयोग्य, दक्ष और विदुषी थीं। ऐसी स्त्रियोंने विद्या और विज्ञान विषयक कार्योंमें अपने पतियोंको बहुत अधिक सहायता दी है और यथासाध्य उनका हाथ बँटाया है।

पर आज-कलकी सभ्यता स्त्रियोंको बहुतसे अंशोंमें नष्ट कर रही है। सन्त पालने कहा है कि आज-कलकी स्त्रियाँ प्रायः घर का कोई काम-धन्धा नहीं करती, सदा खाली रहती हैं, इधर-उधर घूमा करती हैं और व्यर्थ दूसरोंकी निन्दा-स्तुति करती फिरती हैं। यह दशा पाश्चात्य सभ्य समाजकी भी है और भारतीय समाजकी भी। ऐसी स्त्रियाँ न तो कभी प्रेमकी पात्र हो सकती हैं और न उनसे पतियोंको किसी काममें सहायता मिल सकती है। भला स्त्रियोंकी यह दशा देखकर यदि कोई समझदार अविवाहित रहना ही पसन्द करे तो उसमें उसका क्या दोष है ? पाश्चात्य देशोंमें जहाँ विवाह करना या न करना अपने अधिकारमें होता है, बहुत से पढ़े-लिखे और कमाने-धमानेवाले लोग भी इसी लिये विवाह करके गृहस्थीकी झंझटोंमें फँसनेसे डरते है। चाहे आगे चलकर वे दुराचारी ही क्यों न हो जायँ और उनके द्वारा समाज कितना ही दूषित क्यों न हो जाय, पर वे विवाहसे सदा बचनेका ही प्रयत्न करते हैं। इसी लिये भारतीय समाजमें यह प्रथा स्थापित कर दी गई है कि माता पिता ही अपनी सन्तानके गलेमें गृहस्थी का जंजाल डाल दें और सन्तान चाहे दुखी होकर और चाहे

सुखी रह कर उसका निर्वाह करे और भविष्यमें उनके द्वारा समाजमें दुराचार फैलनेकी आशंका न रह जाय। यही कारण है कि हमारा समाज उन अनेक दोषोंसे रक्षित है, जिनसे यूरोपियन सभ्य समाज बुरी तरह दूषित और कलंकित हो रहा है।

अब हम दम्पतिके प्रेमके सम्बन्धमें दो बातें कह कर यह प्रकरण समाप्त करते हैं। हैटर्गने कहा है कि "यदि स्त्रीमें यथेष्ट सौन्दर्य हो, तो वह पुरुषको अपने वशमें कर सकती है और यदि पुरुषके पास यथेष्ट धन हो तो वह स्त्रीको अपने वशमें कर सकता है।" पर यह बात सांसारिक अनुभवके बहुत कुछ विपरीत है। केवल धनसे स्त्रीका प्रेम सम्पादित नहीं किया जा सकता। बल्कि सच पूछिए तो जो प्रेम केवल धनके कारण होता है, वह न तो कभी सच्चा प्रेम होता है और न उसका परिणाम सुन्दर और सुखद होता है। बहुधा ऐसे प्रेमका अन्तिम परिणाम यही होता है कि पति और पत्नी दोनों दुराचारमें प्रवृत हो जाते हैं। सच्चे प्रेमके लिये मनमें एक दूसरेके प्रति सहानुभूतिकी आवश्यकता होती है। इसीलिये किसीने बहुत ही ठीक कहा है कि कभी-कभी कष्ट और आपत्तियोंसे भी प्रेम बहुत दृढ़ हो जाता है; क्योंकि उस दशामें सहानुभूतिकी विशेष आवश्यकता होती है और सहानुभूतिकी मात्रा जितनी ही अधिक होगी, प्रेम भी उतना ही अधिक होगा। दूसरी बात यह है कि प्रारम्भिक और नया प्रेम किसी कामका नहीं होता। पति और पत्नीका जितने ही अधिक दिनों तक साथ रहेगा, प्रायः उनके प्रेममें भी उतनी ही वृद्धि होगी। एक दूसरेके हृदयको अच्छी तरह पहचानने और दोनों हृदयोंके एक होनेमें बहुत समय लगता

है। ज्यों-ज्यों दिन बीतते हैं, त्यों-त्यों वे दोनों एक दूसरेके गुणों और दोषोंसे परिचित होते जाते हैं और गुणोंका आदर करना तथा दोषोंको उदारता-पूर्वक क्षमा करना या सहना सीखते जाते हैं और यही परिचयकी अधिकता, सहानुभूति और सहनशीलता आदि प्रेमके प्रधान आधार हैं।

दसवाँ प्रकरण

जीवन-सन्ध्या—महात्माओंके अन्तिम विचार।

वृद्धावस्थामें भी बहुत-सी विशेषताएँ हैं। युवावस्थामें अनेक प्रकारके सुख होते हैं और वृद्धावस्थामें उनकी स्मृति बनी रहती है। जिस प्रकार किसी फूलकी सबसे अन्तमें खिलनेवाली पँखड़ियाँ सबसे अधिक सुन्दर होती हैं, उसी प्रकार जीवनके अन्तिम दिन भी बहुत ही सुन्दर और सुख-पूर्ण हो सकते हैं। जब किसी वृक्षके फूल झड़ जाते हैं, तब उसमें फल लगते हैं और जब शरीर शिथिल होने लगता है, तब मन परिपक्व होने लगता है। कारनैरोने पचासी वर्षकी अवस्थामें कहा था—"ज्यों-ज्यों शरीर वृद्ध होता जाता है, त्यों-त्यों आत्मा पूर्णता प्राप्त करती जाती है।" अमेरिकाके डा० चैनिंगसे, उनकी मृत्युके कुछ ही पहले, किसीने पूछा था कि जीवनकी सबसे अधिक सुख-पूर्ण अवस्था कौनसी है। उन्होंने उत्तर दिया—"साठ वर्षकी"। उस समय उनकी अवस्था साठ ही वर्षकी थी।

भारतवर्षमें जिन लोगोंकी अवस्था पचपन साठ या पैंसठ वर्षकी हो जाती है, उनकी समझकी हँसी उड़ाते हुए लोग कहा करते है कि ये तो सठिया गये हैं। मानों साठ वर्षकी अवस्था तक पहुँचने पर आदमीकी अक्ल मारी जाती है। साधारणतः

पाश्चात्य देशोंके लोगोंका भी यही विश्वास है कि तिरसठ वर्षकी अवस्था तक पहुँचने पर मनुष्यकी मानसिक शक्ति क्षीण होने लगती है। लेकिन फाएटेनेलने कहा था कि मेरे जीवनका सबसे अधिक सुख-पूर्ण अंश पचपनसे पचहत्तर वर्षकी अवस्थाके मध्य-का था। बफन सत्तर वर्षकी अवस्थामें उतना ही अधिक प्रसन्न रहता था, जितना कि वह अपने जीवनकी और अवस्थाओंमें रहा करता था। उसने एक स्थल पर कहा था—"जो पिछली बातें पुराने मूर्खोंको दुखी करती हैं वही मुझे सबसे अधिक सुखी और प्रसन्न करती हैं।"

एक फ्रान्सीसी नीतिज्ञने कहा है कि युवावस्थाका स्वर्ग वृद्धावस्था है और वृद्धावस्थाका स्वर्ग युवावस्था है। युवावस्थाके दिन बहुत धीरे-धीरे बीतते हैं। उस समय बरस-गाँठ मानों बहुत दूर-दूर पड़ती है और जीवनका स्वर्ग धीरे-धीरे हमारी ओर आता है। पर ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, त्यों-त्यों बरस-गाँठ अधिक जल्दी होने लगती है। उस समय हम अपनी गत् युवावस्थाके स्वर्ग पर दृष्टि डालते हैं और उस समयकी बातोंकी स्मृति बनाये रखते हैं। वह मनुष्य बड़ा ही भाग्यवान् है, जो युवावस्थामें अच्छे अच्छे कार्य्य करता और अच्छी अच्छी बातें कहता है और वृद्धावस्थामें उनका स्मरण करके प्रसन्न होता है।

वृद्धावस्थामें लोग तरह तरहके कामोंसे और विशेषतः प्राचीन सुन्दर ग्रन्थोंका अध्ययन करके अपना जी बहलाते हैं। प्राचीन भारतवासी वानप्रस्थ आश्रममें प्रवेश करके जंगलों और पहाड़ोंकी ओर निकल जाया करते थे और वहीं बहुत ही शुद्धता-पूर्वक और बड़े ही सुखसे अपना जी बहलाया करते थे। आज-कल भी

वृद्ध हिन्दू या तो सब तीर्थोंकी यात्रा करने निकल जाते हैं, या किसी एक ही तीर्थमें रह कर अपना शेष जीवन सुख और शान्ति-पूर्वक व्यतीत करते हैं। उस अवस्थामें उनका समय गीता-पुराण आदि पढ़ने और धर्म्म-चर्चा करके आत्मिक उन्नति करनेमें ही बीतता है। पाश्चात्य देशोंमें वृद्धावस्थामें लोग किसी गाँव, देहात या दूसरे निर्जन स्थानमें छोटा मोटा मकान बना कर जा रहते हैं और वहीं बाग-बगीचा लगा कर रहते और पुस्तकें पढ़ कर अपना समय बिताते हैं। लार्ड चेस्टर फील्ड जब वृद्धावस्थामें बहरे हो गये थे, तब वे केवल पुस्तकें ही पढ़ा करते थे और कहते थे कि बहरोंका यही वार्त्तालाप है और इसीके द्वारा वे समाजसे सम्बन्ध रखते हैं। साठ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने अपने एक मित्रको लिखा था—"इस बार बिना प्रसन्न या दुखी हुए मैंने साल भर केवल तरकारियाँ बोई हैं। मेरा बुढ़ापा और बहरापन तो मुझे प्रसन्न नहीं होने देता और मेरा दर्शन-शास्त्र अथवा कदाचित् मेरा स्वभाव ही मुझे दुःखसे रक्षित रखता है। मैं बड़े मजेमें पेड़ लगाता, घूमता और किताबें पढ़ता हूँ और साथ ही उस मृत्युकी भी प्रतीक्षा करता हूँ, जिसकी न तो मुझे आकांक्षा है और न भय।"

रिचर्ड बैक्सटर जब नीरोग और स्वस्थ था, तब वह केवल उपदेश ही देता था; पुस्तकें लिखनेकी ओर उसका ध्यान कभी जाता ही न था। पर जब वह बहुत रोगी होनेके कारण अपने जीवनसे बिलकुल निराश हो गया, तब उसने अन्तिम और अनन्त शान्ति पर विचार करना आरम्भ किया और उन्हीं विचारोंको एकत्र करके एक बहुत ही उत्तम ग्रन्थ The Saint's Rest (सन्तका विश्राम) लिख डाला। अन्धे लोग एक तो स्वभा-

वतः प्रसन्न रहा ही करते हैं, दूसरे वृद्धावस्थामें यदि वे चाहें तो और भी अधिक प्रसन्न रह सकते हैं। महात्मा सूरदासजी प्रायः अस्सी वर्षकी अवस्थामें भी सदा बड़े ही प्रसन्न रहते थे और आनन्द-पूर्वक पद बनाया और गाया करते थे। अँगरेजीके सुप्रसिद्ध कवि मिलटनकी दृष्टि भी वृद्धावस्थामें जाती रही थी। इसके अतिरिक्त उसे और भी अनेक शारीरिक कष्ट भोगने पड़े थे। पर उसने न तो वृद्धावस्था और नेत्र-हीनताकी परवा की और न कष्टोंकी चिन्ता की। अन्धे होनेके समय वह इंगलैण्ड-का एक इतिहास लिख रहा था। पर जब वह अन्धा हो गया, तब उसने इतिहास लिखना छोड़ दिया और अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ Paradise Lost की रचना कर डाली। यदि मिलटन अन्धा न हो जाता, तो बहुत सम्भव था कि अँगरेजी-साहित्य इस ग्रन्थ-रत्नसे वंचित ही रह जाता।

प्रकृतिकी योजना भी बड़ी ही विलक्षण है। जब किसी मनुष्यकी कोई एक इन्द्रिय या शक्ति नष्ट हो जाती है, तब उसके बदलेमें उसकी कोई दूसरी इन्द्रिय या शक्ति बहुत ही तीव्र और बलवती हो जाती हैं। जब आँखोंकी ज्योति नष्ट हो जाती है, तब मधुर शब्दोंको सुननेके लिये श्रवण-शक्ति बहुत बढ़ जाती है; साथ ही स्पर्श करके ज्ञान प्राप्त करनेकी शक्ति भी बढ़ जाती है। मानो हर एक उँगली आंख हो जाती है। यहाँ तक कि मुँह भी आँख बन जाता है और चारों ओर देखने तथा पदार्थों का अनुभव करने लग जाता है। मनुष्यमें साहस आ जाता है और उसकी वृत्ति बहुत अधिक प्रसन्न हो जाती है; इस प्रकार उसकी आँखोंवाली त्रुटिकी पूर्त्ति होती है। अन्धा होते

ही आदमी प्रायः मिलनसार और खुश-मिजाज हो जाता है। पर बहरेपनका प्रभाव इसके बिलकुल विपरीत होता है।

प्रसिद्ध रूसी कवि कोजलर केवल अन्धा ही नहीं हो गया था, बल्कि उसके दोनों पैरोंमें लकवा भी मार गया था। पर इससे उसका काव्य-प्रेम और भी बढ़ गया था। यूलर अन्धा होने पर बहुत ही हँस-मुख हो गया था और उसकी स्मरण-शक्ति इतनी प्रबल हो गई थी कि उसने सारा महाकाव्य Æncid जबानी याद कर लिया था। यही नहीं, बल्कि उसे यहाँ तक स्मरण था कि कौनसे पेजका आरम्भ किस शब्दसे और अन्त किस शब्दसे होता है। गेलीलियो भी मरनेसे कुछ दिन पहले अन्धा हो गया था, पर तो भी उसने अपना मानसिक परिश्रम कभी नहीं छोड़ा। डा० टकर जब छासठ वर्षकी अवस्थामें अन्धा हो गया, तब उसकी लड़की उसे किताबें पढ़ कर सुनाया करती थी। अपने पिताको ग्रीक भाषाकी पुस्तकें सुनाने के लिये ही उसने वह भाषा भी सीखी थी। डा० टकरने अपने लिये लिखनेकी एक कलका भी आविष्कार किया था और उस कलके द्वारा उसका लिखा हुआ लेख उसकी लड़की बहुत अच्छी तरह पढ़ लेती थी और साधारण लिपिमें उसकी नकल कर लेती थी। एतिहासिक बातें जानने और इतिहासज्ञ बननेके लिये दृष्टिका होना बहुत ही आवश्यक होता है; क्योंकि उसमें बहुत अधिक ग्रन्थोंका अध्ययन करना पड़ता है; पर प्रसिद्ध इतिहासज्ञ थियरीने अन्धे होनेके बाद बहुतसे अच्छे-अच्छे ग्रन्थ लिखवाये थे और प्रेस्काटने स्वयं, अन्धोंके लिये बनी हुई एक प्रकारकी कलम और लिखनेके सन्दूकके द्वारा, कई ग्रन्थ लिखे थे। हेनरिच हेन मरनेसे प्रायः आठ वर्ष पहले बिलकुल अन्धा हो गया था और उसके सर्व-श्रेष्ठ

ग्रन्थ उसी समयके लिखे हुए हैं। डिसराइली जब अन्धा हो गया था, तब उसने साहित्य-सेवा-सम्बन्धी अपने बहुतसे अधूरे विचार अपनी कन्याकी सहायता लेकर पूरे किये थे।

लेकिन सबसे अधिक विलक्षण अन्धा प्रसिद्ध यात्री लफ्टिनेण्ट हालमैन था। पचीस वर्षकी अवस्थामें ही उसकी आँखें जाती रहीं थीं, जिसके कारण उसे अपनी नौकरी छोड़नी पड़ी थी। उस मनुष्यके हृदयमें बहुत बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ और ऊँचे ऊँचे हौसले थे, इस लिये दृष्टिके नष्ट हो जानेसे वह अवश्य ही परम दुखी हुआ होगा। पर तो भी वह निराश नहीं हुआ और अपनी नवीन अवस्थाके अनुकूल ही अच्छी तरह रहनेके लिये वह तैयार हो गया। उसके मनमें देशाटनकी बहुत प्रबल इच्छा थी; पर अब तो वह अन्धा हो गया था। तो भी उसने साहस करके भ्रमण आरम्भ ही कर दिया। यद्यपि वह एक अक्षर भी फ्रान्सीसी भाषा नहीं जानता था, तथापि उसने पहले-पहल फ्रान्समें प्रवेश किया। लण्डनमें तो वह अपने पास एक नौकर भी रखता था; पर यात्राके लिये वह घरसे बिलकुल अकेला ही निकला था और अकेले ही उसने सारे युरोप, एशिया, अफ्रिका अमेरिका, और आस्ट्रेलियाकी यात्रा की थी। वह केवल भ्रमण ही नहीं करता था, बल्कि साथ ही साथ अपना भ्रमण-वृतान्त भी लिखता जाता था। उस वृत्तान्तके छः खण्ड तो उसने अपने जीवन कालमें ही प्रकाशित करा दिये थे और आगेके खण्डोंकी हस्त-लिखित प्रति भी तैयार की थी। पर इसी बीचमें वह मर गया। अपने नैतिक साहस, कर्म्मण्यता, आत्म-निर्भरता और अदम्य उत्साह आदिके कारण वह अन्धा भी अपने ढंगका एक ही हो गया है।

बहरोंके साथ लोगोंकी उतनी सहानुभूति नहीं होती, जितनी अन्धोंके साथ होती है। पर यदि सच पूछिए तो अन्धे होनेकी अपेक्षा बहरा होना और भी बुरा है। अन्धे आदमी तो प्रायः आनन्दित रहते हैं और उनका चित्त बहुधा प्रसन्न रहता है; पर बहरे प्रायः चिड़चिड़े होते और सदा दुखी रहते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि वे वार्त्तालापके आनन्दसे वंचित हो जाते हैं और सामाजिक सम्बन्धका सबसे अधिक आनन्द केवल वार्त्तालापमें ही आता है। मानों वे एक ऐसे भोजमें बैठते हैं, जिसमें वे सम्मिलित नहीं हो सकते। लोगोंको तो वे अच्छी तरह हँसते-बोलते देखते हैं, पर वे स्वयं हँस-बोल नहीं सकते। सर विलियम वाइल्डने एक स्थान पर लिखा है—"जहाँ चार आदमी बैठे हों, वहाँ एक कुछ बहरेका नाक-मुँह बनाना और अन्धेका मुसकराना देखने लायक होता है। पर जो लोग अधिक समझदार होते हैं, वे पूरे बहरे होने पर भी दूसरोंकी बातोंका केवल कुछ अंश सुननेके कारण ही कभी दुखी नहीं होते।"

प्रसिद्ध गवैये बीथोवनको तीस वर्षकी अवस्थामें ही कम सुनाई पड़ने लगा था। जब वह ऊँचा सुनने लगा, तब उसने लोगोंसे मिलना-जुलना कम कर दिया। किसी गवैयेके लिये बहरा होना कितना बुरा है, इसके यहाँ बतलानेकी कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि जो कुछ मुँहसे कहा जाता है, वह जब तक अपने आपको सुनाई न दे, तब तक उसका कुछ आनन्द ही नहीं आता और विशेषतः गाने-बजानेके काममें तो यह जाननेके लिये कानकी और भी अधिक आवश्यकता होती है कि कहीं हमने बेसुरा तो नहीं गाया बजाया। अपने बहरेपनके कारण बीथोवन इतना दुखी हुआ कि अन्तमें उसने आत्मघात करना

निश्चय कर लिया। पर बहुत कुछ समझ-बूझ कर उसने अपने उद्विग्न चित्तको शान्त किया और तब धैर्य्य तथा साहस करके दूसरा कार्य्य आरम्भ किया। उस समय उसने बहुत अच्छे अच्छे गीत और पद बनाये और तीन बहुत ही उत्तम नाटक लिखे।

कहा जाता है कि युवावस्थामें मानसिक शक्तिमें वृद्धि करनेका गुण बना रहता है और मन पर नये विचार अंकित हो सकते हैं; लेकिन वृद्धावस्थामें भी जान्सन और जैम्स वाटने नई भाषाएँ सीखी थीं और नये विचार ग्रहण किये थे। बरजेलियस बहुत अधिक वृद्ध हो जाने पर भी अपनी वैज्ञानिक यंत्र-शालामें बराबर काम किया करता था। बल्कि वृद्धावस्थामें तो मनुष्य और भी अधिक दयालु, सुशील और समझदार हो जाता है।

किसी मनुष्यके बहुत अधिक वर्षों तक जीवित रहनेसे ही यह नहीं कहा जा सकता कि उसने इतना अधिक जीवन व्यतीत किया है। कुछ लोग बीस ही वर्षमें इतना जीवन व्यतीत करते हैं जितना और लोग एक शताब्दीमें भी नहीं व्यतीत करते। मनुष्य जो कुछ कार्य्य करता अथवा अनुभव प्राप्त करता है, उसी-से उसके जीवनकी अधिकता या न्यूनताका अनुमान होना चाहिए। अधिक कार्य करना और अधिक अनुभव प्राप्त करना ही अधिक जीवन व्यतीत करना है। कोई तो विवाह करके दुखी होता है और कष्ट पाता है और कोई अविवाहित रहनेके कारण दुखी रहता है। लेकिन अविवाहित रहनेके कारण दुखी होने-वाला मनुष्य यह नहीं सोचता कि यदि मुझे विवाहसे होनेवाले सुख नहीं मिले हैं, तो साथ ही उससे होनेवाले दुखोंका अनुभव भी तो नहीं हुआ है।

जो अपने आगे सन्तान होनेका सुख नहीं देखता, वह उनकी अकाल मृत्युका दुःख भी तो नहीं भोगता। बारबर्टनका जब लड़का मरा, तब उसने कहा था कि मेरी आधी जान निकल गई और उसी दिनसे उनकी शक्तियाँ क्षीण होने लगीं। वर्थ अपने पुत्रकी मृत्युके कारण इतना दुखी हुआ था कि वह अधिक समय तक जीवित ही न रह सका।

कष्ट या चिन्ताके कारण हम अपने जीवनसे बहुत कुछ विरक्त हो जाते हैं। लोगोंने दुःखकी आवश्यकताका अनुभव किया है और जब वे साधारणतः उसका अनुभव नहीं कर सके हैं, तब उन्होंने उसे उत्पन्न किया है। बहुतसे लेखकोंने अपने ग्रन्थोंमें "दुःख-देव" का आराधन और आवाहन किया है। यहाँ तक कि 'महात्मा लूथर भी' जो सदा प्रसन्न रहा करता था, अन्तिम अवस्थामें अपने जीवनसे निराश हो गया था। युवावस्थामें मरना बड़े ही दुःखकी बात है; पर बहुत अधिक दिनों तक जीवित रह कर अपने सभी सम्बन्धियोंको अपनी आँखों मरते देखना भी तो कुछ कम दुःखकी बात नहीं है। ऐसे दीर्घ जीवनसे अल्प जीवन ही कहीं अच्छा है।

संसारमें बहुतसे लोग ऐसे होते हैं, जो थोड़े दिनों तक बहुत ही सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करके मजेमें चल बसते हैं। इसी प्रकार आनन्द वृत्तिवाले कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो कभी वृद्ध होना जानते ही नहीं, वे सदा अपनी प्रसन्न वृत्तिके कारण लड़के ही बने रहते हैं। गरमी, बरसात और जाड़ा सभी मौसिम आप आपको अच्छे हैं। सभीमें कुछ न कुछ गुण, कुछ-न-कुछ सौन्दर्य होता है। प्रकृति सदा अपना स्वरूप बदल कर नया स्वरूप धारण करती रहती है; और उसके प्रत्येक स्वरूपमें कुछ-न-कुछ

विशेषता, कुछ न कुछ गुण होता है। वृद्धावस्थामें जो आनन्द या दुःख होता है, वह युवा या मध्यम अवस्थाके आनन्द या दुःख की मानों तल-छट मात्र है। सिडनी स्मिथ प्रायः बड़े ही आनन्दसे वेलरका निम्न लिखित पद्य कहा करता था—

The soui's dark cottage, batter'd and decay'd,
lens in new light through chinks that time has made-

सिडनी स्मिथ स्वयं सदा प्रसन्न रहता था। यद्यपि अनेक अवसरों पर उसे बहुत कष्ट सहने पड़े थे और वह प्रायः रोगी रहा करता था, तथापि वह अपने आपको बहुत भाग्यवान् समझता और सदा प्रसन्न रहता था। जिस समय उसे गठिया, दमा और हड्डियोंमें बहुत सख्त दर्द था, उस समय भी वह बहुत प्रसन्न रहता था और अपने इन रोगोंके सम्बन्धमें मित्रोंको हास्य-पूर्ण पत्र भेजा करता था। साथ ही यह भी लिखा करता था कि मैं मजेमें हूँ।

मरते दम तक उससे मजाक नहीं छूटा। विलियम टाइटलर नामक एक प्रसिद्ध इतिहासज्ञने भी बहुत ही सुख और शान्ति-पूर्वक दीर्घ जीवन व्यतीत किया था। उसने अपने मित्रोंके लिये भी सुखी और शान्त रहनेका एक बहुत अच्छा नुसखा तैयार किया था; उस नुसखेमें "थोड़ा पर अच्छा भोजन, संगीत और अच्छा विवेक" था। काउण्ट नेसेलरोडसे जब किसीने पूछा कि आप वृद्धावस्थामें भी इतने शक्ति सम्पन्न क्यों हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया कि संगीत और फूलोंके कारण।

वृद्धावस्थामें जब यूलरकी आँखें जाती रही थीं, तब वह अपने नाती-पोतेके साथ हँस-खेल कर सुख-पूर्वक अपना समय बिताया करता था; राबिन्सन भी अपने पोतेको देख कर बहुत प्रसन्न

होता था। वह उस नन्हेसे बालकको बढ़ते हुए और विशेषतः उसके अनेक स्वाभाविक ज्ञानोंको देखकर बहुत ही आनन्दित होता था। वह बड़े ही कौतुकसे देखा करता था कि जब वह अबोध शिशु इधर उधर लुढ़कता फिरता था, तब ईश्वर किस प्रकार गुप्त-रूपसे उसकी रक्षा किया करता था। एडिनबराका एक प्रोफेसर डा० ब्लैक मरते दम तक शान्त, धीर और प्रसन्न था। इकहत्तर वर्षकी अवस्थामें जब वह मरने लगा, तब वह एक कुरसी पर बैठा हुआ था। उस समय उसके हाथमें दूधका कटोरा था। पर उस कटोरेमेंसे एक बूँद दूध भी उसके घुटने पर नहीं गिरा। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० हेनरीने भी बहुत ही शान्ति-पूर्वक अपने प्राण त्यागे थे। मरनेसे कुछ दिन पहले उन्होंने अपने एक मित्र सर हेरी मानक्रेफको यह लिख कर मिलनेके लिये तुरन्त बुलाया था कि इस सप्ताह मैं मरूँगा। जब सर हेरी उनके मकान पर पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि डा० हेनरी एक कुरसी पर बैठे हुए बातें कर रहे हैं। पर उनकी चेष्टा-से विदित होता था कि अब ये न बचेंगे। इसके दो एक दिन बाद एक दिन घोड़ेकी टापोंकी आहट सुनाई दी। डा० हेनरीने अपनी स्त्रीसे पूछा कि यह कौन है। उन्होंने खिड़कीमेंसे झाँक कर देखा और कहा कि वह दुष्ट पादरी आ रहा है। इस पादरीके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध था कि जिस मरणोन्मुख रोगीके यहाँ वह जाता था, वहाँसे वह फिर कभी टलता न था। डा० हेनरीने कहा कि उसे यहाँ मत आने दो। पर इतनेमें ही वह दरवाजे तक पहुँच गया। डाक्टरने अपनी स्त्रीको इशारा कर दिया और स्वयं इस प्रकार वे आँखें बन्द करके पड़ गये कि मानों सो रहे हैं। सर हेरी और श्रीमती हेनरीने इशारोंसे पादरीको

समझा दिया कि डाक्टर महाशयकी अभी आँख लगी है; इस लिये जरा भी न बोलना। वह पादरी बहुत देर तक बैठा रहा और कई बार उसने कुछ बोलना भी चाहा। पर लोगोंने उसे इशारेसे मना कर दिया। थोड़ी ही देर बाद इशारेसे उसे वहाँ से हटा भी दिया। जब वह अपने घोड़े पर सवार होकर दूर निकल गया और टापोंकी आहट बन्द हो गई, तब डाक्टर महाशय खिल-खिला कर हँस पड़े। उसी रातको शान्ति-पूर्वक उनका शरीर छूट गया।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, ज्यों-ज्यों मृत्यु समीप आती जाती है त्यों-त्यों जिनकी उन्नति करनेकी कामना बराबर बढ़ती जाती है। निकोलस पाउसिन नामक चित्रकारकी वृद्धावस्थामें यही दशा थी। ज्यों-ज्यों दिन बीतते थे त्यों-त्यों सर्व-प्रथम चित्रकार बननेकी उसकी इच्छा बढ़ती जाती थी। गेन्सबोरोने पचास वर्ष तक चित्रकारी करनेके उपरान्त कहा था कि अब मानों मैंने चित्रकारी सीखना आरम्भ किया है। अब आप ही सोचिए कि ऐसा आदमी "आरम्भ" करके कितनी तत्परतासे काम "सीखेगा।" रैन वृद्धावस्थामें प्रतिवर्ष अपनी सबसे बड़ी कृति, सन्तपालका गिरजा देखने जाया करता था और उसे देख कर वह बहुत प्रसन्न होता था।

कोशकार पिटर बेलकी मृत्यु भी बड़ी ही विलक्षण हुई। वह सबेरे उठ कर प्रूफ देखने लगा और उसी दशामें मर गया। इसी तरह और भी कई ऐसे लोग हो गये हैं, जो रास्ता चलते हुए अथवा भोजन करते हुए गिर पड़े और तुरन्त मर गये हैं। इस प्रकारकी अचानक मृत्युसे न तो मरनेवालेको विशेष कष्ट होता है और न उसके साथियों-सम्बन्धियोंको। हाँ, उन लोगोंको इस

बातका अवश्य दुःख हो सकता है कि मरनेवाला, रोगी नहीं हुआ और हम उसकी चिकित्सा और सेवाशुश्रूषा नहीं कर सके। अन्त समयसे दो एक दिन पहले तक बराबर अच्छी तरह अपना काम करते रहनेवाले तो और भी बहुतसे लोग हो गये हैं।

यदि रोगोंसे बहुत अधिक कष्ट पानेवाले लोग उन कष्टोंसे बचनेके लिये मर जानेकी कामना करें, तो इसमें आश्चर्य्यकी कोई बात नहीं है। पीड़ा, काम करनेकी शक्ति न होना, आशाओंका धीरे-धीरे नष्ट हो जाना, प्रसन्नताका ह्रास, बढ़ती हुई वृद्धावस्था और निश्चयात्मक मृत्युका ज्ञान आदि बातें ऐसी हैं, जिनके कारण लोग यही चाहते हैं कि किसी प्रकार जीवनका अन्त हो जाय और संसारकी झंझटोंसे छुटकारा मिले। विलियम हटनने अपनी जीवनीमें लिखा है—"मृत्यु ज्यों-ज्यों समीप आती है, त्यों-त्यों भय कम होता जाता है। स्वस्थ दशामें ही मृत्युका भय होता है, रुग्णावस्थामें नहीं। उस समय संसारमें न तो कोई आकर्षण या मनोहारिणी शक्ति रह जाती है और न भविष्यका किसी प्रकारका भय।"

युवक जिस समय किसी प्रकारकी उन्नति करनेके प्रयासमें लगा हो, उस समय उसका मरना बहुत ही बुरा होता है। उसके मनमें बहुत अच्छी-अच्छी आशाएँ होती हैं, उसके मित्र उसे उत्साहित करते हैं और वह सदा जीवित ही रहना चाहता है। एक विद्वान् युवावस्थामें ही जब कि वह एक कलामें बहुत उन्नति करनेके प्रयत्नमें लगा हुआ था, अचानक बहुत बीमार पड़ गया। उसके भाईने उसे ढारस दिलाया कि तुम घबराओ मत, जल्दी अच्छे हो जाओगे। उसने उत्तर दिया कि "नहीं, इस प्रकार बीमार

होकर और मृत्युके मुख तक पहुँच कर बचना बहुत ही कठिन बल्कि असम्भव है। यह सीखनेमें बहुत समय लगता है कि मनुष्यको किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए और किस प्रकार काम करना चाहिए।" अन्तमें वह विद्वान् नहीं बचा और तेंतालीस वर्षकी अवस्थामें ही मर गया। उसकी अनेक बड़ी-बड़ी आशाओंका भी उसके साथ ही अन्त हो गया।

लेकिन बुड्ढोंकी बात दूसरी है। बुड्ढे प्रायः अपने सब काम कर चुकते हैं; उनका जीवन सुख-पूर्ण नहीं, बल्कि बहुतसे अंशोंमें बोझ होता है। एक वृद्ध महात्माने मरते समय कहा था कि मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मानों मैं देहातमें घूमने जा रहा हूँ। बैक्सटरने कहा है कि मरना मानों एक दुःखदायी साथी का साथ छोड़ना अथवा काटनेवाला जूता उतारना है। एक और विद्वान्‌ने भी वृद्धावस्थामें मरते समय यही बात कही थी और कहा था कि मैं इस मरनेसे बहुत ही प्रसन्न हूं। प्रसिद्ध रूसी लेखक निकोलस सोगोलने मरते समय कहा था कि "यदि लोग जानते कि मरना कितना सुखदायक है, तो वे कभी मरनेसे इतना न डरते।" इसके अतिरिक्त कुछ लोग ऐसे भी हो गये हैं, जो सदा अनेक रोगोंसे पीड़ित रहते थे और जो वास्तवमें अवश्य ही मृत्युके आकांक्षी होंगे। पर कठिन पीड़ाके समय भी वे बहुत ही प्रसन्न रहते थे; मानों वे मृत्युकी प्रतीक्षा ही प्रसन्नता-पूर्वक करते थे।

प्रायः लोग मृत्युसे नहीं डरते। बहुतसे लोग युद्ध-क्षेत्रमें प्रसन्नता-पूर्वक प्राण देते हैं और जान-बूझ कर बड़े ही उत्साहसे ऐसे स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ उनके जीवित बचनेकी बहुत ही कम सम्भावना होती है। बहुतसे लोग शिकार खेलनेके

समय अपनी जान जोखिममें डाल देते हैं। बहुतसे लोग दूसरोंके प्राण बचानेके लिये जलती हुई आग या लहराते हुए समुद्रमें कूद पड़ते हैं। बहुतसे लोग कर्त्तव्य-पालनके सामने अपने प्राणों-को कुछ नहीं समझते। लार्ड बेकनने कहा है—"मरना भी उतना ही स्वाभाविक और अनिवार्य्य है, जितना की जन्म लेना। जब आदमीको कोई चोट लगती है, उस समय तुरन्त ही उसे प्रायः कोई पीड़ा नहीं जान पड़ती। ठीक इसी ताजी चोटकी-सी दशा उस मृत्युकी भी है, जो किसी प्रयासमें दत्तचित्त रहनेके समय होती है। इसलिये यदि मनुष्य किसी शुभ कार्यमें लीन रहे, तो मृत्युका कोई भय न होगा" सर बेंजिमिन बारडीने बहुतसे लोगोंको जन्म लेते और मरते देखा था। उनका कथन है कि मैंने केवल दो आदमियोंको मरते समय भयभीत होते देखा, पर उन दोनों आदमियोंके शरीरसे बहुत अधिक रक्त बह रहा था। इससे सिद्ध होता है कि निरन्तर रक्त बहनेके कारण जो मृत्यु होती है, वह बहुत ही कष्टदायक और भयानक होती है।

प्रकृतिने हमारे शरीरमें प्राण डालनेका तो केवल एक मार्ग बनाया है, पर शरीरसे प्राणके निकलनेके सैकड़ों साधन बनाये हैं। वह हमें जीवन-प्रदान करती है और उसकी रक्षाके साधन हमारे अधिकारमें कर देती है। बीच-बीचमें ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं, जो उन साधनोंको हमारे अधिकारसे छीन लेती हैं और तब हमारी मृत्यु हो जाती है। एक यूनानी कविके सिर पर एक गिद्धने एक कछुआ गिरा दिया, जिससे उस कविकी मृत्यु हो गई। सुप्रसिद्ध वीर हेक्टरकी आकृतिका एक युवक था। उस युवकको देखनेके लिये इतने लोग टूट पड़े कि उन्हींकी भीड़में वह कुचला जाकर मर गया। प्रसिद्ध विजयी विलियमकी मृत्यु

एक गरम कोयले से हो गई थी। तृतीय विलियमकी मृत्यु घोड़ेके भड़कनेसे हुई थी। सर राबर्ट पील रास्तेमें एक पत्थरकी ठोकर लगनेसे मर गये थे। मोलियर रंग-मंच पर अभिनय करता हुआ मर गया था। एण्ड्र मारवेलकी एक सभामें बैठे-बैठे मृत्यु हो गई थी। एक यात्री जो सहस्रों दुर्घटनाओंसे बच गया था, अचानक अपनी ही बन्दूककी गोली लगनेके कारण मर गया था। एक बहादुर कमाण्डर जिसने तीन बार पृथ्वीकी परिक्रमा की थी, एक नाव पर बैठ कर छोटी-सी नदी पार करनेके समय मर गया था। बड़े-बड़े समुद्री तूफानोंसे बचनेवाला एक कप्तान जहाज परसे एक छोटी नावके द्वारा किनारे पर जानेके समय मर गया था। नेपोलियनके साथ अनेक युद्धोंमें बहुत ही वीरता-पूर्वक लड़नेवाला और सैकड़ों वार बाल-बाल बचनेवाला एक सैनिक अपनी भतीजीके साथ सतरंज खेलनेके समय कुरसी परसे पीछेकी ओर गिर पड़ा और मर गया था। समुद्र पार करके लंका पर विजय प्राप्त करनेवाले रामचन्द्रकी मृत्यु छोटी-सी नदी सरजूमें नहाते समय डूब जानेके कारण हुई थी। महाभारतके युद्धमें अर्जुनके रथ पर सबसे आगे बैठनेवाले श्रीकृष्णकी मृत्यु एक बहेलिएके तीरसे हुई थी। संगमरमरके फर्श पर पैर फिसल जानेके कारण हुमायूँ मर गया था। और सबसे बढ़कर दक्षिणके नाजुक-दिमाग मुसलमान बादशाह दानाशाहकी मृत्यु एक घूसको देखनेसे हो गई थी।

इसी प्रकार बहुतसे लोग नाव या जहाजके डूब जाने, मकानके गिरने, साँपके काटने, शेरके फाड़ने और आगके लगनेसे मर जाते हैं। किसीको कोई गोलीसे मार देता है और कोई जहर खिला कर किसीके प्राण ले लेता है। कोई रास्ता चलते

मर जाता है और कोई एक बार सोनेके बाद जागता ही नहीं, सोयेका सोया रह जाता है। बहुतसे लोग अचानक जरासे रोग या पीड़ासे मर जाते हैं। बहुतसे लोग ऐसे भी होते हैं, जो रोगके कारण मृतप्राय हो जाते हैं। घरवाले समझ लेते हैं कि ये मर गये; पर थोड़े ही समयमें वे मौतके मुँहसे भी बच निकलते हैं। बहुतसे लोग आपको ऐसे भी मिलेंगे, जो यह कहेंगे कि हम यमराजके दरबार तक पहुँच गये थे; पर उन्होंने यह कह कर हमें वापस कर दिया कि अभी तुम्हारा समय नहीं है, तुम भूलसे लाये गये हो। बिन्स्लो नामक एक डैनिश चिकित्सकके दो बार जीवित ही गाड़ दिये जानेकी नौबत आ गई थी। इसी लिये उन्होंने "निश्चित मृत्युके चिह्न" नामक एक पुस्तक लिखी थी। और भी बहुतसे ऐसे लोग हो गये हैं, जिनके विषयमें लोगोंने समझ लिया था कि अब इनमें जान नहीं है और जो कई-कई दिनके बाद होशमें आये थे। फ्रान्समें पहले जब कोई आदमी मरता था, तब वह नियमानुसार चौबीस घण्टेके अन्दर गाड़ दिया जाता था। सन् १८२६ में वहाँके एक गाँवमें एक पादरीको वाज देते समय अचानक गश आ गया। सन्ध्या तक जब उसके जीवित होनेका कोई लक्षण दिखाई न दिया, तब उसे गाड़नेका सारा प्रबन्ध किया गया, यहाँ तक कि शव रखनेके लिये सन्दूक भी बन गया। उसे दफन करनेके लिये लोग ले जाना ही चाहते थे कि इतनेमें आधी रातके समय उसका एक मित्र दूरसे उसकी मृत्युका समाचार सुनकर उसका मुँह देखनेके लिये आया। उस मित्रकी आवाज सुन कर पादरीने आँखें खोल दीं। पीछे उसी पादरीने फ्रान्सकी सिनेट सभामें प्रार्थना-पत्र भेज कर शवको गाड़नेकी मुद्दत बढ़वाई थी।

बहुतसे लोगोंके प्राण रण-क्षेत्रमें विजय प्राप्त करते ही निकल गये हैं। एक मरणोन्मुख वीरने मृत्यु-शय्यासे उठ कर प्राण दिये थे। सर हम्फ्री गिलबर्टने अपने जहाजके साथ डूबते समय कहा था—"स्वर्ग समुद्रके रास्ते भी उतना ही समीप है, जितना स्थल-मार्गसे है।" एडमिरल ब्लैक विजय प्राप्त करके लौटनेके समय दूरसे इंगलैण्डके दर्शन करते ही मर गया था। जेनरल उल्फ जब क्वाबेकमें लड़ रहे थे, तब किसीने कहा कि "देखो, वे लोग कैसे भाग रहे हैं।" जनरलने पूछा—"कौन।" उत्तर मिला "शत्रु"। जनरलने कहा—"तब तो मैं बड़े सुखसे मरूँगा।" यह कहते ही वे गिर पड़े और मर गये। स्पेक नामक एक डच कमाण्डरने केवल इसी लिये अपने जहाजको बारूदसे उड़ा दिया था कि जिसमें वह शत्रु बेलजियनोंके हाथ न पड़ने पावे। गदरके समय दिल्लीमें एक लेफ्टिनेण्टने विद्रोहियोंके गोले-बारूदमें आग लगा दी थी, जिसके कारण स्वयं उसकी मृत्यु हो गई थी। इस प्रकार उसने शत्रु से अपने देश-वासियोंकी रक्षा की थी। युद्ध-क्षेत्रकी तरह बहुतसे लोग अपने सिद्धान्तोंकी रक्षा या उद्देश्योंके सम्बन्धमें भी विजय प्राप्त करते ही मर गये हैं; अथवा सिद्धान्तों की रक्षा या उद्देश्योंकी पूर्त्तिके लिये जिन्होंने बहुत ही प्रसन्नता-पूर्वक अपने प्राण दे दिये हैं। बहुतसे लोगोंकी मृत्यु विज्ञान-सम्बन्धी अन्वेषण करते समय ही हुई है। म० रेटजियस जब मरने लगे थे, तब उन्होंने स्वयं अपने शरीरकी जीवन-शक्तिके नष्ट होनेका निरीक्षण किया था। मरते समय उन्होंने कहा था—"अब पैरोंमें प्राण नहीं रहे, अब पेटके भीतरी भागोंने अपना काम छोड़ दिया। अन्त समय बड़ा ही कठिन है, पर तो भी उसके मनोरंजक होनेमें सन्देह नहीं।" इसी प्रकार किसीने भूगर्भ-शास्त्र

सम्बन्धी परीक्षाएँ करते हुए और किसीने दर्शन-शास्त्र पर विचार करते हुए अपने प्राण दिये हैं और उनमेंसे बहुतोंने हँसते हुए और विनोद-पूर्ण बातें कहते हुए भी प्राण छोड़े हैं। भारत वर्षमें ऐसे बहुतसे लोग हो गये हैं, जिन्होंने अपने यश और कीर्त्ति आदिकी रक्षाके लिये बड़ी ही प्रसन्नतासे प्राण दिये हैं। अपने गुरु वसिष्ठकी गौकी रक्षा करनेके लिये राजा दिलीपने बहुत ही प्रसन्नता-पूर्वक अपने आपको सिंहके सामने डाल दिया था। जीमूतवाहनने सर्पोंकी रक्षा करनेके लिये गरुड़को अपना शरीर दे दिया था। मृच्छकटिक नाटकमें चारुदत्तने एक स्थान पर कहा है—

"न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः।
विशुद्धस्य हि मे मृत्युः पुत्रजन्मसमः किल" ॥

जब धर्म्मराज श्येन पक्षीका रूप धारण करके कबूतरके पीछे उड़े, तब वह कबूतर राजा शिविकी शरणमें गया। तब राजाने उसकी रक्षाके लिये अपने शरीरका मांस काट कर उस श्येनको दिया था। वृत्रासुरको मारनेके लिये जब दधीचिकी हड्डियोंके वज्रकी आवश्यकता हुई थी, तब देवताओंके प्रार्थना करने पर ऋषिने बड़े आनन्दसे अपना शरीर त्याग दिया था। जब इन्द्र ने छल-पूर्वक दानशूर राजा कर्णसे उनके जन्मजात कवच-कुण्डल माँगे थे, तब कर्णने अपनी कीर्त्तिको कलंकित करनेकी अपेक्षा मर जाना ही अधिक उत्तम समझा था। गुरु गोविन्दसिंहके छोटे-छोटे बालकों (जोरावरसिंह और फतेहसिंह) ने सूबा सरहिन्दके लाख लालच देने और डराने-धमकाने पर भी मुसलमान होना स्वीकार नहीं किया, बल्कि जीतेजी दीवारमें चुने जाना ही अधिक उत्तम समझा। कृष्णाकुमारीने अपने पिताकी आज्ञासे

सहर्ष विष पान कर लिया था। पद्मिनी अपने पतिव्रतकी रक्षाके लिये हज़ारों स्त्रियोंको साथ लेकर जल मरी थी।

मृत्युकी उपमा निद्रासे दी जा सकती है। यदि उसमें कष्ट देनेवाली कोई बात है, तो वह केवल यही कि मरनेके समय श्वास-क्रिया धीरे-धीरे बन्द होती जाती है और कुछ समयके उपरान्त वह बिल्कुल ही बन्द हो जाती है। मृत्युका बहुत कुछ काम पहले तो रोग ही कर लेता है और तब उसके उपरान्त जो मृत्यु होती है, वह अधिक कष्टदायक नहीं होती। यद्यपि मरनेवालेकी आकृतिसे बहुत कुछ कष्ट और पीड़ाके चिन्ह प्रकट होते हैं, पर वास्तवमें मरनेसे कुछ पहले ही सब प्रकारके कष्टोंका अन्त हो जाता है। हाथ-पैर आदिमें उस समय जो ऐंठन होती है, उसका मरनेवालेको कोई ज्ञान नहीं होता; अतः वह उसके लिये कष्ट-दायक भी नहीं होती। उसके ज्ञात न होनेका मुख्य कारण यह है कि उसे बोध करनेकी शक्ति पहले ही नष्ट हो जाती है। वास्तव-में हमारी आत्मा या जीवन-शक्ति बड़ी ही सरलतासे हमारे शरीर-से पृथक् होती है। स्पेन्सरने कहा है कि परिश्रमके उपरान्त निद्रा, तूफानवाले समुद्रके उपरान्त बन्दर, युद्धके उपरान्त शान्ति और जीवनके उपरान्त मृत्यु बहुत ही सुखदायक होती है। जिस समय मनुष्य मरने लगता है, उस समय वह एक बार अपने पूर्ण जीवन पर पूरी दृष्टि डालता है और मन अपने आपको पहलेकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ दशामें पाता है। मृत्युके समय मनुष्य मानों अपने गत जीवनका एक विलक्षण सिंहावलोकन करता है, पर उस समयका ज्ञान कुछ हलका होता है। शरीर-शास्त्रज्ञोंका मत है कि मनकी उस समय प्रायः वैसी ही स्थिति होती है, जैसी कि स्वप्नके समय होती है।

गाथे प्रातःकाल उठकर बाल-सूर्य्यकी शोभा निरखनेके लिये बाहर जाना चाहता था कि इतनेमें मौतने उसे आ दबाया। वह पड़ गया और बोला—"यह तो और भी अधिक प्रकाश है।" शिलर बहुत दिनों तक रोगी रहनेके उपरान्त जब मरने लगा, तब उसके एक मित्रने पूछा—"इस समय तुम्हें क्या मालूम होता है?" उसने उत्तर दिया—"शान्ति! शान्ति!!" थोड़ी देर बाद उसने फिर कहा—"मुझे बहुत-सी चीजें अब और भी अधिक स्पष्ट दिखाई देती हैं।" कीट्सको भी मरनेके समय अपनी दशा अधिक उत्तम जान पड़ती थी और उसे ऐसा मालूम होता था कि मेरे शरीर पर एक प्रकारके बहुत सुन्दर और चम-कीले फूल लग रहे हैं। हम्बल्टको मरते समय बहुत ही सुन्दर किरणें दिखाई पड़ती थीं। फिशेका लड़का जब अन्त समयमें उसके पास औषध लेकर पहुँचा, तब उसने कहा—"मुझे अब इसकी जरूरत नहीं है। मैं आगेसे अच्छा हूँ।" रिचरने मरते समय कहा था—"अब विश्रामका समय आ गया है।" जान्सन ने मरनेके समय लोगोंको श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करनेका उपदेश दिया था। सर वाल्टर स्काटने अपने दामादको उपदेश दिया था कि सदा धार्म्मिकता और उत्तमता-पूर्वक जीवन व्यतीत करो, इन्हीं बातोंसे तुम्हें मरते समय सबसे अधिक सुख और शान्ति मिलेगी। सर वाल्टर रेलेसे उसके घातकने अंतमें कहा कि सिर पूरबकी तरफ करके लेट जाओ। उसने उत्तर दिया—"सिर चाहे कहीं हो, हृदय ठीक रहना चाहिए।"

प्लेटो बयासी वर्षकी अवस्थामें मरनेके समय लिख रहा था। ल्यूकन और रोसकामन मरते समय कुछ पद्य पढ़ रहे थे। हर-डरके प्राण भी लिखते समय ही निकले थे। डेन्मार्कके राजा

द्वितीय फ्रेडरिकने मरते समय डाक्टरसे कहा था—"नाड़ीको जाने दो, ईश्वर अवश्य हम लोगों पर दया करेगा।" वाटने मरते समय कहा था—"मैं मरनेके लिये ईश्वरीय आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।" डा० काम्ब मरनेके समय बहुत ही प्रसन्न था। एक डेनिश कविने मरनेके समय अपने पुत्रसे आत्माके अमरत्वके सम्बन्धमें एक ग्रीक पद्य पढ़नेके लिये कहा था।

एथेन्सके प्रसिद्ध वीर पेरिक्लीसने मरनेके समय कहा था कि मैं अपने लिये सबसे अधिक आदरकी यही बात समझता हूँ कि मेरे द्वारा कभी मेरे किसी देशवासीकी हत्या नहीं हुई। डेन्मार्कका राजा पंचम फ्रेडरिक भी मरते समय इसी लिये प्रसन्न था कि उसके द्वारा कभी किसीके प्राण नहीं गये। नेलसनने कहा था कि ईश्वरको धन्यवाद है कि मैं अपना कर्त्तव्य कर चुका। स्वीडनके राजा गस्टेवस एडल्फसने कहा था कि मैंने जर्मन-जाति की स्वतंत्रता और धर्म्मको अपने खूनकी मोहरसे बन्द कर दिया है। युद्ध-क्षेत्रमें सर फिलिप सिडनी मरनेके समय पानी पीना चाहते थे। पर उन्होंने देखा कि पासहीके एक मरते हुए सिपाहीकी नजर उनके पानी पर लगी हुई थी। उन्होंने चट पानी उसे दे दिया और कहा—"तुम्हें इसकी अधिक आवश्यता है।" सर जानमूर इतने अधिक घायल हो गये थे कि उनके बचनेकी कोई आशा नहीं थी। इस लिये उन्होंने डाक्टरोंसे कहा था—"तुम मेरी कोई सेवा नहीं कर सकते; उन सिपाहियोंके पास जाओ, तुम जिनके काम आ सकते हो। मैं तुम्हारे साध्यके बाहर हूँ।" इसी प्रकार और भी अनेक राजनीतिज्ञों और देश-सेवकों आदिने मरनेके समय समाधान और सन्तोष प्रकट किया है। पर इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि मरनेके

समय केवल उन्हीं लोगोंको सुख और समाधान होता है, जो अपने जीवनमें सदा अच्छे अच्छे कार्य्य करते हैं। पापियों और अत्याचारियोंको मरनेके समय कभी सुख या समाधान नहीं हो सकता; क्योंकि अपने गत जीवनके सिंहावलोकनमें उन्हें कोई सुखदायक या समाधानकारक बात दिखलाई ही नहीं देती। सन्त बारथोलोम्पूके दिन फ्रान्सके राजा चौदहवें चार्ल्सने अपनी जिन प्रजाओंको आज्ञा देकर मरवा डाला था, उनका कराहना उसे मृत्यु-शय्या पर भी सुनाई देता था। राजा चौदहवें लुईने अपने देशसे बहुतसे ह्यूगेनाट्सको अनेक प्रकारके कष्ट दिये थे और उनमेंसे बहुतोंको मरवा डाला था। उसके भयसे बहुतसे लोग जर्मनी, हालैण्ड, इंगलैण्ड और यहाँ तक कि दक्षिण अफ्रिका चले गये थे। भाई एक देशमें था, तो बहन दूसरे देशमें; माता एक देशमें थी, तो पुत्र दूसरे देशमें। अतः चौदहवें लुईको भी मरनेके समय ही कष्ट हुआ था।

सन् १६२० में एक बड़े राजनीतिज्ञकी माताके मरनेके समय कवि और उपदेशक चार्ल्स फिज-जाफरीने जो कुछ कहा था, उसका आशय देकर हम यह अन्तिम प्रकरण समाप्त करते हैं। उसने कहा था—

मनुष्यका जीवन एक पुस्तकके समान है। उसका जन्म मुख-पृष्ठ है, विलाप पाठकोंके प्रति प्रार्थना है, शैशव और बाल्यावस्था प्राक्-कथन और विषय-सूची है, जीवन और कार्य्य विषय है, अपराध और दोष उसकी भूलें हैं और पश्चात्ताप उनका संशोधन है। उनमें भी कुछ किताबें बड़ी होती हैं और कुछ छोटी। किसीकी जिल्द बढ़िया होती है, किसीकी सादी। किसीका विषय उत्तम होता है और किसीका निकृष्ट। पर सबके

अन्तिम पृष्ठ पर एक ही शब्द—"इति" होता है। किसी मनुष्य का जीवन दीर्घ होता है, किसीका अल्प; किसीका दृढ़ होता है किसीका निर्बल; किसीका अच्छा होता है, किसीका बुरा; किसीका पवित्र और किसीका अपवित्र; पर मृत्यु उन सबकी "इति" करनेके लिये आती है; क्योंकि सब मनुष्योंका अन्तिम परिणाम यही है।"

समाप्त